श्री पद्मविजयजीगणि रचित

श्री जयानंद केवलिचरित्र

भाषांतर :

मुनिश्री जयानंदविजयजी

॥ श्री शत्रुंजयाधिपति आदिनाथाय नमः ॥

॥ प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी सद्गुरुभ्यो नमः ॥

श्री पद्मविजयजी गणि रचित

श्री जयानंदकेवलिचरित्र

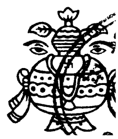

: दिव्याशीष :

आचार्यदेवश्री विद्याचंद्रसूरीश्वरजी म. सा.

आगमज्ञ मुनिराजश्री रामचंद्रविजयजी म. सा.

: भाषांतर :

मुनिश्री जयानंदविजयजी म. सा.

पुस्तक : श्री जयानंदकेवलिचरित्र
लेखकसंस्कृत : श्री पद्मविजयजी गणि
भाषांतर : मुनिश्री जयानंदविजयजी

: द्रव्यसहायक :

मुनिश्री जयानंदविजयजी, मुनिश्री दिव्यानंदविजयजी. मुनिश्री तत्त्वानंदविजयजी आदि ठाणा का सं. २०५८ का चातुर्मास एवं उपधान पालिताना सौधर्मनिवास में एक सद्गृहस्थ ने करवाया। उस समय की साधारण खाते की आय में से।

प्रकाशक : गुरु श्रीरामचंद्र प्रकाशन समिति-भीनमाल

: संचालक :

(१) सुमेरमल केवलजी नाहर-भीनमाल
(२) मीलियन ग्रूप-सूराणा
(३) श्रीमति सकुदेवी सांकलचंदजी नेतीजी हुकमाणी परिवार-पांथेड़ी
(४) शा हस्तिमल लखमीचंद भलाजी नागोत्रा परिवार-बाकरा (राज०)

: प्राप्तिस्थान :

(१) शा देवीचंद छगनलाल : सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
(२) शा नागालालजी वजाजी खींवसरा : शांतिविला अेपार्टमेन्ट, काजी का मैदान, तीन बत्ती, गोपीपूरा, सुरत.
(३) महाविदेह भीनमाल धाम : तलेटी-हस्तगिरि लिंक रोड, पालीताना-३६४२७०.

सं. : २०५८ प्रत : २००० इ. सन् : २००२

भरत ग्राफिक्स
न्यु मार्केट पांजरापोळ, रिलिफ रोड, अमदावाद-१.
फोन : २१३४१७६, २१२४७२३.

श्री शत्रुञ्जयाधिपति श्री आदिनाथाय नमः
प्रभु श्री मद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वराय नमः

"श्री जयानन्द केवलिचरित्र"

सकल विश्वके उपकारक सभी प्रकार के सुख प्रदाता केवलज्ञानियों के अधिपति, शासनाधिकारी श्री वर्धमानस्वामी को नमस्कार करके, भव्यात्माओं को प्रतिबोधित करने हेतु केवलज्ञानधारक श्री जयानन्दराजर्षि ने पूर्वभव में सम्यग्दर्शनपूर्वक दानशील आदि धर्मक्रिया, (अपनी प्रिया के साथ) करके जो पुण्योपार्जन किया, उसके परिणाम स्वरूप स्वर्गलक्ष्मी, उत्तमराज्यभोग, देवसहायता आदि संपत्ति उनको किस प्रकार प्राप्त हुई, उसका विवरण संक्षेप में श्री पद्मविजयजी ने संस्कृत गद्य में रचा । उसका भाषांतर हिन्दी में करने का प्रयास मैंने किया है ।

ढाई द्वीप में जंबूद्वीप एक लाख योजन का है । उसमें एक भरतक्षेत्र, एक ऐरवतक्षेत्र और एक महाविदेहक्षेत्र है । इस कथा का प्रारंभ भरतक्षेत्र से हुआ है । इस भरतक्षेत्र में 'रतिवर्द्धन' नामक सुंदर नगर था । वहाँ ऐश्वर्य, सौन्दर्य, धैर्य, वीर्यादि गुण युक्त इन्द्र के समान नरवीर नामक राजा राज्य करता था । उसकी कीर्तिसुन्दरी आदि अनेक महारानियाँ थी । उस राजा का मन्त्रियों में मुख्य, वचन चातुर्यता का मंदिर, सभी शास्त्रों में विद्वान, दानी, गुणग्राही, क्षमावान, शक्तिशाली, राजभक्त, विनयवान, न्यायवान्, और धर्मात्मा मतिसुन्दर नामक प्रधान मंत्री था । मंत्री की योग्यता के कारण, राजा राज्य की चिन्ता से मुक्त होकर आमोद-प्रमोद में अपना अधिक समय व्यतीत करता था । मतिसागर को भी कामदेव की रति और प्रीति के समान दो प्रियाएँ थी । प्रथम प्रीतिसुन्दरी, दूसरी गुणसुन्दरी ।

उस राजा का एक ज्योतिषविशारद वसुसार नामक पुरोहित था। राजा, मंत्री आदि सभी सद्गुणों के कारण धर्म के योग्य थे। परंतु बोधि की सामग्री के अभाव से पूर्व में मिथ्यादृष्टि थे। पुरोहित तो गुण रहित और स्वकुलाचार का आग्रही था। इस प्रकार उनका समय व्यतीत हो रहा था।

शास्त्रकारों ने इसीलिए कहा हैं कि जब तक सम्यग्दर्शन प्राप्त होने का समय परीपक्व न हो, तब तक उसके योग्य सामग्री की प्राप्ति भी नहीं होती। जब समय परीपक्व हो जाता है तो अपने आप उसके योग्य सामग्री की प्राप्ति हो जाती है। तभी तो कहा है''

''भवस्थिति परिपक्व थया विण कोई न मुक्ति जावे।''

एकबार मतिसागर के घर तीन ज्ञान संयुक्त, युवावस्थावान्, सौभाग्यशाली, तप से देदीप्यमान कोई राजर्षि मासक्षमण के पारणे के दिन गोचरी के लिए घूमते हुए आ गये। मंत्री भी उन मुनि भगवंत को देखकर अवसर पर पधारे, ऐसा मानकर आनंदित हुआ। उसके पश्चात् प्रथम प्रिया प्रीतिसुन्दरी को दान देने के लिए आदेश दिया। दान प्रिय वह भी हर्षित होती हुई बड़े भाजन में से क्षीर वहोराने हेतु क्षीर ले आयी। तब क्षीर के कुछ छींटे भूमि पर गिर गये। मुनि ने कहा यह शुद्ध नहीं है। (मुनि को नहीं कल्पता)। उसे छोड़कर अग्नि पर रहे हुए भाजन में से चावल देने के लिए उद्यत हुई तो मुनिभगवंत ने कहा यह भी नहीं कल्पता। फिर वह सचित्त पदार्थ से ढंकी हुई दाल देने के लिए उद्यत हुई तब भी साधु ने कहा ''साधु को नहीं खपता'' फिर सचित्त धान्य पर का घी, शक्कर, दो दिन पूर्वका दहीं का भी मुनि ने निषेध किया। तब कल बनाये हुए मोदक लाकर देने लगी तो 'एतेऽपि न शुध्यन्ति' यह भी नहीं सुझते ऐसा कहा।

अमात्य ने उनके आशय को न जानते हुए भक्ति से अत्याग्रह करने पर भी कुछ न लेने से अमंगल का विचारकर रोषपूर्वक कहा "यह अमृत के समान आहार नहीं सूझता तो क्या विष सूझता है ? या क्या तेरे नेत्र चले गये हैं ?" अति रोष में आकर प्रीतिसुन्दरी भी बोल उठी "जैन साधु दाक्षिण्य रहित होता है । दाक्षिण्य तो शुद्ध कुल में होता है । लगता है कि ये निम्नकुल के हैं ।" तब दूसरी पीछे न रही, उसने शुध्यति का अर्थ देखना करके कहा 'प्रकट प्रकाश में भी न शुध्यति' ऐसा बोलनेवाला अन्धा है । इसे भील को दे देना चाहिए । इस नगर में अनेक याचक हैं । उनको दान देंगे और मंगल करेंगे । दान तो जहाँ कहीं भी दिया जाय वह निष्फल नहीं होता ।" इस प्रकार दुष्टवाक्यों से तीनों ने अशुभ कर्मोपार्जन कर लिया । मुनि तो रोष-तोष में सम परिणामी थे । घर के बाहर आ गये।

"यही तो थी जैन साधु की पहचान । कहा है-

"सोहा भवे उग्गतवस्स खंती" उग्रतपस्वी की शोभा क्षमा से हैं ।

आत्मा अमंगल और मंगल की वास्तविकता से अनभिज्ञ होता है, तब मंगल को अमंगल और अमंगल को मंगल मान स्वयं का अहित कर लेता है ।

मंत्री परिवार इस विषय में विचार रत था । तभी उसका धर्मरुचि मित्र जो कि श्रावक था किसी कार्य से आया । धर्मी आत्मा की मित्रता आत्मा को दुर्गति से बचा देती है । आत्मा का प्रबल पुण्य उदय में आनेवाला होता है, तब दुर्गति में जाने की तैयारी वाले को बचानेवाला मिल ही जाता है । ऐसा ही हुआ मंत्री परिवार के लिए ।

धर्मरुचि को देखकर मंत्री हर्षित हुआ । उचित सत्कारकर मंत्री ने कहा "भाई । आज मेरे घर कोई जैन साधु भिक्षा के लिए आया था । उसको मेरी दोनों पत्नियाँ मधुरवाणी से निमंत्रितकर दान देने लगी । परंतु उसने कुछ भी नहीं लिया । जो कुछ बहोराने के समय घटित हुआ था वह, तीनों ने मुनि को जो कहा वह भी सुनाकर बोला-' वह तेरा गुरु गया तू उसको पहचानता है?"

धर्मरुचि बोला : "वे मुझे सामने मिले । भक्तिपूर्वक वंदन किया और मैंने उनको अच्छी प्रकार से पहचाना ।"

"सिन्धुदेश में सौवीर नाम के महापराक्रमी अतिबल नामक राजा की राजसभा में देशान्तर से आनेवाली एक नट मंडली ने सगरचक्री के चरित्र को बताते हुए साठ हजार पुत्रों से वियोग का स्वरूप कहा । सगरचक्री के पुत्र वियोग की स्थिति का करुण स्वरूप देखकर राजा संसार की दु:खमय अवस्था को समझ गया । उस पर चिन्तनकर प्रबुद्ध हुआ, और अपने बालक पुत्र का राज्याभिषेककर 'धर्माकर' गुरु के पास चारित्र ग्रहण किया । वह राजर्षि ग्रहण शिक्षा, आसेवन शिक्षा को ग्रहण करते हुए बाह्य-अभ्यंतर तप रत बने । तप के प्रभाव से, अप्रमत्तभाव से चारित्र की परिपालना से अनेक लब्धियों के स्वामी हुए।

एक बार गुरु ने उनकी योग्यता देखकर एकाकी विहार की अनुज्ञा प्रदान की । वे सिंह समान परिषह-उपसर्ग रूपी मृगों से निर्भय होकर संसार रूपी वन में विहार करने लगे ।

विहार करते हुए एक बार वे गजपुरनगर में आये । उस उद्यान में देवताओं से पूजे गये वे मुनि तप-ध्यान में निमग्न अनेक जीवों को शाता प्रदायक होकर ठहरे ।

वहाँ राजगुणधारक भीम भूप था । उसका मतिसार मंत्री था । वह राज्य भार को वहन करने में राजा के समान था ।

एकबार राजा ने अल्प अपराधवाले चोर को मरवाया । वह अकामनिर्जरा से व्यंतरनिकाय में देव बना । वहाँ उसने विभंगज्ञान से पूर्वभव जानकर, राजा पर कुपित होकर राजा का अनिष्ट न कर सकने से हाथियों पर व्याधि का उपक्रम किया । राज वैद्यों ने अनेक औषधियों का प्रयोग किया, पर व्याधि-शांत न हुई । राजा ने मंत्री को आदेश दिया । मंत्री ने भी अनेक उपाय किये, पर कोई फल न मिला । एक बार मंत्री इसी चिन्ता से व्यथित जहाँ राजर्षि अतिबल ठहरे थे, वहाँ गया । वहाँ उसको दैवी वाद्यों की ध्वनि सुनायी दी । वहाँ जाकर देखा तो मुनि भगवंत के सामने देवियाँ नृत्य कर रही थी । मुनि को महाप्रभावशाली मानकर नमस्कारकर, अवसर मिलने पर उनके पैरों की धूल लेकर गजशाला में जाकर हाथियों के मस्तक पर तिलक किये । उस धूल के तिलक से सभी गजराज निरोगी हो गये । व्यंतर की शक्ति तप के प्रभाव के आगे टीक न सकी । व्यंतर भाग गया । मंत्री ने राजा को समाचार दिये । राजा ने मुनि भगवंत की मन ही मन स्तवना की, और अपने नगर में उत्सव मनाने का आदेश देकर, राजा, मंत्री, परिवार सहित मुनि भगवंत को वंदन करने के लिए गये । मुनि ने भी ध्यान पूर्णकर धर्मलाभ की पवित्र आशीष दी । सभी यथास्थान बैठे । उनके आग्रह से मुनि भगवंत ने साधु एवं श्रावक धर्म को समझाया । मुनि के पुनीत दर्शन से मुनि भगवंत पर अतीवश्रद्धा उत्पन्न होने से प्रतिबोध पाकर राजा व मंत्री ने श्रावक धर्म स्वीकार किया । अन्योंने भी अपनी-अपनी शक्ति भावनानुसार श्रावक धर्म स्वीकार किया । इस प्रकार गजपुर में धर्म प्रभावना की वर्षाकर अप्रतिबद्ध विहार करते हुए मुनि हीरपुर में आये ।

हीरपुर का राजा बलसार नगर में मरकी के रोग से चिन्ताग्रस्त था । अनेक उपाय किये पर सभी विफल रहे । मुनि

भगवंत के उद्यान में आने के बाद कुछ दिनों में ही भीम राजा का दूत कार्यवश बलसार की राजसभा में आया । प्रसंगोपात मरकी की बात निकली । तब दूतने अपने नगर की गजमारी की बात कहकर अतिबल राजर्षि के पुण्य प्रभाव की बात कही । और कहा ''मैं अभी आपके उद्यान में उन राजर्षि को दर्शन वंदनकर आ रहा हूँ ।'' मुनि भगवंत का ऐसा महा प्रभाव सुनकर मुनि भगवंत के चरणों से स्पर्शित धूलि से रोगीष्ट मानवों के मस्तक पर तिलक होने लगा और प्रजा रोग मुक्त हो गयी । मुनियों की महिमा अपरंपार हैं।

राजादि ने उद्यान में जाकर नमस्कारकर मुनि भगवंत द्वारा उपदेशित श्रावक धर्म का यथाशक्ति स्वीकार किया । वहाँ भी मासकल्प में धर्म प्रभावना की ज्योति जगाकर विहार करते हुए क्षेमापुरी में आये । मासखमण के पारणे के लिए नगर में गोचरी जाते समय गवाक्ष में रहे मिथ्यादृष्टि पुरोहित पुत्र ने जैनमुनि पर द्वेष, धन और यौवन के मद की उग्रता से मस्तक पर जूता मार दिया । मुनि भगवंत तो ऊपर देखे बिना मेरु के समान धीर गंभीर होने के कारण उस पर कृपा के भाव रखके आगे बढ़े । परंतु उनके तप प्रभाव से आकर्षित होकर शासन देवी ने अदृश्य रूप में पुरोहित पुत्र पर क्रोधित होकर उसके हाथ काट दिये । उस व्यथा से वह क्रंदन करने लगा । माता-पिता आदि के पूछने पर पश्चात्ताप करते हुए उसने मुनि आशातना का सारा वृतांत कह सुनाया । 'उग्र पाप का फल मुझे मिला।' वे भी दु:खी हुए और उसे धिक्कारा । उस अनर्थ की उपशांति का अन्य उपाय न मिलने पर मुनि भगवंत के पास आकर नमस्कारकर हाथ जोड़कर बोले ।

''हे मुनिभगवंत । आप महाप्रभावशाली हैं, जगत्पूज्य हैं, सूर्य जैसे उल्लू की ओर दुर्लक्ष्य करता है, वैसे इस बालक ने

मूढ़ता से, जो अपराध किया है। कृपानिधि ! क्षमा करो। महापुरुषों का रोष चिरकाल नहीं रहता । और प्रणाम करनेवालें पर तो रहता ही नहीं । हम शरण में आये हैं । कृपा करो। बालक के हाथ पुनः सज्ज करो ।'' मुनि भगवंत ने कहा ''मुझे रोष न आया और न आयगा । किन्तु शासन देवी ने इसको शिक्षा दी होगी । तब शासन देवी आकाश में प्रकट होकर बोली ''इस पापी को पुनः सज्ज नहीं करूंगी ।'' तब उन लोगों ने पूजा आदि से उसे संतुष्ट किया । शासनदेवी ने कहा यदि यह मुनि से प्रव्रजित हो तो मैं इसे सज्ज करूं?'' इसके अलावा कोई उपाय न देखकर उन्होंने उस प्रस्ताव को स्वीकृत किया । देवी ने उसके हाथ नये कर दिये । दैवी शक्ति अपार होती है। सभी प्रमुदित हुए । मुनि पर देवी ने पुष्पवृष्टि की । पुरोहित पुत्र ने पश्चात्ताप करते हुए मुनि से क्षमायाचना की । मुनि भगवंत ने उसे धर्म का स्वरूप समझाकर प्रतिबोधित किया और उसके पितादि परिवार की अनुमति लेकर प्रव्रज्या दी । शिक्षा ग्रहण के लिए उसे स्थविर कल्पियों के पास भेजा । वे सभी मुनि को वंदनकर मुनि भगवंत की प्रशंसा करते हुए घर गये । राजा आदि अनेक लोगों ने भी मुनि भगवंत से प्रभावित होकर चारित्र ग्रहण किया। वहाँ से विहार करते हुए मुनि यहाँ पधारे हैं । तप-ध्यान-योग से अवधिज्ञानी बने हैं । वे ही ये मुनि तेरे भाग्योदय से मासखमण के पारणे के लिए शुद्ध आहार की गवेषणा करते तेरे घर आये थे। ये साक्षात् कल्पवृक्ष, महामहिमावान् हैं, क्योंकि इनकी देवता भी सेवा करते हैं । ये समताभाव में रहते हैं । न तुष्ट होते हैं, न क्रोधित होते हैं । परंतु पूजा और निन्दा का फल यहाँ और परलोक में अवश्य मिलता हैं ।

इस प्रकार मुनि भगवंत की प्रशंसा अपने श्रावक मित्र के मुख से श्रवणकर, पश्चात्ताप और भय से विह्वल अपनी प्रियाओं

को भी देखकर मंत्री बोला "हे मित्र ! मैंने और मेरी पत्नियोंने अज्ञान से अन्धे होकर रोष में आकर, कटु वचनों से मुनि का अपमान किया हैं । हम जैन ऋषियों के आचार के अनभ्यासी होने से उनके आचार को नहीं जानते । अब शाप के भय से भयभीत हैं।"

धर्मरुचि ने कहा "कृपालु मुनि किसी को शाप नहीं देते । परंतु उनकी अवहेलना इस भव और परभव में पीड़ादायक होती है । इसलिए उनके पास जाकर अपराधों की क्षमायाचना करनी चाहिए।"

मंत्री ने कहा 'आपने कहा वैसा हम सब करेंगे ? परंतु हमारे द्वारा दिया जाने वाला आहार उन्होंने क्यों नहीं लिया ? इस विषय में आप कुछ जानते हो तो कहो, जिससे उनके पास जाकर हमारी अज्ञानता की क्षमायाचना कर सके।" धर्मरुचि ने कहा "आहार किस प्रकार वहोराते थे, मुझे बताओ तो मेरी जानकारी होगी, उतना कह सकूंगा" मंत्री ने सब बातें बतायी। क्षीर के छीटें जहाँ पड़े थे, वहाँ चीटिंयाँ आयी थी, उसे दिखाकर कहा इस जीव विराधना की संभावना के कारण क्षीरान्न नहीं लिया। अग्निकाय जीवों की विराधना के कारण कूर (चावल) नहीं लिये। अप्काय, वनस्पतिकाय आदि की विराधना के कारण दाल, घी, आदि पदार्थ भी नहीं लिये । दहीं में अलता डालकर आतप में रखकर सूक्ष्म जंतु बताये, तब मंत्री परिवार मुनि भगवन्त के आचार से प्रभावित हुए । मोदकों को निर्दोष जानकर बयालीस में से एक भी दोष न देखकर कहा" इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता । वे ज्ञानी हैं उन्होंने ज्ञान से कोई कारण देखा होगा तभी नहीं लिये ।" मंत्री ने सोचा 'अर्हत् धर्म की सूक्ष्मता आश्चर्यजनक है। मुनि भगवंत की नि:स्पृहता उत्तम कोटि की है । मैंने अनेक

शास्त्रों को पढ़े हैं, अनेक साधुओं को दान दिया हैं परंतु ऐसी सूक्ष्म आचार प्रियता कहीं नहीं देखी।'

धर्मरुचि ने कहा ''मुनिभगवंत को वन्दन करने के लिए चले ।'' मंत्री ने कहा,, ''किये हुए अपराध वाले हम मुनि भगवंत को मुख कैसे बताये?'' धर्मरुचि ने कहा ''ये मुनि दोषदर्शी नहीं होते । इसलिए उनके दर्शन में कोई आशंका नहीं करनी चाहिए ।'' सभी गये और मुनि भगवंत को वंदन किया । मुनि भगवंत ने धर्मलाभ की सर्वोत्तम आशीष दी । मंत्री ने कहा ''अज्ञान के कारण हमने जो कटु वचन कहकर आपकी अवहेलना की हैं, उस अपराध की क्षमा करो । क्योंकि क्रोधित मुनि तप के द्वारा क्रोड़ो मनुष्यों को जला सकते हैं। परंतु हम मूढ़ मानवों पर आप कृपा करो । उन मंत्री पत्नियों ने भी बार-बार क्षमायाचना की । मुनि ने कहा ''मुझे कोई क्रोध नहीं है । परंतु सूझते शब्द का और आहारशुद्धि का स्वरूप तुम नहीं जानते हो।'' तब मंत्री ने कहा'' ''उसका तात्त्विक स्वरूप समझाये ।''

मुनि भगवंत ने कहा ''आंखे दो प्रकार की हैं । बाह्य चर्मात्मक जो पास एवं दूर के पदार्थ का अल्पज्ञान करवाती है । दूसरी अभ्यन्तर ज्ञान-दर्शन स्वरूप आँख जो सूक्ष्म, पास, दूर सभी का संपूर्णज्ञान करवाती है । शुद्धि के दो भेद हैं । बाह्य व अभ्यंतर । बाह्यशुद्धि पदार्थ की निर्मलता । अभ्यन्तर शुद्धि=दोष रहितता । हम दोनों दृष्टियों से दोनों प्रकार की शुद्धि देखते हैं । हमारे लिए ४२ दोष रहित आहार ही शुद्ध है। तुम्हारे घर का आहार छर्दित, निक्षिप्त और पीड़ित जीवयुक्त और दोषयुक्त होने से नहीं सूझता' ऐसा कहा था । श्रावक एवं मंत्री ने पूछा'' हे मुनि भगवंत! यह सब ठीक है परंतु मोदक में तो कोई दोष नहीं था ।'' मुनि ने कहा ''ये मोदक रात में बने हैं उसमें धूमव्याकुलित सर्प के मुंह से गरल गिरने से विषाक्त हैं । मुझे

मेरे ज्ञान से विषाक्त दिखने के कारण स्वशरीर एवं संयम के उपघातक होने से ग्रहण नहीं किये।'' मंत्री ने मोदक मंगवाये और उस पर बैठी मरी हुई मक्खियों को देखकर योग्य व्यक्ति के पास निर्जीव स्थान पर परठा दिये ।

मंत्री के हृदय में अपने परिवार के प्राण बचाने वाले मुनिभगवंत के प्रति अत्यन्त आदर प्रकट हो गया । उसने कहा ''आप हमारे जीवन दाता हैं । हमें आपका उपकार जीवन पर्यन्त याद रहेगा । हम आपके सेवक हैं । हमें धर्मबोध सुनाने की कृपा करें ।

मुनिभगवंत ने सुदेव, सुगुरु, सुधर्म का स्वरूप, पंचमहाव्रतों का स्वरूप और द्वादशव्रत का स्वरूप समझाया । धर्मोपदेश-श्रवणकर मंत्री ने कहा ''गुरुदेव! हम यति धर्म स्वीकार करने में असमर्थ हैं । हम श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहते हैं।'' गुरुदेव ने समकित मूल द्वादश व्रत उच्चरवाकर आवश्यक विधि की शिक्षा भी दी । मंत्री कल्पवृक्ष के समान धर्म प्राप्तकर अपने आपको कृतकृत्य मानता हुआ मुनि भगवंत को नमस्कारकर अपने घर गया । साधु अवज्ञा के पाप की निन्दा और आलोचना की । परंतु साधु की अवज्ञा करते समय जो तीव्र द्वेषभाव आ गया था । उसके कारण कुछ कर्म शेष रह गया । धर्मरुचि भी यथाशक्ति व्रत नियम ग्रहणकर अपने घर गया ।

मुनि भगवंत मासकल्प करते हुए वहाँ रहें । मासखमण का तप पूर्ण हुआ । इधर मंत्री श्रावक धर्म का विधिवत् पालन करते-करते शास्त्रों का भी ज्ञाता हुआ और श्रावकाग्रणी हो गया । जीवादि तत्त्वों का ज्ञाता बनकर क्रिया कुशल होकर दृढ़श्रावक हो गया । धर्म क्रिया में उसे देवता भी चलायमान न कर सके वैसी त्रिकरण तीन योग से धर्म क्रिया करता था। शासन प्रभावना

भी अस्खलित रूप से करता था । पारणे के दिन मुनि भगवंत गोचरी के लिए घूमते घूमते उसी के घर आ गये और मंत्री ने अपनी प्रियाओं के साथ भावोल्लास पूर्वक ४२ दोष रहित आहार पानी वहोराया । उस दान के प्रभाव से तीनों ने महाभोगफल उपार्जन किया । उस समय मंत्री के घर दुंदुभि बजी । राजा ने मंत्री के घर दुंदुभि सुनकर सेवकों से पूछा तब राजा ने जाना कि एक महामुनि को मंत्री ने दान दिया है । उसकी महिमा प्रसारित करने हेतु देव ने दुंदुभि बजायी है । राजा ने हर्षित होकर कहा 'हम ऐसे महामुनि का परिचय पा न सके । इसका हमें खेद हैं। कल हम मुनि को वंदन करने जायेंगे ।

मुनि भगवंत रात में शुक्लध्यानारूढ़ हो गये ।

प्रातः काल होने पर मुनि अतिबल राजर्षि को केवलज्ञान हुआ । देवों ने दुंदुभि नाद किया । पुष्पवृष्टि की । स्वर्णमय पद्मकमल की रचना की । दुंदुभि के आवाज से और देवोद्योत को देखकर सम्भ्रांत होकर राजा ने पूछा "यह क्या है?" तब तक तो मंत्री ने पुरुषों के द्वारा यह समाचार जानकर शीघ्र राजा के पास आकर विज्ञप्ति की । "राजन्! उन मुनिभगवंत को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है । अतः वहाँ जाकर वंदनकर कृतार्थ हों।" राजा भी यह सुनकर, जैन धर्म से अनभिज्ञ होते हुए भी उसी समय आश्चर्य से प्रेरित गजारुढ़ होकर छत्र चामर मंत्री सामंतादि के साथ परिवार सहित भक्ति से वहाँ जाकर पंचाभिगम पूर्वक वंदनादिकर उचित स्थान पर बैठा । धर्मलाभाशीष देकर मुनि ने सुरासुर और मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया ।

"इस दुःखरूप समुद्र में सुख प्राप्ति का एक मात्र उपाय धर्म ही है।

वह है सम्यक्त्वमूल श्रावकधर्म एवं साधुधर्म ।

सम्यक्त्व चिन्तामणि रत्न के समान इष्टफलदाता है, परंतु दुर्लभ है।

देव-गुरु-धर्म-ज्ञान पर श्रद्धा लक्षणवाला सम्यक्त्व है ।

हास्यादि छ, चार कषाय पांच, आश्रव, प्रेम, मद और क्रीड़ा इन अठारह दोषों से मुक्त ही देव है ।

ज्ञान-दर्शन चारित्र से पवित्र आत्मा, शय्या, पात्र, वस्त्र, आहार आदि सदोष ग्रहण न करे पंच महाव्रतधारक, जो पापरहित मार्ग पर स्वयं चलते हैं और दूसरों को प्रेरित करते हैं, निस्पृही हैं वे गुरु हैं । स्वयं के हितचिंतक साधक को, ऐसे सद्‌गुरु को गुरु रूप में स्वीकारना चाहिए, जो स्वयं तिर जाते हैं और दूसरों को तारने में सक्षम हैं ।

पंचमहाव्रत रूप यति (साधु) धर्म, द्वादश व्रत रूप श्रावकधर्म । दान-शील-तप-भाव के भेद से चार प्रकार का धर्म हैं ।

यह धर्म इस भव में इच्छित सुख एवं परभव में राजा, चक्रवर्तित्व आदि भौतिक सुख प्राप्त करवाकर मोक्ष सुख प्राप्त करवाता है । साधु धर्म का उत्कृष्ट फल शिवगति । श्रावक धर्म की उत्कृष्ट गति बारहवाँ देवलोक । जघन्य से दोनों प्रथम स्वर्ग तक जा सकते हैं । हे भव्यो! मनुष्यभव आदि दुर्लभ सामग्री जो प्राप्त हुई है इसको यथाशक्ति धर्माराधना से सफल करो ।'' इत्यादि धर्म देशना दी । उस समय भवोद्विग्न होकर अनेक लोग प्रव्रजित हुए । अनेक व्रतधारी श्रावक हुए । अनेक समकितधारी हुए । राजादि केवलज्ञानी को वंदनकर अपने महल में गये ।

मुनि भगवंत, निष्कारण एक स्थान पर नहीं रहते अत: मुनि भगवंत ने नूतन मुनियों के साथ विहार किया ।

वसुसार पुरोहित मुनि भगवंत के पास आकर भी नास्तिकता को छोड़ नहीं सका । असाध्य रोग की औषधि है ही नहीं । राजा

मंत्री के सहवास से स्व-पर दर्शन का ज्ञाता होकर दृढ़धर्मी हो गया।

एक बार राजसभा में राजा ने साधु और श्रावक के गुणों की प्रशंसा की कि धन्य है उन मुनियों को जो स्वदेह पर भी निर्ममत्वभाव से बारह प्रकार के तप द्वारा परलोक में स्वहित कर लेते हैं । तब वसुसार पुरोहित ने कहा'' स्वामी! कुशास्त्र के उपदेश द्वारा लोगों को ये लोग ठग रहे हैं । जीव ही नहीं है । परलोक भी नहीं है । न पुण्य है, न पाप है, उसके अभाव में शुभ-अशुभ फल कैसे होगा? लोक व्यर्थ में परभव के दुःख से डर रहे हैं । इस भव में पुण्य कर्म मानकर व्यर्थ क्लेश भोग रहे हैं।''

''जो नजरों से देखा जाता है, उतना ही लोक है । खाओ पीओ और मौज करो । भौतिक सुखों को छोड़कर परलोक में सुख की आशा से तप करनेवाले भ्रष्ट होंगे । जैसे गीदड़ मांस को किनारे पर रखकर मच्छली लेने आया, मछली जल में चली गयी । और किनारे रखा मांस गृद्ध पक्षी ले गया । इस प्रकार ऐहिक विषयसुख को छोड़कर परभव के सुख को लेने के लिए दौड़नेवाले उभय भ्रष्ट होकर तीव्र तप व्रत नियमादि के पालन से स्वयं को ठगते हैं ।'' इस प्रकार पुरोहित की कर्णकटु वाणी को सुनकर राजा ने रोष को छुपाकर मंत्री का मुख देखा । तब सर्वविद्या के ज्ञाता मंत्री ने कहा 'रे मूढ़! स्वसंवेदन सिद्ध ऐसे जीव तत्त्व का निषेध क्यों करता है । पीड़ित शरीरवाला भी पुत्र जन्म एवं समाचारादि से सुख को कौन भोगता है ? स्वस्थ शरीर में भी पुत्र मरणादि के दुःख को कौन भोगता है? मेरा शरीर कृश है, स्थूल है । इसमें स्व स्वामी भाव को कौन धारण करता है ? जीवकी सिद्धि है ही । जीव सिद्ध होने पर परलोक भी सिद्ध, पाप-पुण्य, सुख-दुःख सभी सिद्ध हो गये । जीव के बिना 'मैं नहीं हूँ' ऐसा कौन बोलता है ?'

'अहं च नास्मि' इसमें तो मेरी माता वन्ध्या है, यह न्याय लागू होता है । अतः दानादि धर्म से स्वर्गादि का फल और हिंसादि से नरकादि का फल प्राप्त होता है यह सिद्ध है ।'' इस प्रकार मंत्री के वचन से पुरोहित निरुत्तर हो गया। सभा में राजा से भी अपमानित होकर घर गया । उस दिन से लज्जा के कारण राजसभा में आना उसने बंद कर दिया । मंत्री सत्कारित होकर घर गया। इस प्रकार मंत्री का समय गुर्वादि के पास एवं राजा के पास व्यतीत हो रहा है।

एकबार राजा को मस्तक वेदना उत्पन्न हुई । औषधोपचार से शांत न होने पर राजा ने पुरोहित को बुलाया । पुरोहित मंत्रादि का ज्ञाता था । उसने उस वेदना को मंत्र से शीघ्र दूर कर दीया । राजा ने उसे आभूषण आदि भेंट दिये। वह पुनः राजा के पास आने लगा । लोगों में भी उसने पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त की । वह नीति, अर्थ और कामशास्त्रों में किंचित् धर्म की बातों का मिश्रणकर राजा का मनोरंजन करने लगा । एक बार मंत्री ने राजा से कहा 'राजन्! इस चार्वाक चंडाल का संग करना उचित नहीं है ।'' इस प्रकार मंत्री के वचन पर भी राजा मौन रहा । पुरोहित ने क्रोधित होकर सोचा हा! हा! शुद्ध विप्रकुल में उत्पन्न होकर भी इसने मुझे चंडाल कहा । पहले भी इसने सभा में मेरा अपमान किया था। अब उस पराभव को फिर ताजा कर दिया । इस प्रकार पराभव सहन करने वाला अधमता को प्राप्त होता है । क्योंकि मानी प्राणों को छोड़ सकता है । परंतु पराभव सहन नहीं कर सकता । कहा भी है ''मान खंडन से प्राण त्याग उत्तम, प्राणनाश से क्षण मात्र दुःख, मान भंग से प्रतिदिन दुःख।

कीचड़ पैरों से रौंदा जाता है, अग्नि नहीं । इसलिए प्राण जाय तो जाय, सुख भी जाय तो जाय, परंतु किसी भी

उपाय से मंत्री का अनर्थ तो करूंगा । ऐसा विचारकर पुरोहित अपने घर गया ।

अब वह मंत्री के छिद्रों को देखने लगा । मेरी नास्तिकता के कारण राजा मेरे अधीन नहीं होगा । राजा अधीन हुए बिना मंत्री का अनर्थ करने में मैं असमर्थ हूँ । ऐसा सोचकर किसी साधु के पास जैनी क्रिया का अभ्यासकर मायावी श्रावक बनकर राजा की सेवा करने लगा । मंत्री के समान श्रावकाचार की बातें करता हुआ राजा को मोहित करने लगा । धर्मदंभ से कौन ठगा नहीं जाता ?

मंत्री ने उसकी माया जान ली थी पर उसने उपेक्षा भाव रखा । और पुरोहित राजमान्य हो जाने से कारण के बिना दूर करना भी संभव नहीं था । पुरोहित धर्मशास्त्रों की बातों के साथ राजा को कामशास्त्र की बातें भी सुनाकर मनोरंजन करता था । इस प्रकार प्रतिदिन होने से कामराग ने धर्मराग को धक्का दे दिया । जैसे मजीठ का रंग काजल के संग से नष्ट होता है । अगरु की गंध लहसुन से नष्ट होती है । एक बार किसी कार्य से पुरोहित मंत्री के घर गया । मंत्री ने उसे आसन देकर (आलाप संलाप से) सम्मानित किया ।

पुरोहित ने इधर उधर देखते हुए मंत्री की दोनों पत्नियों को देखा । और सोचा 'अहो! इनका अनुपम सौंदर्य है। रूप के अनुमान से गुण भी निश्चय से संभवित हैं । धन्य हैं इस मंत्री को जिसको ऐसा भोग संगम मिला है । साथ में मेरी इच्छा पूर्ति का उपाय भी मिल गया है।' पुरोहित कार्य पूर्णकर स्वगृह गया । पुरोहित लग्नादि बल से अनागत बातें बताकर राजा को खुश भी करता था । एक बार एकांत में राजा ने पुरोहित को पूछा 'हे पंडित ! मेरे राज्य में कोई न्यूनता तो नहीं है? तब

मंत्री के द्वेष से पुरोहित बोला 'हे स्वामिन् ! गज अश्व आदि सभी अन्य राजाओं से अधिक हैं, परंतु धर्म अर्थ काम में पुरुष के लिए काम ही सुखकर है । धर्म-अर्थ का फल काम ही है। वहाँ भी काम का मुख्य साधन स्त्री है । वह भार्या आपके पास नहीं है । इससे मैं मानता हूँ कि राज्यादि समृद्धि सब निष्फल है।'' विस्मित होकर राजा बोला ''रे विप्र! क्यों असत्य बोल रहा हैं । बहुत सारी स्वरूपवान व गुणवान रानियाँ हैं ।'' विप्र बोला ''बहुत हैं, परन्तु उनमें आपके अनुरूप एक भी नहीं है। अत: सत्तामात्र से क्या? संख्यामात्र से क्या? कौद्रवा का भी भोजन, काँच के भी अलंकार, खारा जल भी तृषा छेदे, वल्कल से भी देह आच्छादित किया जाय, परंतु वे घृतपूर्ण, कनक, द्राक्षजल दैवीवस्त्र समान तो कार्य नहीं कर सकते। वैसे ही तुम्हारी स्त्रियाँ स्त्री का कार्य नहीं कर सकती। तब राजा ने पूछा ''क्या मेरी प्रियाओं से भी रूप, सौभाग्य और गुणाधिक अंगना कहीं देखी या सुनी है?'' विप्र बोला ''स्वामिन्! मैंने दो स्त्रियाँ साक्षात् देखी हैं। उनका रूप देखकर ही मैं तुम्हारी प्रियाओं को तृण समान मानता हूँ। राजा ने पूछा ''किसके घर? वे कन्याएँ परिणीत हैं या अपरिणीत?'' वह दुष्टात्मा बोला ''अशक्त और अनुद्यमी ऐसे तुम्हारे द्वारा पूछना भी व्यर्थ है।'' राजा ने कहा ऐसा क्यों बोलता है । क्या मैं अशक्त और अनुद्यमी हूँ?'' विप्र ने कहा ''अगर ऐसा है तो वे स्त्रियाँ आपके मंत्री की पत्नियाँ हैं। आपका वह नौकर है । वहाँ कौनसा पराक्रम? उद्यम कर के अंत:पुर में ले आइए । वे तुम्हारे ही योग्य है। क्योंकि स्त्रीरत्न उचित स्थान पर शोभा देता है। तुम्हारा रूप, ऐश्वर्य, पराक्रम, राज्यादि सभी उन दो स्त्रीयों के बिना निष्फल समझना। स्त्रियों से अधिक कुछ नहीं है । किंकर की प्रिया तुमसे अधिक रूपवान हो तो किंकर को लज्जा आनी चाहिए । स्वामी से ज्यादा

भोग उचित नहीं है। गृह आदि सभी स्वामी से न्यून चाहिए। आपको तो उसकी प्रिया को अंत:पुर में लाकर उसे सजा देनी चाहिए।'' इस प्रकार विप्र वचन को सुनकर उद्धत कामवासना वाले ने भी विचारा 'परस्त्री परिहार नामक व्रत का' मैं खंडन नहीं करूंगा । फिर विप्र से कहा ''सब अच्छा करूंगा।'' विप्र वहाँ से घर गया ।

राजा की आज्ञा लेकर मंत्री ने एक जिनचैत्य बनवाया था । उसमें जिन बिंब प्रतिष्ठित करने के प्रसंग पर विशाल पैमाने पर साधर्मिक वात्सल्य का आयोजन किया और राजा को भी सपरिवार निमंत्रण दिया । राजा ने सोचा ''चाहता था वहीं हुआ'' मैं मंत्री पत्नियों को इस मौके पर देख लूंगा । समय पर राजा गया । भोजन परोसने का कार्य मंत्री अपनी पत्नियों सहित कर रहा था । राजा को अधिक आदरपूर्वक तीनों भोजन परोसते थे । कौए की दृष्टि घाव पर रहती है । वैसे ही राजा की दृष्टि मिष्टान्नभोजन पर न रहकर, बार-बार स्वरूपवान चमड़े से ढकी विष्टा की पुतली पर जा रही थी । फिर भी जैसे तैसे भोजन पूर्णकर काम विह्वलता को छुपाकर, मंत्री प्रदत्त तांबूल दिव्यदुकूल आभरण आदि को स्वीकारकर घर आया । एक बार एकान्त में विप्र को राजा ने कहा 'मंत्री पत्नियाँ तो तूने कहा उससे भी अधिक रुपवान् हैं ।' विप्र ने कहा ''मैं तो आपका चाकर हूँ । क्या मैं आपसे झूठ बोलूंगा ? अभी आप उनको अंत:पुर में लाकर कृतार्थ बनें ।'' भूपति बोला 'ऐसा कैसे करें ? क्योंकि परस्त्री परिहार के व्रतभंग से तो दुर्गति होगी, अपयश फैलेगा, स्वकुल मलीन होगा, उनको ग्रहण करने से लोक निन्दा करेंगे । एकान्त में उनको लेने का कोई उपाय भी नहीं है । वैसे मंत्री मेरा धर्म मित्र भी है । सुश्रावकों में अग्रेसर है, धर्म सहायक होने से उपकारी है, विनयी है,

न्यायी है, पराक्रमी है, बुद्धिमान है, ऐसे निर्दोषी पर दोषारोपण कैसे उचित है ? फिर विश्वासी पर विश्वासघात का पाप कौन करें ? इससे पाप का मूल ऐसा परस्त्री ग्रहण कौन शुद्ध बुद्धिवाला इहभव और परभव विरुद्ध कार्य करेगा?"

राजा के ऐसे वचन सुनकर दुर्बुद्धि का भंडारी पुरोहित अंतर में दुष्ट, बाहर से शिष्टता बताता हुआ बोला - "स्वामिन्! आपने अच्छा कहा । परंतु एक पक्षीय बात कैसे चलेगी ? नीतिशास्त्र की बात तो सुनो । भक्त होता है वह हितकारी वचन बोलता है । हितकारी काम करता है । जो रत्न जगत में उत्पन्न होते हैं, उसका स्वामी राजा होता है । सब स्त्रियाँ के स्वामी आप हो । आपके लिए कोई परस्त्री है ही नहीं । मंत्री की पत्नी ग्रहण करने में व्रत भंग कैसे होगा? अगर स्वामिभक्त मंत्री है तो अपनी पत्नियाँ समर्पित क्यों नहीं करता? और मैंने तो सुना है कि यह तुम्हारे वैरी किसी राजा के वश में है ।

एक दिन आपको मालूम हो जायगा । आप सरल हैं, वह मायावी है । आपकी इससे मित्रता कैसी ? आपका द्रोह करने वाला अग्रेसर भी कैसे ! धर्म सहायकता भी आपका विश्वास पाने के लिए ही । उसकी बुद्धि आदि शक्ति भी गुण के लिए नहीं । यह दोषवान् आपके लिए विश्वसनीय नहीं है । परंतु आपने इस पर विश्वास किया है । समय आने पर सब प्रकट करूंगा ।" राजा ने सोचा क्या यह कहता है, वह सब सत्य है? समय पर सब प्रकट होगा । राजा ने उसे आज्ञा दे दी । वह गया । परंतु पुरोहित ने राजा के हृदय में मंत्री के प्रति अविश्वास का बीज बो दीया । उस दिन से राजा मंत्री पर शंका करता हुआ, उसकी प्रियाओं को पाने की इच्छा करता हुआ, बाहर से मित्रता बताता था । कहा है "शत्रुओं के आयुधों से

जिनका हृदय नहीं भेदा जा सके वैसे शूरों का भी हृदय दुर्जन खल वाक्यों से भेद देता है । दुर्जन अंतर में प्रविष्ट होकर मैत्री का विनाश करता है । हंस की चोंच क्षीर-नीर का भेद करती है । अग्नि जलाती है और वायु का संगम हो जाय तो कहना ही क्या?''

गिरिसंगमनगर में समरवीर राजा राज्य करता था । एक बार नरवीर राजा के साथ उसका विरोध उत्पन्न हो गया । उस समय राजा ने नगर में प्रवेश करने वालों की जांच करनी प्रारंभ कर दी थी । तब छिद्रान्वेषी पुरोहित ने मंत्री पर अपकार करने का अवसर जानकर कूटलेख लिखकर बहुत द्रव्य देकर एक विप्र को दिया, और माया करने का शिक्षण भी दे दिया । वह लेख लेकर बाहर से आया। धूलि धूसरित होकर आया । पहरेदारों को जांच में लेख मिला । राजा के पास ले गये, राजा के पूछने पर उसने कहा ''मैं इसी नगर का नागरिक निर्धनावस्था के कारण दानी समरवीर राजा के पास गया था । उसने यह पत्र मतिसुन्दर मंत्री को देने के लिए मेरे साथ दिया है । मुझे स्वर्ण भी दिया है । लेख में क्या लिखा है, मुझे मालूम नहीं । राजा ने विप्र को इजाजत देकर लेख को पढ़ा ।

''स्वस्ति श्रीगिरि संगमनगर से राजाधिराज समरवीर राजा रतिवर्धन नगर में मेरे हृदयमित्र महामंत्री श्रीमान मतिसागर नामा सस्नेह आलिंगनपूर्वक समाचार भेजते हैं कि हम सदा कुशल हैं । आपका कुशल चाहते हैं । आपने पूर्व में कहा था कि मैं अवसर पाकर विश्वस्त राजा को बांधकर आपको राज्य दूंगा । उस कार्य के लिए आप प्रयत्नशील होंगे । वह दिन जब आये, तब हमें शीघ्र सूचित करें, जिससे हम सेना सहित आकर राज्य ग्रहणकर आपको आधा राज्य देने की शर्त पूर्ण करेंगे । इस में

कोई संदेह न रखें । जो कोई प्रधान कार्य हो तो निवेदन करावे। इति मंगलम्''।

राजा ने सोचा ऐसा कभी न सोचा न सुना । ऐसे श्रावक के विषय में किसीने कपट से दोषारोपण तो नहीं किया ! परंतु ऐसी विचारणा मैं क्यों करूं ? मंत्री की पत्नियों को प्राप्त करने का यह स्वर्णावसर हैं । मैं क्यों छोडुं ? इसका यह अपराध प्रकटकर उसको दंडितकर उसकी पत्नियों को स्वाधीन करलुं । इससे मेरा अपवाद भी नहीं होगा ऐसा विचारकर लेख मंत्री को दिया । मंत्री ने अपनी बुद्धि से पुरोहित का कपट जानकर कहा "नाथ ! यह किसी दुष्ट की अनर्थचेष्टा है।" तब भूपति क्रोधित होकर बोला : रे दुष्ट! तू ही दुष्ट है। मेरे जैसे विश्वासी पर ही तू ऐसी चेष्टा करता है । स्वयं का दोष दूसरे पर डालकर मुझे ठगना चाहता है।" ऐसा कहकर लेख सभा को बताया। उन सभासदों ने मंत्री में यह दोष असंभवित जाना और दूसरी बात कहने को समर्थ न होने से मौन रहे । तब राजा ने अपने सैनिकों के द्वारा मंत्री को जेल में डलवाकर उसकी प्रियाओं को अंतःपुर में ले आया । उसके मकान पर अपना अधिकार कर लिया । राजा अपने को कृतकृत्य मानता हुआ, अपने राजमहल में गया । तब खिन्न हुआ मंत्री सोचने लगा ।

'धिक्कार है ऐसे राजा को । कहा है "सर्प, दुर्जन, नृप, आग, अर्थी, (याचक) नारी, यम, भाग्य, शस्त्र, अपथ्य, अम्भ (जल) विष ये किसी के नहीं होते।" राजा ने यह कार्य मेरी पत्नियों पर राग के कारण किया है । भोजन के अवसर पर जाना था । धिक्कार है इस वासना को । नीतिज्ञ, धर्मज्ञ एवं कुलीन राजा भी मुझ पर ऐसा अत्याचार करने लगा ।'

ऐसा लगता है, यह सब चार्वाक पुरोहित की चाल है । उसने ही राजा को भ्रमित किया है । व्यर्थ में किसी को दोष

नहीं देना है । मेरे किए हुए कर्मों का ही यह फल है । अब राजा की विपरीतता के कारण मेरा रक्षक कोई नहीं है । प्रियाओं के शील रक्षण का उपाय भी कोई नहीं। अब तो चिरकाल से आराधित जैन धर्म ही मेरा एक मात्र शरण है । धर्म को पाये हुए लोगों को प्राय: देव वांछित फल देते हैं । अगर मैंने धर्म स्वीकार करने के दिन से शील, सम्यक्त्व में किंचित् विराधना न की हो, तो मेरी विपत्ति शीघ्र नष्ट हो । ऐसा सोचकर मंत्री ने कायोत्सर्ग किया। उससे आकर्षित शासनदेवी ने साक्षात् प्रकट होकर कहा "तेरी विपत्ति नष्ट हो गयी । कायोत्सर्ग को पार। प्रात: राजा स्वयं सत्कार करेगा, तब ज्ञात होगा । "ऐसा कहकर वह गयी । मंत्री ने धर्म महात्म्य पर विचार करते हुए कायोत्सर्ग पूर्ण किया । इधर मंत्री पत्नियाँ भी शील भंग की आशंका से चित्रशाला में रहते हुए पश्चात्ताप करने लगीं । राजा ने उनको वश में करने हेतु दासी भेजी । तब उन्होंने दासी को धक्का देकर निकाल दिया । स्वर्ग समान चित्रशाला में भी वे अपने को कारागृह में मानने लगी, और विचारने लगी । पति एवं स्वजनों पर विपत्ति से भी शील भंग की विपत्ति बड़ी है । अगर राजा ने शीलभंग का प्रयत्न किया, तो हम मर जायेंगी। कहा है"

प्राणत्याग उत्तम न शील खंडन, प्राण त्याग में क्षण दु:ख और शील खंडन में नरक दु:ख । अनार्यों के द्वारा पराभव होता हो तो राजा शरणभूत होता है । परंतु राजा ही अमर्यादी हो जाय तो रक्षक कौन? अब तो धर्म ही शरण है । वही इस विकट संकट में रक्षा करेगा । उन्होंने सोचा कि हमने सम्यक्त्व और शीलादि धर्म को मन से न विराधा हो तो हमारा शील अखंडित रहो । हम तब तक कायोत्सर्ग में रहेगी।' दोनों कायोत्सर्ग में रही । तब देवी ने प्रकट होकर कहा "काउस्सगग पार लो । मैं ऐसा करूंगी जिस से तुम्हारा शील अखंडित

रहेगा ।'' देवी गयी । राजा रात को अंत:पुर में आया । उनको लाने को दासी भेजी । दासी उन दोनों को वहाँ लायी । राजा ने देवी के अनुभाव से पैर और मुख को छोड़कर कुष्ठ रोगवाली प्रीतिसुन्दरी को देखा । तब राजा के पूछने पर प्रीतिसुंदरी ने कहा ''यह रोग चिरकाल से है । वैद्यों से असाध्य है ।'' गुणसुन्दरी के पास जाने पर असहनीय दुर्गंध उसके शरीर से निकलते देख, पूछने पर उसने असाध्य रोग कहा । राजा ने उन दोनों को चित्रशाला में भेज दिया । फिर स्वयं सोचने लगा । 'धिक्कार है भाग्य को जिसने ऐसी रुपवान् स्त्रियों को ऐसी पीड़ित की हैं । मैंने वस्त्राच्छादित होने से जाना नहीं । उस पुरोहित ने मेरी बुद्धि बिगाड़ दी । उसने ही मुझसे यह पाप करवाया है । सर्वगुण संपन्न मंत्री को मैंने कष्ट में डाला । मैंने धर्म, कीर्ति, कुल और यश मलीन किया। यह सब पुरोहित का ही कपट होगा । वह पुरोहित दंभी, अधम ही है । मंत्री के द्वारा तिरस्कृत होने से, उसने ही मंत्री को अपाय कष्ट में डाला है । अब प्रात: मंत्री को पुन: मंत्री पद पर बिराजमानकर उसकी पत्नियाँ उसे देकर अपराधी को दंडित करूंगा ।' ऐसा विचारकर रात्रि पूर्ण की । प्रात: राजसभा में उस लेख लानेवाले को बुलाया और पूछा ''सत्य बोल, यह लेख तुझे किसने दिया ।'' डर से न बोलने पर सैनिकों ने ताड़ना दी । तब विप्र बोला ''मुझे मत मारो । मुझे स्वर्ण का लोभ देकर यह कार्य पुरोहित वसुसार ने करवाया है ।'' फिर राजा ने उस लेख को पुन: पढ़ा और अक्षरों का निरीक्षण किया । वसुसार के अक्षर पहचाने । फिर अपने प्रधान पुरुषों को भेजकर मंत्री को सम्मानपूर्वक राजसभा में बुलाकर गाढ़ आलिंगन देकर आभूषणादि से सत्कारकर, पूर्ववत् मंत्री पद प्रदान किया । उसकी प्रियाओं को वस्त्राभूषणादि

से सम्मानितकर मंत्री के घर भेजा। राजा ने लेखवाहक के साथ पुरोहित को दंडितकर देश से निकाल दिया ।

मंत्री और उसकी पत्नियों ने देवी का उपकार मानकर धर्म के महात्म्य की बार-बार अनुमोदना की ।

एकबार राजा ने अपने प्रिय पात्र मंत्री से कहा "तेरी पत्नियाँ दोष युक्त हैं, तो तू दूसरा विवाह क्यों नहीं करता ? तब मंत्री ने कायोत्सर्ग और देवी आगमन की बातकर के राजा के मन में धर्म का अधिक महात्म्य बिठाया । राजा ने सोचा "अहो! मेरे भाग्य से देवी ने मुझे भस्मसात नहीं किया। देवी ने मुझ पर अनुकंपा की ।" राजा ने उन तीनों की, धर्ममहात्म्य की अनुमोदना की, और मंत्री के पास पुनः अपने अकार्य की क्षमा की । इस प्रकार सम्यक्त्व आदि धर्म की महिमा से प्रजा पुलकित होकर प्रशंसा के पुष्प बिछाने लगी और धर्माचरण करने लगी ।

एकबार राजा ने गुरु के पास परस्त्री की इच्छा से जो कार्य किया उस पाप की आलोचना लेकर बहुत कर्मो का क्षय कर दिया । तीर्थयात्रादि पुण्यकार्य किये । अनुकंपा दान दिया । अपने राज्य में अमारी का प्रर्वतन कराया । इस प्रकार राजा अपना समय निर्गमन कर रहा था ।

मंत्री भी उत्कृष्ट भाव से उपरोक्त पुण्य कार्य शक्ति अनुसार प्रियाओं के साथ करता था । राजा और मंत्री प्रतिदिन जिनेश्वरों की त्रिकाल पूजा, दोनों समय आवश्यक पर्वतिथि पौषध करते थे । मंत्री पत्नियाँ भी शक्ति अनुसार जिनभक्ति आदि धर्माचरण करती थी ।

एकबार अतिबल केवलि भगवंत अनेक मुनियों के साथ उद्यान में पधारे । उद्यान पालक ने राजा को समाचार दिये ।

राजा, मंत्री नगरजन सभी वंदन देशना श्रवणार्थ आये । सभी ने त्रिप्रदक्षिणा की और वंदनकर यथायोग्य स्थान पर बैठे । केवलज्ञानी ने देशना में शरीर की अनित्यता, लक्ष्मी की चंचलता बताकर इन दोनों का उपयोग धर्म मार्ग में सत्वर करने को समझाया । राजा ओर मंत्री अधिक संविग्न हुए ।

मंत्री ने पूछा "हे भगवंत! मैने पूर्व में कौन से पुण्य-पाप के कार्य किये उसे बताने की कृपा करे ।" तब सभा को बोध हो, जिनशासन की प्रभावना हो, इसलिए मंत्री का पूर्वभव केवलज्ञानी ने सुनाया ।

इसी भरतक्षेत्र में रत्न संचय नगर में नरदत्त नामक राजा था । उस राजा के नन्दन नामक मालि था । उसकी सुनंदा और सुभगा नामक दो पत्नियाँ थी। नन्दन राजा के उद्यान में से पुष्पों की मालाएँ, देवपूजा और अंगभोग के लिए पूर्ति करता था । कभी कभी पुष्पों के मुकुट, अलंकार आदि बनाकर राजा को देता था । उस उद्यान में एक चैत्य में युगादीश को जन समूह से पूजित देखकर सोचा ये कोई महान् देव हैं, जिससे इतने लोक इनकी पूजा करते हैं ।" उस दिन उसने भगवान के सामने मनोहर फल चढ़ाये । और बाद में राजा को पुष्प अर्पण करने गया । उस दिन राजा उस पर अधिक प्रसन्न हुआ अधिक भेंट दी । नन्दन ने इसे प्रभु पूजा का फल माना । उस दिन से प्रभु के गुणों से अनभिज्ञ भी प्रतिदिन पुष्प फलों से ज्यादा पूजा करने लगा । इधर राजा भी उस पर खूब प्रसन्न रहने लगा । राजमानादि अधिक देखकर उसकी पत्नियाँ भी प्रभु पूजा में मग्न होने लगी । कहा है- "दृष्टफल में कौन प्रमाद करें" उस नन्दन का एक नौकर था । सुकन्ठ नामा । एक बार पुष्प ले जाते हुए देरी से पहुँचने पर नन्दन ने कहा "क्या तुझे कैद में

डाल दिया था, सो पूजा का अवसर छोड़ दिया ।'' इस वचन से वह भी क्रुद्ध होकर पुष्पभार को वहाँ छोड़कर देशान्तर जाकर, तापस के संसर्ग में आकर, तापस हुआ । नन्दन ने स्वयं पुष्प ले जाकर राजा को समर्पित किये । राजा की ओर से अधिकमान पान लक्ष्मी की वृद्धि से अधिकाधिक जिन पूजा में वृद्धि की । वह मालि नन्दन का जीव आयु पूर्णकर तू मंत्री हुआ। वे ही दोनों पत्नियाँ तेरी पत्नियाँ हुई । सुकंठ तापस पुरोहित हुआ । पूर्व के वैर से उसने तुझे कैद में डलवाने का कार्य किया । जो वचन से बंधा वह कर्म भी साक्षात् भोगना पड़ता है । इससे हे भव्यात्माओं । पांचों इंद्रियो के विकारों का संवर करो । यह सुनकर मंत्री को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। मंत्री ने कहा हे भगवंत ! आपने जो कहा, वह सत्य है । मैंने वैसा ही देखा । अव्यक्त जिनपूजा का यह फल है तो समझपूर्वक जिन पूजा, जिनाज्ञा पालन का फल कितना ?'' इस प्रकार चिन्तन करते मंत्री और राजा अधिक भक्ति परायण हुए और एक मात्र वचन के पाप से बहुत फल श्रवण से संवेग को प्राप्त हुए । भगवंत को वंदनकर सभी अपने-अपने घर गये । मंत्री पत्नियों को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ । वे भी धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धावान् हुई । क्रमश: राजा और मंत्री को अनेक पुत्र हुए और अनेक कन्याओं से विवाह किया । एक बार दोनों ने वैराग्यभाव से प्रेरित होकर अपने-अपने पुत्रों को राज्य एवं मंत्री पद देकर ब्रह्मचर्यपालन में रत हुए । वे दोनों एक बार पौषध में थे नगर में आग लगी । जल, धूल आदि से बुझाने का प्रयत्न करने पर भी पौषधागार तक पहुँच गयी । पौषध में स्थित राजा का परिवार भयभ्रान्त होकर बोला अग्नि पास में आ गयी हैं । इसलिए बाहर आओ । ऐसा सुनकर राजा और मंत्री ने

सोचा "आज पौषध उत्सर्ग से लिया है । प्राण जाय तो जाय परंतु प्रतिज्ञा का भंग कैसे करें?"

'प्राण सभी जगह सुलभ हैं, शुद्ध धर्म दुर्लभ है । अत: प्राण जाने के प्रसंग पर शुद्ध धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए ।'

बहुत कहने पर भी जब राजा व मंत्री को बाहर निकलते न देखा तब दूसरे पौषार्थि सब बाहर आ गये । इधर राजा व मंत्री ने अग्नि का प्रकोप देखकर, लोगों का भयारव सुनकर सागारी अनशन स्वीकार कर लिया । इतने में देखते हैं तो न तो अग्नि हैं और न भयारव है । परिवार भी स्वस्थ स्थित है । राजा और मंत्री विचार करते हैं कि हमे क्षुभित करने के लिए किसी देव ने अग्नि भय दर्शाया है । इतने में वहाँ पुष्प वृष्टि हुई । उन दोनों को प्रणाम करते हुए, चारों दिशाओं को उद्योतित करते हुए दो देव प्रकट हुए । और बोले 'सौधर्मेन्द्र ने आपके व्रत की प्रशंसा की । हम परीक्षा करने आये । आपको दृढ़ जानकर हम आपको नमस्कार करते हैं । वहाँ रत्न सुवर्ण की वृष्टिकर देव स्वस्थानक गये । पौषध का कालपूर्ण होने पर दोनों ने पौषध पारकर जनमुख से धर्म प्रशंसा सुनते हुए, घर जाकर पारणा किया । श्रावक की ग्यारह प्रतिमा वहन की । अंतिम समय में अनशन पूर्वक आराधनाकर पंचपरमेष्ठि स्मरण पूर्वक आयु पूर्णकर शुक्र देव लोक में शक्र के सामानिक देव हुए । मंत्री पत्नियाँ भी वहीं देव की मित्र देव हुई । वहाँ भी सम्यक्त्व सहित नंदीश्वर तीर्थादि की यात्रा आदि धर्मकृत्य करते हुए, तीर्थंकर प्रभु की देशना सुनते हुए देवायुष्य पूर्णकर रहे थे । पुरोहित जीव आयु पूर्णकर नरक में गया । अनेक भव भ्रमणकर विप्र हुआ । तापस होकर अज्ञान तपकर ज्योतिष्क धूमकेतु देव हुआ । अतिबल मुनि मोक्ष में गये ।

नौमि-श्री-नेमिनामानं, जिनं सद्ब्रह्मचारिणाम् ।
राजीमती-प्रशास्तारं, रैवताचल संस्थितम् ॥

ब्रह्मचारी राजीमती व प्रतिबोधक, रैवताचल पर बिराजमान श्रीनेमिजिनेश्वर को प्रणाम करता हूँ ।

तह तह पयट्टिव्वं, जह जह रागदोसा विलिज्जंति ।
एस जिणाणमाणा संगहिया पुव्व सूरिहिं ॥

जिनेश्वर प्रभु के शासन में आत्म उद्धार का कार्य ही सर्वोत्तम कार्य है। आत्मोद्धार का अर्थ-अनादि कालिन आत्मप्रदेश पर रहे हुए कर्म परमाणुओं को दूर करना । संग्रहित कर्म परमाणु आत्मा को पुनः कर्म परमाणु संग्रहित करने के लिए प्रेरित करते हैं। आत्मा कर्म से प्रेरित होकर नये-नये कर्मबंधन करता रहता है। कर्मबन्धन की क्रिया मुख्यतया दो कारणों से होती है। वे कारण हैं-राग-द्वेष । संसारी आत्मा राग-द्वेष के आश्रित होकर अनेक प्रकार की क्रियाएँ करती रहती है। उस परिभ्रमण से आत्मा को मुक्त करना, अर्थात् राग-द्वेष से दूर होना ।

वास्तव में राग-द्वेष को दूर करने का मार्ग जिनशासन ही प्रशस्त करता है ।

जिनशासन का अर्थ है जिनाज्ञा का पालन । जिनाज्ञा का पालन ही राग-द्वेष से मुक्त करवाता है । उपरोक्त श्लोक में जिनाज्ञा का पालन कब हुआ कहा जाय, इसका स्पष्टीकरण महोपाध्याय श्री यशोविजयजी ने किया है ।

"वैसा आचरण किया जाय जिससे राग-द्वेष मंद होकर क्षय हो जायँ । यही जिनाज्ञा का अर्थ पूर्वाचार्योंने किया है ।" जिनाज्ञा का पालन संपूर्ण रूप से चारित्रधर्म स्वीकार करने से ही

होता है। चारित्रधर्म का प्रतिपालन करने के भाव, पूर्व में जिनेश्वर प्रभुकी द्रव्यभाव से भक्ति की हो, उसी आत्मा में प्रकट होते हैं। हम यहाँ एक ऐसे आत्मा की कथा प्रारंभ करने जा रहे हैं। जिसने लोगों को जिनपूजा करते देखकर भगवंत के आगे पुष्प फल आदि चढ़ाने प्रारंभ किये। उस दिन से दिनों दिन उसकी भौतिक उन्नति होने से प्रभु पर प्रीति बढ़ी और उसने प्रभु पूजा में ज्यादा ध्यान दिया । जिसके फल स्वरूप, नन्दन माली से मतिसुंदर मंत्री, और मतिसुंदर मंत्री से जयानंद राजा बनकर चारित्र लेकर, केवलज्ञानी बनकर, मोक्ष में गया ।

इसके पूर्व के पृष्ठों में नंदनमाली और मतिसुंदर मंत्री का जीवन चरित्र दिया है। अब मतिसुंदर जयानंद राजा होकर किस प्रकार धर्मोद्योत कर मोक्ष में गया । उस वर्णन को दिया जा रहा है।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मध्य में वैताढ्यपर्वत है। वह अत्यंत शोभायमान है । पूर्व पश्चिम समुद्र से संस्पृष्ट है। जहाँ अरिहंत के गुणगान करनेवाले किन्नर युगलों के गीत के शब्दों से गुफाएँ भी गाती हों वैसा प्रतिभासित होता है। जहाँ प्रथम दोनों श्रेणी में दक्षिणदिशि में पचास नगर और उत्तरश्रेणी में साठ नगर हैं। उन नगरों के घर स्वर्ण रत्नमय होने से अत्यंत शोभायमान हैं। दूसरी श्रेणी युगल में सौधर्मेन्द्र के लोकपाल, अभियोगीक देवताओं के नाना प्रकार के भवन मणिमय हैं। उस पर्वत के शिखर पर सिद्धायतन सिद्धकुट आदि नौ कुट हैं। देव-अप्सराओं की क्रिड़ा से वह स्थान शोभायमान है। सिद्धायतन में देव विद्याचारण, जंघाचारण, मुनि, विद्याधर आदि भक्ति करने आते हैं ।

वैताढ्यपर्वत की उत्तरश्रेणी में मणि और स्वर्ण से सदा उद्योतित

गृहों से रम्य गगनवल्लभ नगर का, प्रजा की सुरक्षा करने में पराक्रमी, बुद्धिशाली विद्याधरों का अग्रणी **सहस्त्रायुध** नामक स्वामी था । उसकी शीलादि गुणान्वित प्रीतम में अनुरक्त करुणा की देवी समान **मालिनी** नाम की रानी थी। उसने एक दिन स्वप्न में चक्र मुँह में प्रवेश करते देखा । नरवीर राजा का जीव गर्भ में आया । रानी ने राजा से कहा- राजा ने कहा 'तुझे चक्रवर्ती के समान पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी ।' गर्भकाल में माता ने आहार-विहार पर पूर्ण ध्यान दिया।

वर्तमान कालीन परिस्थिति पर आप लोगों को विशेष ध्यान देना चाहिए। कल्पसूत्र में गर्भ के प्रतिपालन पर विवेचन मिलता है। गर्भ का प्रतिपालन बालक के भविष्य में अत्यंत उपयोगी होता है। माता-पिता अवश्य ध्यान दें ।

गर्भकाल पूर्ण होने पर शुभमुहूर्त में दिशाओं को प्रकाशित करते हुए सर्व लक्षण संपन्न पुत्र का जन्म हुआ । सहस्त्रायुध ने वर्धापन कर उत्तमोत्तम रीति से जन्मोत्सव मनाया स्वप्नानुसार 'चक्रायुध' नामकरण किया । पांच धावमाताओं से लालित-पालित प्रजा के मनोरथों के साथ, बालक कल्पवृक्ष के समान बड़ा हुआ । समय पर सकल कला-कुशल हुआ । पिता ने उचित समय पर प्रज्ञप्ति आदि सहस्त्र-विद्याएँ दीं । कुमार ने भी यथाविधि विद्याएँ सिद्ध कर लीं । पूर्व के प्रबल पुण्योदय से दिव्य शस्त्र भी सिद्ध हो गये। पिता ने हजारों कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण करवाया । कुमार संसारिक सुखों को भोगता था ।

एकबार चारणश्रमण भुवनानंदन नाम के ज्ञानी गुरु सपरिवार पधारे । राजा देशना श्रवणार्थ गया । वंदनकर यथास्थान पर बैठकर देशना सुनी। सोचा, 'चक्रायुध राज्यधुरा वहन करने की योग्यतावाला हो गया है। अब मुझे मेरा आत्मकल्याण करना चाहिए।' उसने चक्रायुध का राज्याभिषेककर गुरु के पास चारित्र ग्रहण किया। चक्रायुध

भी सम्यक्त्व स्वीकारकर गुरु एवं पिता मुनि आदि को नमस्कारकर नगर में गया । अनेक लोगों ने भी सम्यक्त्वादि ग्रहण किया। गुरु ने सपरिवार अन्यत्र विहार किया। सहस्रायुध राजर्षि ग्रहण-आसेवन शिक्षा को ग्रहणकर शास्त्रों का अध्ययनकर, गीतार्थ हुए। अनेक शिष्यों के स्वामी हुए । क्रमशः गुरु ने उन्हें आचार्यपद दिया ।

महापराक्रमशाली चक्रायुध विद्यादेवी के द्वारा दिये गये चक्र से नामकी साम्यतावाला हो गया । चक्रायुध नाम सार्थक हो गया । फिर अन्य, कृत्रिम रत्न बनाकर उसने स्वयं को 'चक्री' प्रसिद्ध किया। सभी राजाओं को जीतना प्रारंभ किया । एकबार वह प्रियाओं के साथ नंदीश्वरद्वीप के अर्हन्त भगवन्त के सामने नृत्य कर रहा था । उसकी पत्नियाँ विविध वाद्य बजा रही थी । नृत्य और भक्ति देखकर किसी देव ने अर्हत् भक्ति से खुश होकर कामीतकरी विद्या दी । विद्या और साधनाविधि विनयपूर्वक ग्रहणकर, भगवन्त को वंदनकर, देव को प्रणामकर वह पत्नियों सहित अपने नगर में आया । एकबार राजा देवप्रदत्त विद्या को किसी वन में सिद्ध करने गया । इधर लंकेश शतकंठ मेरुपर्वत पर के जिनबिंबो को वंदनकर लंका जा रहा था। विद्यासाधक चक्रायुध के उपर से विमान जाने से विमान स्खलित हुआ। नीचे चक्रायुध को देखकर क्रोधांध होकर लंकेश ने उसको एक वृक्ष के साथ नागपाश से बांधकर अपने नगरमें गया । फिर भी चक्रायुध ध्यान से विचलित न होने से विद्या शीघ्र सिद्ध हो गयी और वह नागपाश को तोड़कर बोली । वत्स! तेरे सत्त्व से मैं खुश हूँ। मेरी कृपा से तुं जगत विजेता बन । कार्य पड़ने पर मुझे याद करना। ऐसा कहकर वह अंतर्ध्यान हो गयी। चक्रायुध ने शतकंठ का कार्य प्रज्ञप्ति विद्या से जाना । विद्यासिद्ध चक्रायुध मंगल महोत्सवपूर्वक नगर में आया।

एकबार विद्याधर युगल ने चक्रायुध से कहा । "अयोध्या पति की आठ कन्याएँ आपके योग्य हैं । उनका पाणिग्रहण करना

चाहिए ।'' वह **दिग्यात्रा** के लिए जाना चाहता था । विशालसेना के साथ प्रयाण किया । अयोध्या के उद्यान में पहुँचा। राजा को समाचार भेजे । कन्या सहित दण्ड दो । तब श्रीचन्द्रराजा ने युद्ध की तैयारी की । युद्ध प्रारंभ हुआ । चक्री की सेना पराजित होने लगी। तब चक्रायुध ने श्रीचन्द्र को बाणों के आक्रमण से व्याकुल कर दिया। तब श्रीचन्द्र ने अपने पूर्व के आराधित देव को याद किया । देव आया । श्री चन्द्र ने कहा ''चक्रायुध को बांधकर मेरे पास ले आओ'' देव बोला ''इसके प्रबल पुण्योदय के कारण मैं ऐसा नहीं कर सकता । दूसरा कोई कार्य कहो ।''

मानव के पुण्य की प्रबलता हो तो देव-दानव भी उसका अहित नहीं कर सकते ।

श्रीचन्द्र ने कहा ''मुझे सद्गुरु के पास ले जा। जिससे मुझे पराभव सहन करना न पड़े । मैं वहाँ चारित्र ग्रहण कर लूंगा।'' तब देव ने चक्रायुध के शस्त्रों को स्तंभित कर दिया और श्रीचन्द्र को सद्गुरु के पास ले गया । वहाँ उसने चारित्र ले लिया। चक्रायुध ने अपने सामने श्रीचन्द्र को न देखकर जाँच करवायी तो श्रीचंद्र की दीक्षा के समाचार मिले । विस्मित चक्रायुध दोनों सेनाओं के साथ गुरु के पास गया । गुरु को और राजर्षि को वंदन किया । श्रीचन्द्रराजा की निस्पृहता से आकर्षित होकर उसके पाँचसौ मंत्रियों ने प्रतिबोध पाकर प्रव्रज्या ग्रहण की । चक्रायुध ने राजर्षि से क्षमायाचना की। श्रीचन्द्र के पुत्र को राज्य दिया। उसने अपनी आठों बहनों का विवाह चक्रायुध से किया। भूचरों में श्रीचन्द्र को जीता, तो सबको जीत लिया । ऐसा मानकर वह शतकण्ठ के पूर्व अपराध को यादकर लंका की ओर चला। शतकण्ठ ने उसको आते हुए जानकर लंका के चारों और साठ योजन का आग का दुर्ग बनवा दिया । तब चक्री ने ज्वालिनी

विद्या से अग्नि को बुझा दी। दुर्ग को मिट्टी के घड़े के समान चूर्ण कर दिया । दोनों राजाओं का तुमुल युद्ध हुआ । उस युद्ध में चक्रायुध ने शतकण्ठ के साथ विद्याशस्त्रों से युद्ध में उसके एक-एक शस्त्र का खंड़नकर उसके मस्तक पर वज्रमुद्‌गर से प्रहारकर मुर्च्छित कर दिया । फिर उसे एक वृक्ष के साथ बांधकर, रक्षकों को वहाँ रखकर, सेना को आश्वस्तकर चक्रायुध सो गया।

शतकण्ठ सोचने लगा ''इस लोक में एवं परलोक में जीव स्वकृत कर्म से ही सुख-दुःख भोगते हैं। अगर उस समय ध्यानस्थ चक्रायुध को मैंने उपद्रवकर नागपाश से नहीं बांधा होता तो आज मेरा पराभव नहीं होता । इस पराभव में दोष मेरा ही है ।''

सज्जन व्यक्ति वही है जो दुःख के समय अपने अपराधों को देखे और सुख के समय दूसरों के उपकार को देखें ।

उसने सोचा इस जगत में आरंभ अत्यन्त दुःखदायी है। मैं इस राज्यादि लक्ष्मी को छोड़कर चारित्र ले लूं । यह सोचकर उसने उसी समय पंचमुष्टि लोच कर दिया । तब भाव यति जानकर देव ने उसके बन्धन छेदकर मुनिवेश अर्पण किया । वह वहीं कायोत्सर्ग में स्थित रहा । चक्री को रक्षकों ने सारा वृत्तांत कहा । प्रातः उसने मुनि को वंदना की । स्तुतिकर, क्षमापनाकर, शतकण्ठ के पुत्र को राज्य देकर उसके द्वारा प्रदत्त सौ कन्याओं से विवाहकर अन्य द्वीपों के राजाओं को जीतकर उनके द्वारा प्रदत्त कन्याओं से विवाहकर वैताढ्यपर्वत पर आया। वैताढ्य की दक्षिण श्रेणी में एक महासरोवर के किनारे पर ठहरा । वहाँ क्रीडा निमित्त आयी हुई एक हजार कन्याओं को अपने पर अनुरक्त जानकर शादी कर ली । उन कन्याओं के रक्षकों ने उनके पिताओं को सूचना दी । वे युद्ध के लिए आये। उनको चक्री ने हरा दिया । उन खेचरों ने दक्षिणश्रेणि के मुख्य खेचरराजा रथनुपुर नगर के वह्निवेग को समाचार दिये । उसने चक्रायुध को दुत द्वारा कहलवाया

कि कन्याओं को वापिस दे दो या युद्ध के लिए सज्ज हो जाओं । चक्रायुध ने युद्ध के निमंत्रण को स्वीकारकर रथनुपुर को चला । दोनों सेनाओ में भयंकर युद्ध हुआ। सुभटों की निष्कारण मृत्यु से उद्विग्न वह्निवेग ने चक्रायुध से कहलवाया । हम दोनों आर्हत् हैं। युद्ध हम दोनों के लिए हैं। तो निष्कारण नर एवं पशुओं की हत्या क्यों करवाएँ हम दोनों ही युद्धकर, हार जीत का निर्णय कर लें। ''चक्रायुध ने उसकी बात स्वीकार कर ली । दोनों में घमासान युद्ध हुआ । उसमें चक्रायुध ने वह्निवेग को दुर्जय मानकर चक्र को याद किया । चक्र हाथ में आया । चक्र वह्निवेग पर फेंका । हृदय पर चक्र की चोट से वह्निवेग मूर्छित हो गया । तब चक्रायुध साधर्मिक के नाते उसको पंखे से हवा करने लगा । शीतल जल का छंटकाव किया । शुद्ध श्राद्ध होने से चिरकाल तक मूर्छा नहीं रही । संज्ञा को प्राप्त होने पर वह्निवेग ने सोचा, पूर्व में पिता के साथ दीक्षा ले ली होती, तो आज यह पराभव सहन करना नहीं पड़ता । यह दयालु और पराक्रमशाली है । अगर चक्र की आहत से मैं मर गया होता तो निश्चय से दुर्गति होती। क्योंकि पुण्य हीनों की सद्गति कैसे होगी? इसकी चेष्टा से ऐसा लगता है कि यह दयालु और साधर्मिक पर भक्तिवान है। अब तो प्रणाम आदि से संतुष्ट करना ही ठीक है । ऐसा सोचकर बोला । हे राजन्! आपकी अद्भुत कृपा है। अपराधी को भी तुमने नहीं मारा। अब मेरा राज्य ले लो। भाई के साथ युद्ध नहीं करूँगा । मैं चारित्र ग्रहण करूँगा। शक्तिशाली जानकर तुमको मैं प्रणाम करता हूँ । चक्रायुध ने कहा-मैं तेरे राज्य का इच्छुक नहीं हूँ । तुमने प्रणाम कर दिया । बस तुम राज्यश्री का उपभोग करो । फिर वह्निवेग ने उसको ससम्मान राज्य में ले जाकर स्व-पर पांचसौ कन्याएँ और दीं । पूर्व की शतकन्याओं के पिता ने भी प्रणामपूर्वक अपनी कन्याएँ दीं । वहाँ से सभी विद्याधर राजाओं ने उसका स्वामीत्व स्वीकार किया। सभी ने प्राभृत में गज-अश्व-रत्नालंकार आदि दिये । हजारों विद्याधर कन्याओं के साथ वहाँ

विवाह किया । विवेक युक्त चक्री ने वह्निवेग को मुख्य आठ नगर और शेष नगर विद्याधरों को दिये । फिर उत्तर श्रेणि में जाकर सभी विद्याधरों को जीते । उन्होंने भी हजारों कन्याएँ दीं । उनसे विवाहकर अपने नगर में सुखपूर्वक रहने लगा। इधर वह्निवेग संसार से उद्विग्न हो गया था । गुर्वागम तक संसार में रुका रहा । संसार के स्वरूप को समझने वाला संसार में मग्न नहीं होता । वह तो सदा संसार को छोड़ने की इच्छावाला ही होता है । ऐसे आत्माओं का पुण्य भी प्रबल होता है। उसके पुण्य से आकर्षित उसके संसारी पिता चार ज्ञान के धनी महावेग नाम के विद्याचारण मुनि भगवंत पधारे । समाचार मिलते ही सपरिवार देशना श्रवणार्थ गया । वहाँ पिता मुनि की देशना श्रवणकर सातसौ पुरुष-व स्त्रियों के साथ चारित्र ग्रहण किया । क्रमशः श्रीचन्द्र, श्री वह्निवेग, सहस्रायुध ये तीनों राजर्षि मोक्ष में गये । शतकण्ठ राजर्षि पाँचवें भव में मोक्ष में जायेंगे ।''

हे भव्यात्माओं! इस वर्णन को सुनकर अपने हृदय में चारित्रधर्म के महत्त्व को समझकर संसार से विरक्त होकर चारित्र लेकर आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ने का कार्य करे।

चक्रायुध के दिग्विजय का वर्णन कहने के बाद अब जयानंद के जन्म आदि की बातें कही जाती हैं ।

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में विजयपुर नगर था। वहाँ धर्म के प्रत्यक्ष फल को देखकर कोई नास्तिक नहीं था । वहाँ विजयलक्ष्मी से युक्त जय नामका राजा था । और विजय नामका उसका छोटा भाई युवराज था । सूर्य-चन्द्र के समान वे दोनों न्यायप्रिय थे। कहीं पर भी अनीति रूपी अंधकार नहीं था । वे मित्र को प्रसन्न होने पर पृथ्वी का दान देते थे । और शत्रु का नाश करते थे । उन दोनों को क्रमशः रति और प्रीति के समान विमला और कमला नामक रानियाँ थी। एकबार विमला ने सुखपूर्वक सोते हुए एक स्वप्न देखा। सिंह

सहित सुअर पास में आया। सुअर गोद में रहा और सिंह अन्यत्र चला गया । जागृत होकर पति को कहा । जयराजा ने कहा तुझे गुण में सुअर जैसा पुत्र होगा । और किसी अन्य स्त्री को सिंह के समान पुत्र होगा । दोनों में प्रीति होगी । रानी पुत्र होने के हर्ष के साथ गुणहीन होने के कारण खेद को प्राप्त हुई ।

इधर ज्योतिष्क देवलोक से वसुसार का जीव विमला की कुक्षी में आया । विमला में पुत्र के प्रभाव से हिंसा, क्रूरता, द्रोह, अविनय, निष्ठुरता आदि दोष उत्पन्न होने लगे। समय पर पुत्र प्रसव हुआ । जयराजा ने स्वप्न में माता ने सिंह के दर्शन किये थे, और पुत्र में सिंह समान गुण उत्पन्न हों, इस दृष्टि से पुत्र का नाम सिंहसार दिया।

कमला ने भी एक बार स्वप्न में सिंह और सुअर को पास आया देखा और सिंह गोद में रहा और सुअर कहीं चला गया । पति को कहने पर विजय ने कहा तेरे सिंह के समान पुत्र होगा और किसीको सुअर के समान पुत्र होगा या हो गया होगा। स्वप्न फल सुनकर कमला अत्यन्त हर्षित हुई ।

इधर शुक्र देवलोक से मतिसागर का जीव उसकी कुक्षी में आया । गर्भ के कारण धर्म एवं शौर्य के अनुकूल दोहद उत्पन्न हुए। युवराज ने सब पूर्ण किये । इधर शंखपुर के मानवीर राजा को जीतने के लिए जयराजा को विनयपूर्वक कहकर विजय युवराज गया । वहाँ युद्ध में उसे हराकर और बांधकर विजय मानवीर को जयराजा के सामने लाया । उसी समय एक दासी ने कमला की कुक्षि से पुत्र जन्म के समाचार दिये। जय-विजय दोनों भाई अत्यंत प्रमुदित हुए। इधर दूसरी दासी आयी और उसने कहा नाल दाटते समय स्वर्ण कलश मिला है। राजा ने वह कलश मंगवाया । अपने पिता के नामांकित रत्न से परिपूर्ण कलश देखकर अत्यन्त आनंदित होकर पूरे राज्य में

जन्मोत्सव मनाया। पुत्र का नाम श्री जयानंदकुमार दिया । अब दोनों पुत्रों का लालन-पालन धावमाताओं से होने लगा।

कला ग्रहण आयु में कलाचार्य के पास रहकर कला ग्रहण करने लगे । समय पर दोनों कलाविद् हो गये । कुलादि सामग्री समान होने पर भी कर्म के कारण प्रकृति में भेद हुआ। सिंहसार अधर्मी, दुर्भग, अन्यायकर्ता और अप्रिय वचनी व अविनीत था। और 'श्रीजयानंद' शुद्धधर्मी, सत्यवचनी, शूर, परोपकारी, उदार, कृतज्ञ, जनप्रिय था । लोको में सिंहसार उसके दुर्गुणों के कारण अप्रिय होने लगा । उधर 'श्रीजयानंद' अपने गुणों के कारण प्रिय पात्र होने लगा ।

सिंहसार लोगो के मुख से जयानंद के गुणों की प्रशंसा और अपनी निंदा सुनकर क्रोधित होता हुआ बाहर से प्रीतिवान रहा । जयानंद तो अपने बड़े भाई के प्रति आदर और अंतरंग प्रीति धारण करता था । गुणी गुण को देखता है । दोषी दोष को देखता है ।

एकबार वसंतऋतु में उद्यान में क्रीड़ा करते हुए दिव्य गीत, वाद्य ध्वनि को सुनकर शब्दानुसार दोनों कुमार उस ओर गये। एक गुफा के पास एक मुनि भगवंत के पास देव-देवीयाँ नाचगान कर रहे थे । कुमारों ने वह अद्‌भुत नाटक देखा । इधर देवदुंदुभि बजने लगी । मुनि भगवंत को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । अनेक देव आये और महोत्सव किया । स्वर्णकमलासीन होकर मुनि ने देशना दी । जयानंद ने सम्यक्त्व ग्रहण किया और पूछा हे भगवंत! यह नाटक करनेवाला देव कौन है ? केवलज्ञानी मुनि ने कहा-वैताढ्यपर्वत पर जयंत नामक विद्याधर सूर्यग्रहण देखकर प्रतिबोधित होकर दीक्षित हुआ । वह मैं श्रुताध्ययन कर गुर्वादेश से एकाकी विहार करते हुए चातुर्मास में विंध्याचल पर्वत की गुफा में उपवास करके रहा । उस गुफा से दो योजन की दूरी पर 'गिरिदुर्ग' नामक नगर है । वहाँ सुनंदराजा था । उसके दो सैनिक

भीम व सोम नामके राजा के प्रियपात्र थे । गुफा से एक कोस की दूरी पर राजा का गोकुल था। उसकी रक्षा के लिए वे वहाँ रहते थे । शिकार के लिए वन में आते थे । एकबार वे इस वन में आये । मृग को देखकर बाण मारा पर बाण न लगा । वे आश्चर्य में मृग के समीप आये । मुझे देखकर सोचा, 'इन महापुरुष के प्रभाव से अपने बाण स्खलित हुए हैं । ये कहीं हमें भस्म न कर दें' । इसलिए वे दोनों मेरे पास आये और बोले "हे तपस्वी! हमारे अपराध की क्षमा करो । आपके मृगों को नहीं मारेंगे । हमको भस्मसात् मत करना।" तब मैंने धर्मलाभ देकर कहा-"तुमको अभय है। किन्तु धर्मतत्त्व सुनो । सभी जीवों को सुख प्रिय है। सभी जीवितव्य चाहते हैं। उनके जीवन का अपहरणकर नरकातिथि मत बनो। क्योंकि मांसाहार, परस्त्रीगमन और पंचेन्द्रिय वध से प्राणी नरक में जाता है। अहिंसा पालन से आरोग्य, बल, यश, नित्यसुख और परम कल्याण होता है।" इस प्रकार धर्मश्रवणकर प्रतिबोध पाकर उन दोनों ने सम्यक्त्व सहित प्रथम अणुव्रत और मांसाहार का नियम लिया । भक्तिपूर्वक मुझे नमनकर स्वस्थान गये। व्रत की प्रतिपालना करने लगे। किसी समय उन दोनों के नियम का वृत्तांत सुनकर उस मिथ्यादृष्टि राजा ने क्रोधित होकर उनको आदेश दिया कि "जाओ, अलग-अलग मृग को मारकर ले आओ । जिससे आज तुम्हारे हाथ से मारे मृग के मांस से मेरी आत्मा को तृप्त करूँ। जाओ शीघ्र ले आओ ।" दोनों ने बाहर आकर निर्णय किया कि "मृग नहीं मिले" ऐसा प्रत्युत्तर थोड़ी देर वन में घुमकर आकर दे देंगे। वे दोनों वन में गये। भीम ने सोचा 'मृग को मारूँगा तो व्रतभंग और न मारुं तो राजा का कोप सहना पड़ेगा क्या करूँ? मैं परतंत्र हूँ। परतंत्रता में व्रतभंग का कोई दोष नहीं है। व्रत का फल परलोक में मिलेगा और राजा का क्रोध तो अभी' इस प्रकार सोचकर मृग पर बाण मारने लगा। तब सोम ने उसे बहुत समझाया । परंतु उसने मृगों को मारकर

राजा को अर्पण किये। सोम ने तो मुझे 'प्राण प्रिय है वैसे सभी को प्राण प्रिय है। राजा कुपित होकर मेरे प्राण हर लेगा तो भी मैं इन तृणभक्षक पशुओं को नहीं मारूँगा ।'

क्योंकि कहा है "नीतिवंत लोक निंदा करे या स्तुति करे, लक्ष्मी आवे या जावे, आज ही मरण आ जाय या युगान्तर में आये । परन्तु धीरपुरुष व्रत से विचलित नहीं होते। सत्त्वहीन पुरुष तप, श्रुत, ज्ञान धनवाले किसी निमित्त को पाकर स्व धर्ममार्ग को तजते हैं । सज्जन पुरुष तो मृत्यु के समय भी अपने व्रत से विचलित नहीं होते ।"

इस प्रकार सोचकर मृगों को छोड़कर सत्त्वशाली सोम ने राजा को मृग नहीं मिला, ऐसा उत्तर देकर घर गया । राजा ने भीम ने लाये मृग के मांस को आकंठ खाया । उसको बहुत दान दिया । फिर भीम से पूछा-"सोम मृग को क्यों नहीं लाया ।" तब भीम ने ईर्ष्या से सब कह दिया । राजा ने भीम को आदेश दिया । "मेरे सैनिकों को साथ ले जाकर मेरी आज्ञा का खंडन करनेवाले सोम को मारकर ले आ । मैं तुझे एक गाँव इनाम में दूंगा ।" ग्राम के लोभ से भीम सुभटों को लेकर गया । सोम को आशंका थी । वह पूर्ण होते देख सोम नगर के बाहर जाने लगा। भीम भी उसके पीछे गया। भीम ने सोम को देखा और कहा "रे दुष्ट! काल स्वरूप भूपाल के क्रुद्ध होने पर तू कितनी दूर भाग सकेगा ?" वह उसे देखकर जोर से भागा । थोड़ी देर में तो आगे के मार्ग पर थोटी छोटी मेण्ढकियां दिखायी दी । वह रुक गया । वह सत्त्ववान् पंच परमेष्ठि का ध्यान करता हुआ वहाँ ठहरा। भीम व भीम के सैनिकों ने बाण मारे पर एक भी बाण सोम को नहीं लगा । इतने में देव दुंदुभी हुई और सोम पर पुष्पवर्षा हुई । भीम और भीम के आदमीयों पर पत्थर वर्षा होने लगी। वे सभी भागे और राजा को जाकर सब वृत्तांत कहा । इधर देवी ने सोम के पास आकर मेंढकियों का अपहरण कर कहा। "तेरे धर्म की दृढ़ता से मैं प्रसन्न

हूँ। तू कायोत्सर्ग पार ले। मैंने मेण्ढकियों के विकुर्वण से तेरी परीक्षा की है। तू अब उस मुनि भगवंत के पास जा । रात वहाँ रहना । प्रात: तुझे राज्य मिलेगा । ऐसा कहकर वह चली गयी । सोम ने आनंदित होकर, कायोत्सर्ग पारकर, उपसर्ग के वृत्तांत को जानकर, यहाँ आकर मुझे प्रणाम किया ।''

रात में सोम ने विस्मयपूर्वक पूछा ''हे भगवन्! मुझे जीवनदान देनेवाली यह देवी कौन थी।'' मैंने कहा ''यह इस गुफा की अधिष्ठायिका देवी है । मुझ पर अत्यन्त भक्तिधारक है। तुम दोनों ने मेरे पास धर्म स्वीकारा तब इसने पूछा था क्या ये व्रत का पालन करेंगे? तब मैंने कहा भीम विराधक होगा और सोम आराधक । फिर अवसर प्राप्त होने पर तेरी परीक्षा की और तुझ पर संतुष्ट हुई ।''

इधर राजा सोम के वृत्तांत से डरा, और मांस के अजीर्ण से विसूचिका रोग से ग्रस्त उसी रात को मरकर दूसरी नरक में गया । पुन्य के समान उत्कट पाप भी शीघ्र फल देता है । भीम भी भयभीत हुआ और उसी रात को मरकर व्रतभंगादि के पाप से राजा को मिलने दूसरी नरक में चला गया ।

प्रात:मंत्रीयों ने राजा का अंतिम कार्य पूर्ण किया पुत्र नहीं होने से पंच दिव्य प्रकट किये । राजयोग्य पुरुष का निश्चित करने के लिए गजराज की सूंढ में कलश दिया । गजराज नगर में से उस पर्वत की ओर चला । तब कुटुंब की व्यवस्था हेतु नगर की ओर जाते हुए गजराज को सोम अपने सम्मुख मिला । हाथी ने उस पर कलश उंडेल दिया। उसे अपनी पीठ पर बिठाया। चामर ढुलने लगे। अश्व हेहारव करने लगा। आकाश से देवी बोली हे-लोको, सुन लो। यह सोम सर्वगुण संपन्न तुम्हारा राजा है । इसकी आज्ञा का कोइ उल्लंघन करेगा तो उसे यमातिथि करूँगी ।'' ऐसी वाणी बोलकर देवी अपने स्थान पर गयी । सोम का राज्याभिषेक किया गया । इस प्रकार सोम

दृढ़तापूर्वक आराधित दयाधर्म से राज्यसुख को भोगने लगा । भूप और भीम दोनों हिंसा से नरक में गये। गुफा में रहे हुए मुझे प्रतिदिन वंदन करके ही सोम भोजन करता था । देवी के प्रभाव से बिना युद्ध से ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो गयी । राजा ने दया के प्रत्यक्ष फल को देखकर अपने राज्य में अमारी पटह बजा दिया। धर्ममय राज्यों का उपभोग कर सोम अपना आयुष्य पूर्णकर सौधर्म देवलोक में देव हुआ। मैं भी अनेक देशों में विहार करके पुनः यहाँ आया । इसी देवने अवधि से मुझे यहाँ आया जानकर पूर्वोपकार का स्मरणकर नाट्यादि भक्ति की । इस प्रकार दया और गुरु सेवा का सुंदर फल मानकर नित्यधर्म में उद्यम करना चाहिए। इस प्रकार जयानंद ने धर्म स्वरूप सुनकर कहा ''हे प्रभु! युद्धादि कारण के बिना चार अणुव्रतों के पालन के द्वारा सम्यक्त्व को शोभित रखूंगा ।'' ज्ञानी गुरु ने कहा ''इन कल्पवृक्ष समान व्रतों का सम्यक् पालन करना। जिससे दोनों लोक में तु सुखभागी होगा। जयानंद मुनि को वंदनकर अपनी आत्मा को कृतकृत्य मानता हुआ अपने घर आया। सिंहसार ने देशना सुनी, पर भारे कर्मी होने से अश्रद्धा करता हुआ भाई के साथ गुरु को प्रणाम-कर घर आया । सुर-असुर यथाशक्ति सम्यक्त्वादि ग्रहण कर निज-निज स्थान पर गये। मुनि भी आकाशमार्ग से अन्यत्र गये। श्रीजयानन्द देव-गुरु की भक्ति करते हुए सर्वजन वल्लभ हो गया।''

एक बार जयराजा ने दोनों कुमारों में से राज्य चलाने की योग्यता किस में है? ऐसा जानने के लिए किसी सामुद्रिक को गुप्त रूप में पूछा। तब सिंहसार एवं जयानन्द के लक्षणों को जानकर उसने कहा ''राजन्! मुझ पर नाराज न होना । जैसा है वैसा कह रहा हूँ।

सिंहसार लोक में अप्रिय स्वजनों को अनर्थकारक, कृतघ्न, क्रूरबुद्धिवाला, आपत्ति का स्थान, धर्मद्वेषी होगा । वह दुर्गतिगामी भी है ।

जयानन्द विश्वानंददायक, तीनखंड का अधिपति, अनेक जीवों पर उपकार कर्ता, न्यायी, धर्मी, लक्ष्मीवान्, यशवान् और मोक्षगामी है ।''

राजा ने सामुद्रिकशास्त्री का कथन मन में धारणकर उसका सत्कारकर उसको जाने की अनुमति दे दी ।

एकबार जयराजा ने विजय को नैमित्तिक के सब वचन कहे। उस समय एक दासी कमरे के बाहर खड़ी थी । उसने सुन लिया। इधर राजा यथावसर सिंहसार की परीक्षा कर लेता था । उसे अपने पुत्र के लक्षणों का परिचय हो गया । सिंहसार उन्मत्त होकर, बाजार मैं भी क्रीड़ा करने चला जाता था। स्त्री पुरुषों के आभुषण हर लेता था । मार्ग में अश्व को दौड़ाकर नारीयों के घड़े फोड़ देता था । रूपवान नारियों का अपहरण कर लेता था । सिंहसार के इस प्रकार के अन्याय प्रवृत्ति से जनता ने राजा को शिकायत की। राजा ने उनको आश्वस्तकर भेजे ।

राजा ने सिंहसार को बुलाकर धिक्कारा । दो तीन बार राजा ने उसे टोका । एकबार तांबूलदासी राजा को तांबूल देने जा रही थी। उसको सिंहसार बलात्कार से रोककर तांबुल लेने लगा। तब कुपित होकर दासी ने कहा ''रे दुष्ट! नैमित्तिक ने कहा वह सत्य है।'' कहा है-

नदी किनारे वृक्ष चिरकाल तक नहीं रहता, दुर्जन से प्रीति चिरकाल तक नहीं रहती । पापात्मा के पास लक्ष्मी चिरकाल तक नहीं रहती, अतिलोभी की धर्मप्रीति चिरकाल तक नहीं रहती और स्त्रियों के हृदय में रहस्य की बात चिरकाल नहीं रहती । दासी ने सब कुछ कह दिया ।

सिंहसार उस समय अन्य मनस्क होकर गया । दासी ने राजा को सिंहसार की हरकत बता दी । राजा ने अपने पुत्र को

बुलाकर गाढ़ क्रोध से कहा "रे दुर्विनीत! प्रतिदिन प्रजा को पीड़ित करता है। हमारे निर्मलकुल को कलंकित करता है। घर में भी दुष्ट चेष्टा करता है । निषेध करने पर भी नहीं रुकता है तो चला जा कहीं दूर इससे आगे यहाँ रहेगा तो 'मैं तेरा अन्याय सहन नहीं करूँगा ।" ऐसा सुनकर सिंहसार ने सोचा 'मेरे अकेले के देशांतर जाने से जयानंद राजा एवं प्रजा के अनुराग से राजा हो जायगा । यदि उसे भी साथ ले जाऊँ तो राज्य देने के समय राजा मुझे बुलायेंगे । राजा के लिए हम दोनों के अलावा राज्य योग्य अन्य कोई नहीं है। ऐसा सोचकर जयानन्द को मायापूर्वक कहा "भाई । अपनी उन्नत्ति के लिए हम देशान्तर चलें । वहाँ अद्‌भुत पदार्थ देखने को मिलेंगे । नयी-नयी कलाएं सीखने को मिलेगी । भाग्य की परीक्षा होगी । स्वजन दुर्जन का ज्ञान होगा। अनेक तीर्थों की यात्रा होगी। शरीर क्लेश सहन करनेवाला बनेगा। ठगों के कार्यों को देखकर निपुणता प्राप्त होगी । ऐसे गुण देशान्तर गये बिना नहीं आते । मैं तेरे वियोग को सहन न कर सकने से अकेले नहीं जाना चाहता । अत: चल। अपने पिता को बिना पूछे ही जायँ, नहीं तो अंतराय होगा ।"

जयानन्दकुमार सौम्यप्रकृतिवान था । सरलता से सिंहसार के वचनों को अकृत्रिम मानकर उसके कथनानुसार तलवार हाथ में लेकर किसी को कहे बिना चला । कई कोस जाने के बाद धर्म-अधर्म के कथा प्रसंग पर जयानंद ने कहा "धर्म के प्रभाव से अपार लक्ष्मी, प्रशंसनीय वाणी, सौभाग्यशाली शरीर, हाथों में शक्ति प्राप्त होती है और चारों दिशाओं में यश फैलता है। जो आर्हत् धर्म को भजता है उनको धर्म सुख देता है, विपत्तियों का नाश करता है। अमंगल को नष्ट करता है। व्याधि का नाश करता है। कल्याण करता है। इसलिए धर्म ही कल्याणकर है। सिंहसार ने कहा । भाई । तेरे वचन सत्य है परंतु वर्तमान

में तो अधर्म से ही संपत्ति प्राप्त होती है। धर्म से, तो विपत्तियाँ मिलती है। जयानंद ने कहा ''जिन को पापानुबंधी पुण्य का उदय है उन क्रूरकर्मी को सुख और जिनको पुण्यानुबंधी पाप का उदय है उनको विपत्तियाँ होती है । परंतु वह परभव अर्जित पुण्य-पाप पर आधारित है। इसभव के पुण्य-पाप का फल तो भवांतर में मिलेगा।'' तब दुष्टात्मा सिंहसार भाई पर प्रेम दिखाता हुआ बोला ''भाई! प्रेम हर ऐसे विवाद से क्या? किसी विज्ञ को पूछेंगे और उसके वचन को प्रमाण भूत मानेंगे ।'' जयानंद ने सरलभाव से कहा 'इसी प्रकार हो'। फिर उसने सोचा 'जयानंद राजा और प्रजा में प्रीतिकारक होने से राज्य योग्य यह है, इसकी आँखे शर्त से ले लूं, इस विचार से वह बोला कि ''शर्त के बिना तो मजा नहीं आयगा। अत: जो हारे वह दूसरे को अपनी आँखें दे दें। जयानंद ने सरल भाव से इसे एक प्रकार की मजाक मानकर शर्त स्वीकार कर ली ।''

जयानंद ने सोचा कि मैं जीतूंगा ही । जीत धर्म की है। पर मुझे उसकी आँखें थोड़ी ही लेनी है । भले ही यह शर्त कर ले ।

किसी छोटे गाँव के बाहर ग्राम ठाकुर को देखकर सिंहसार ने उसको नमस्कार किया । और कहा-''मैं पाप से सुख मिलता है और यह धर्म से सुख मिलता है ऐसा कहता है। ऐसा व्यंग में बोलकर कहा आप कहो-''इसमें सत्यवादी कौन है? ठाकुर सिंह की माया को जाने बिना और उसके नमन आदि से प्रभावित होकर बोला 'आप सत्यवादी है।'' फिर दुष्ट बुद्धिवाला सिंह भाई के साथ चला । थोड़ी दूर जाकर बोला भाई! शर्त हार गये। अब आँखें दे दो ।'' ''जयानंद ने कहा अधर्मी ये ग्रामवासी क्या जानते हैं? कूटसाक्षी देने में उनकी जीभ कहीं स्खलित नहीं होती । अत: हंस और काक की कथा सुनकर इन ग्रामीणों पर विश्वास न कर । सिंहसार ने पूछा ''कौन हंस कौन कौआ ?।''

तब जयानंद ने हंस और काक की कथा कहीं ।

धन्यपुर ग्राम में एक सरोवर था । वहाँ जलचर प्राणी को देखकर एक कौआ पंख भीग जाने से उड़ने में असमर्थ होकर जल में डूबने लगा, तब एक हंसी ने करूणा से प्रेरित होकर अपने पति हंस को उसे बचाने को कहा । हंस ने उसे बचा लिया। तब स्वस्थ होकर कौआ उस हंस के जोड़े को अपने स्थान पर ले गया । फल लाकर उनका आदर-सत्कार किया । थोड़ी देर बाद हंस के साथ हंसी जाने लगी तो कौए ने कहा-'कहाँ जा रही है' कौए ने उसे रोकी। हंस ने कहा-'यह मेरी प्रिया है, तेरी नहीं ।' कौए ने कहा 'यह मेरी है' हंस बोला 'रंग में भिन्नता कैसे? 'कौए ने कहा-बहन समान रूपवाली होती है। अन्य कूलोत्पन्न प्रिया तो अन्य रूपवाली होती है। अगर विश्वास न हो तो ग्राम वालों को पूछ ले । उनका वचन प्रमाण है। हंस ने उसका कहना माना। फिर हंस-हंसी को वहाँ ही रखकर कौआ किसी ग्राम में गया और मानवीय भाषा में अपना विवाद बताकर बोला । हे लोको! असत्यसाक्षी से भी मेरी बात सत्य कहना। नहीं तो स्त्रियों के मस्तक पर रहे घड़ो में अशुचि करूँगा । पशुओं के घाव पर चोंच मारकर उनको दुःख दूंगा । नर नारी के मस्तक पर बैठकर शीघ्र चला जाऊँगा । धूप में रखे धान्य को खा जाऊँगा। बालकों के हाथ से भक्ष्य पदार्थ खींच लूंगा । इत्यादि बाते कहीं। धर्माधर्म से अज्ञात होने से उसकी बातें ग्रामवासियों ने स्वीकार कर ली। फिर दोनों वहाँ आये। न्याय मांगा और उन ग्रामवासियों ने डरके मारे झुठी साक्षी दे दी। हंसी कौए को दे दी। तब हंस को दुःखी देखकर कौवा बोला हे। मित्र! तेरी प्रिया को तु ले ले। तेरा द्रोह मैं नहीं करूँगा । इस प्रकार मैंने ग्रामवासियों की परीक्षा की है। फिर कौआ ग्रामवासियों से बोला । 'हे लोको! किंचित् कारण से तुम जैसे झुठ साक्षी देनेवाले को इह-परलोक में दुःख होगा। हिंसादि सभी पापों

में झुठसाक्षी का पाप अधिक है । तब कौए ने कहीं से अंगारे लाकर ग्रामलोकों के घरों पर ड़ालकर जलाया। ग्रामवासि जलकर मरें और दुर्गति में गये। अत: हे सिंहसार! इस कथा को सुनकर तू ठाकुर की बात पर विश्वास मत कर ।

तब सिंह ने कहा ''ऐसे कूट कथानकों से मुझे क्यों ठग रहा है? क्योंकि पशु मनुष्य के जैसी चेष्टा नहीं कर सकते ।'' जयानंद ने कहा यह सत्य है, परन्तु हंस कौए की इस चेष्टा का कारण सुन ।

इस ग्राम में श्रीमुख यक्ष लोगों के द्वारा पूजा जाता है। और नंदीपुर में नंदीयक्ष उसका मित्र है । एकबार श्रीमुख नंदीयक्ष के घर गया । मित्र ने स्वागत किया । श्रीमुख ने नंदीयक्ष से कहा ''तू मेरे वहाँ क्यों नहीं आता?''

तब नंदीयक्ष ने कहा-''तेरे ग्रामजनों के डर के मारे नहीं आता । ये ज्ञान विकल है ।'' श्रीमुख ने कहाँ परीक्षा के बिना मुझे विश्वास नहीं होगा । तब वे दोनों हंस-कौआ बनकर वहाँ गये और पूर्व कथित परीक्षा ली । इससे हंस कौअे की कथा को सत्य मान ।' और उत्तम पुरुष आनंदराज के समान झुठ नहीं बोलते । सिंह के पूछने पर जयानंद ने यह कथा कहीं ।

नंदीपुर में आनंद नाम का राजा सत्यवादी, उत्तम प्रकृतिवान, पापभीरु, बल-भाग्य-पराक्रम में प्रौढ़, बत्तीस लक्षणवंत, अनेक राजाओं से सेवित आर्हत् धर्मपालक था । वह अति ऋद्धिवान होने से एक क्रोड़ मूल्य के आभूषण शरीर पर धारण करता था । एकबार राजा अलंकार व सैन्यसहित अश्व घूमाने के लिए गया। वहाँ अचानक राजा का अश्व आकाश में उड़ा और राजा को एक अटवी में ले गया। राजा घोड़े पर से कूद पड़ा। अश्व अदृश्य हो गया। तब राजा विस्मित होकर इधर-उधर देखता है। इतने में चार चोर आयुध सहित वहाँ आये । राजा अंश मात्र भी डरे बिना

बैठा रहा । तब उन चोरों ने कहा। अहो आभूषण सहित तू हमारे भाग्य से मिला है। हमारा चरित्र सुनो । हम सुरपुर राजा के सेवक हैं। हमारे अल्प अपराध से राजा ने हमें देश से निष्कासित किये हैं। गुरु के पास धर्म पाये हुए हमने आजीविका का दूसरा उपाय न देखकर चोरी का कार्य आरंभ किया है। परंतु हमने नियम लिया है 'चोरी में राजा के अलावा किसी का धन न लेना । क्योंकि अल्प ऋद्धिवाले के घर चोरी करने से वह दु:खी होता है। राजा दु:खी नहीं होता। और छोटी-छोटी चोरियों में दुर्ध्यान रहता है। अत: लाख रुपये से कम चोरी नहीं करनी। इसलिए हे सत्पुरुष! सत्य बोल । ये तेरे आभूषण कितने मूल्य के हैं? महान पुरुष असत्य नहीं बोलते, ऐसा हम मानते हैं। तब नृपने सोचा' "ये चोर स्वयं की आजीविका हेतु आभूषण ले-लेंगे तो ले लेने दो । मूल्य तो जो है वही कहूँगा। पापमूल असत्य तो नहीं बोलूंगा। धन तो जानेवाला है। सत्य धर्म तो स्थिर है। धन से अल्पसुख मिलता है और धर्म से अनंत सुख । ऐसा सोचकर बोला । "मैं राजा हूँ। अश्व के द्वारा लाया गया इस अटवी में आया हूँ। ये मेरे अलंकार एक करोड़ मूल्य के हैं" ऐसा कहकर राजा ने अलंकार उतारकर दे दिये । तब वे आनंदित होकर आभूषण लेकर चले गये । राजा वन में घूमता हुआ एक तापसाश्रम में पहुँचा । कुलपति के पूछने पर अपना सत्य वृत्तांत कहा । कुलपति ने कहा "इस वन में एक राक्षस रहता है। वह तापसों के अलावा मनुष्य को खा जाता है। अत: तुम तापस वेष ले लो तो जीवित रह सकोगे। तब राजा ने तापस वेष ले लिया । फलाहारकर स्नान के लिए सरोवर पर आया। तब उसे राक्षस मिला । राक्षस ने पूछा- हे भिक्षु! तू नया कहाँ से आया? मैं प्रतिदिन एक मानव को खाता हूँ और वर्ष में एक बत्तीस लक्षण पुरुष को खाता हूँ।"

ऐसा लक्षणवाला नंदीपुर का राजा है। मैं उसे खाना चाहता

हूँ । परंतु उसके पास रहे हुए परिवार के कारण मैं उसे खा नहीं सकता । तू कौन है? सत्य बोल । राजा ने सोचा 'यदि सत्य कहता हूँ तो यह मुझे खा लेगा । और असत्य बोलूं तो पाप का भागी बनता हूँ । प्राणों के लिए प्रण का नाश करना एक अधम कृत्य है। प्राणों से भी धर्म उत्तम है । यह राक्षस मुझे भक्षणकर दूसरे को नहीं खायगा तो दूसरे को बचाने का पुन्य तो मिलेगा ही।' इस प्रकार विचारकर राजा ने कहा-नंदीपुर का राजा मैं ही हूँ । आपको जैसा उचित लगे, वैसा करो । तब राक्षस बोला । रे सत्त्वशाली । मैं मुनि को नहीं खाता । तेरा यह मुनित्व कृत्रिम है या अकृत्रिम? राजा ने कहा "मैं तापस नहीं हूँ। ये वल्कल मैंने मुनि वचनों से अभी धारण किये है" तब राक्षस ने कहा-"तो अब मैं तुझे खा रहा हूँ । इष्ट देव को याद कर ।" राजा भी अपने शरीर पर का ममत्व छोड़कर पंच परमेष्ठि का स्मरण करता हुआ बैठ गया । राक्षस भयंकर हास्य करता हुआ, आकाश को कंपाता हुआ, दांतों को कट-कटाता हुआ राजा को मारने के लिए दौड़ा । फिर भी राजा अक्षुब्ध ही रहा । थोडी देर बाद राजा आँख खोलकर देखता है तो नंदीपुर में ही सेवकों के साथ स्वयं को देखा । अरण्य आदि को न देखकर और अपने ऊपर पुष्टवृष्टि होती देखकर सोचा 'क्या यह सब इन्द्रजाल था' ?। उस समय एक यक्ष प्रकट होकर बोला । "मैं तेरे नगर के बाहर (उद्यान में जनता द्वारा पूजित) रहता हूँ । मेरा मित्र मुझे मिलने आया । मैं उसके साथ उसके गाँव में गया । वहाँ उन ग्रामवालों की परीक्षा ली । फिर उसने कहा 'तेरे नगर के लोग कैसे है? तब मैंने कहा 'मेरे नगर में राजा प्रजा सभी सत्यवादी उत्तमपुरुष हैं ।' फिर हमने तुम्हारी परीक्षा ली । यह सब तेरी परीक्षा के लिए किया था । तुमको धन्य है । तुमने प्राण नाश का अवसर आने पर भी व्रत न छोड़ा । यक्ष ने राजा को एक

तलवार (शत्रु पर विजय प्राप्त करनेवाली) और कष्टहर मणि देकर स्वस्थान गया । उस वृत्तांत को देखकर प्रजा ने राजा की अधिक स्तुति की । राजा भी पुण्यानुभाव से राज्य सुख को भोग रहा था । इस प्रकार उस राजा ने खड्ग के द्वारा अनेक राजाओं को वश में किया और मणि से अनेकों पर उपकार करता हुआ। सम्यक्त्व सहित अणुव्रतों का पालन करता हुआ । सात क्षेत्रों में वित्त का विनियोग करता हुआ आयुष्य पुर्णकर देवलोक में गया ।

जयानंदकुमार ने कहा "इसलिए जिस नगर में सत्यवादी उत्तम पुरुष रहते हैं, वहाँ जाकर उत्तम पुरुष को पूछेंगे । उस समय विवाद का निर्णय होने पर शर्त का पालन करेंगे।"

दोनों चलते हुए विशालपुर नगर में आये । वहाँ उद्यान में विद्याविलास नामक महाशय कलाचार्य को देखा । वे पाँचसौ राजपुत्रों को धनुर्वेद आदि कला पढ़ाते थे । जयानंद ने उनको शास्त्र विशारद मानकर सिंहसार के साथ जाकर विवाद के विषय में प्रश्न किया । कलाचार्य ने कहा "सर्व शास्त्रवेत्ताओं का यह मत है कि धर्म से इहलोक परलोक में सुख और अधर्म से दुःख मिलता है । यह सुनकर जयानंद हर्षित हुआ। सिंहसार का मुख म्लान हो गया । वे दोनों कलाचार्य के पास कलाध्ययन करने रह गये । जयानंद ने विनयादि गुणों से कलाचार्य और छात्रों का स्नेह प्राप्त कर लिया। सब कलाएँ अल्पविधि में सीख लीं । अब वह कलाचार्य के निर्देश से छात्रों को अध्यापन करवाता है । इससे वह सभी को प्रिय हो गया । सिंहसार जयानंद से स्पर्धा करते हुए अध्ययन करता था। पर थोड़ी कला ही ग्रहण कर सका, क्योंकि विद्या और गुण भाग्यानुसार प्राप्त होते हैं ।"

वहाँ का राजा विशालजय है। वह छ: छ: महिने में छात्रों की परीक्षा लेता है । परीक्षा के समय राजा वहाँ परीक्षा लेने आया। तब कलाचार्य ने राजा के सामने विद्यार्थियों को बिठाकर तालवृक्ष पर एक 'मोरपिच्छ' रखकर कहा "तुम क्या-क्या देखते हो?" अनेकोंने एक-एक करके प्रत्युत्तर दिया की हम तालवृक्ष, शाखा और मयूरपिच्छ देखते हैं । कलाचार्य ने उनको बैठने को कहा। फिर जयानंद से पूछा। "हे वत्स! तु क्या देखता है? तब उसने कहा- "मैं मयूरपिच्छ का मध्यभाग देखता हूँ। हर्षितगुरु ने उसे बाण चलाने का आदेश दिया। उसने भी मध्यभाग छेद दिया । फिर सौ पद्मपत्र के गुरुकथित भाग को असि से छेद दिया। दूसरे भाग को कुछ नहीं हुआ । हाथ से चक्र छोड़कर सात तालपत्र को छेदे। दूर रही शिला को शक्ति से चूर्ण कर दी । अश्वयुद्ध में हजारों योद्धाओं को जीत लिया । अन्य अनेक कलाओं की परीक्षा में उसको सर्वोत्कृष्ट जानकर विस्मित राजा ने पूछा 'यह कौन है?' कलाचार्य ने कहा "ये दोनों भाई क्षत्रिय और वैदेशिक है । पढ़ते है। इतना जानता हूँ अधिक नहीं ।" फिर राजा ने उत्तम कला-गुण जानकर लक्षणों को देखकर निर्णय किया कि ये कोई राजकुमार हैं ।

सब छात्रों का सत्कारकर और अनेक कलाओं का अभ्यास करने हेतु प्रेरणा देकर कलाचार्य की पूजाकर राजा अपने महल को गया । जयानंद ने कलाचार्य के पास गीत नाट्य आदि ७२ कलाओं की शिक्षा क्रमश: प्राप्त की । अपनी निपुणता से छात्रों को पढ़ाकर गुरु को विश्राम भी देने लगा । अपने गुणों से वह नगरजनों का प्रिय भी हो गया ।

इधर राजा ने उसकी परीक्षा के लिए पड़ह बजवाया कि मेरे हाथी को जो तोलेगा उसको उसका इच्छित देश दूंगा । जयानन्द ने गज तोलने की चुनौती स्वीकार की । फिर उसने एक नौका में गज को चढ़ाया और नाव सरोवर में छोड़ी। वह नौका जल में

जितनी गहरी गयी वहाँ निशान किया। फिर नौका बाहर निकालकर गज को उतारकर, नौका को जल में ले जाकर पत्थर भरने लगा । उसी निशान जितनी नौका जल में गयी उतने पत्थर उसने भर दिये। फिर नौका को बाहर निकालकर उन पत्थरों को तुलवाकर राजा से कहा आपका हाथी इतना वजनवाला है। राजा उसकी बुद्धि से विस्मित होकर उसे बहुमानपूर्वक अपने घर ले गया । वहाँ स्नानादि करवाकर बहुत गौरव से भोजनादि करवाकर, अपने महल में उसे ठहराया । उसे सभी कलाओं में विशारद जानकर उसकी इच्छा न होते हुए भी अपनी पुत्री मणिमंजरी का विवाह उसके साथ कर दिया । फिर राजा ने उसको एक देश और बड़ा महल भी दिया । फिर उसने उस देश के आसपास के अनेक राजाओं को वश में कर राजा की व अपनी प्रतिष्ठा विस्तारित की । एकबार सूरराजा को जीतने के लिए जयानंद स्वयं गया और उसे जीतकर राजा के पास ले आया। सूरराजा ने विशालजय राजा को प्रणाम किया । तब जयानंद के कहने से उसे अपने राज्य में भेज दिया । क्योंकि सत्पुरुषों का क्रोध प्रणाम तक ही रहता है। सूरराजा ने, मुझे एक बालक ने जीत लिया ऐसा सोचकर अपने पुत्र को राज्य देकर स्वयं प्रव्रर्जित हुआ । क्रमशः निरतिचार चारित्र का पालनकर केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्षगामी हुआ। जयानंद ने अपने भाई को लक्ष्मी आदि देने का प्रयत्न किया पर ईर्ष्या और अभिमान के कारण उसने कुछ नहीं लिया । स्वेच्छा से वहाँ रहा ।

कहा हैं-मनुष्य पुन्योदय से ही भोग के भाजन बनते हैं।

भाग्य एवं शत्रु पर विजय से राज्य की वृद्धि करनेवाले जयानन्द पर राजा और प्रजा दोनों अत्यंत खुश थे। इस प्रकार समय जा रहा था । सिंहसार मन में जल रहा था। उसने उसको दुःखी करने के लिए एकांत में कहा ''हे भाई! हम देशांतर जाने के लिए घर से निकले

थे। तरह-तरह के आश्चर्य दर्शन की इच्छा एक स्थान पर रहने से पूर्ण नहीं होगी । हमारा नगर पास में है, अगर पिता को मालूम होगा तो वापिस जाना पड़ेगा । और कौतुक की भावना भी पूर्ण नहीं होगी। अगर तुम नहीं आते हो तो मैं जाऊँगा पर तुम्हारा वियोग असहनीय होगा । उसकी भावना देखकर स्नेहवश जयानंद ने जाने की तैयारी कर ली। महल के एक द्वार पर एक श्लोक लिख दिया कि-''

''जलाशय में आठ मास क्रीड़ाकर हंस मानसरोवर में (वर्षाऋतु में) स्थिर होता है ।''

रात को दोनों भाई तलवार लेकर, निकल गये । प्रात: पति को न देखकर मणिमंजरीने खोज करवायी, पर पता न लगा। मणिमंजरी की नजर एक दिन उस द्वार पर गयी और वहाँ लिखित श्लोक पढ़ा, तब उसने अपने पिता व परिवार से कहा ''वे कुतूहलवश देश देखने गये हैं, घुमकर वर्षाऋतु में वापिस आयेंगे । ''तब सभी शोकमुक्त हुए ।''

दोनों भाई अरण्य में गये। वहाँ सिंह ने कहा मैं तो अधर्म से वन में कष्ट सहन कर रहा हूँ। परंतु तुमको इस वन में क्यों कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं! तब जयानंद ने सिंहसार से हास्यपूर्वक कहा ''तेरे जैसे अधर्मी की संगत से कष्ट सहन कर रहा हूँ। तेजोमय अग्नि लोहे के संग से पीटी जाती है। कर्पूर भी लहसून के संग से दुर्गंध देता है। तब क्रोध से मुस्कराते हुए सिंह बोला 'इसी प्रकार अपना विवाद तीव्र हो रहा है। मैं पाप से और तू धर्म से सुख कहता है । यहाँ किसी का वचन प्रमाण नहीं हो सकता । क्योंकि सभी की वाणी अनेक प्रकार की है। परंतु जो आज द्रव्य के बिना भोजन करवाये, उसका पक्ष प्रमाण करे। जयानंद ने उसे स्वीकार किया । हर्षित सिंह बोला ''आज मैं आगे के ग्राम में मेरी शक्ति की परीक्षा हेतु जा रहा हूँ। तुम किंचित् देरी से आना। अगर

मुझ से भोजन की व्यवस्था न हो तो तू प्रयत्न करना। और मेरे द्वारा कार्य सिद्ध हो जाय तो अगले दिन तुम परीक्षा करना ।'' ''ऐसा कहकर वह जयानंद को छोड़कर आगे चला । वहाँ अरण्य में अलंकारों के लोभ से उसे भिल्लों ने पकड़ लिया । शतकूटगिरि पल्ली का प्रभु चंडसेन नंदीशालपुर के साथ युद्ध के लिए जा रहा था । भिल्लों ने सिंहसार को उसे सौंप दिया । वह उसे साथ लेकर जा रहा था । सैनिकों के कोलाहल से जयानंद का ध्यान उस ओर गया । उसने अपनें भाई को कैदी के रूप में देखकर उनको ललकारा । वे भी उसके अलंकारों से आकर्षित होकर उसे पकड़ने आये । जयानंद ने उनसे युद्ध किया । भिल्ल उसके राजतेज के सामने ठहर न सके । चण्डसेन ने सोचा 'यह सामान्य पथिक नहीं है । जीवन बचाना है तो इससे मित्रता ही अच्छी है ।' चण्डसेन ने पूछा ''तुम युद्ध क्यों कर रहे हो?'' उसने कहा ''तुमने मेरे भाई को पकड़ा है उसे छोड दो फिर यथास्थान जाओ ।'' भिल्लपति ने कहा ''अलंकार सहित तेरे भाई को ले ले ।'' पल्लीपति ने सिंहसार को छोड़ दिया। पल्लीश उन दोनों को पल्ली में ले गया, और वहाँ आदर सत्कार पूर्वक रखा। पल्लीश उनके पास धनुर्विद्या आदि कला शीख रहा था । सिंह तो पल्लीश के साथ शिकार, चोरी आदि करने भी (जयानंद के मना करने पर भी) जाने लगा । सहस्त्रकूट नामक पल्ली का मालिक महासेन था । वह चंडसेन का शत्रु था। एकबार सिंह के साथ चंडसेन महासेन के साथ युद्ध के लिए जा रहा था । उसने जयानंद से कहा ''तुम मुझे सहायक बनो ।'' जयानंद ने भी दाक्षिण्यता के कारण उसका कहना स्वीकार किया । चंडसेन ने अपने सभी भील्लों को साथ ले लिया, और महासेन के साथ घोरसंग्राम हुआ । दोनों सेनाओं के युद्ध में चंडसेन की सेना पीछे हटने लगी। तब सिंहसार लड़ने गया । तब महासेन की सेना पीछे हटने लगी ।

उस समय महासेन स्वयं आया । महासेन ने सिंहसार को व्याकुलकर बांध लिया। फिर चंडसेन आया । दोनों के भयंकर युद्ध में चंडसेन पर एक शिलाखण्ड गिरा, जिससे चंडसेन मूर्छित हो गया। महासेन उसे बांधकर ले जाय उसके पूर्व जयानंद वहाँ आया और उसने महासेन से कहा 'देख ! मैं निरपराधी भिल्ल और क्षत्रिय को नहीं मारता । तू ने मेरे भाई को कैद किया है, उसे छोड़ दे और चंडसेन के साथ संधि कर ले तो तुझ से युद्ध नहीं करूँगा । महासेन ने कहा ''सिंह और मृग की कैसी संधि? और क्या सिंह से मृग को छुड़वाया जा सकता है? शक्ति तो युद्ध में देखेंगे । दोनों का प्रचंड युद्ध हुआ । युद्ध में महासेन हार गया । उसको भिल्लों के द्वारा बंधवाकर जयानंद ने चंडसेन को सोंप दिया । सिंह के बंधन छुड़वा दिये । चंडसेन ने कहा ''मेरे प्रबल भाग्य से तेरा मिलना हुआ है । मुझ पर मेरे कुलदेवता तुष्ट हो गये हैं ।''

इस प्रकार जय की स्तुतिकर, उस पल्ली को अपनी बनाकर महासेन के साथ अपनी पल्ली में आया । फिर महासेन से दंड वसुलकर प्रणाम करवाकर, उसकी पल्ली जयानंद ने दिलवा दी। वह अपनी पल्ली में गया । उस दिन से चंडसेन जयानंद को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। सिंहसार तो उसके द्वारा बन्धन मुक्त होने से अत्यंत दुःखी हुआ । जयानंद ने उसे समझाया, पर वह उस पर मन में द्वेष धारण करके बाहर से स्नेह दर्शाने लगा । एकबार चंडसेन आकस्मिक शूल रोग से मृत्यु को प्राप्त हुआ । लोगों ने जयानंद को राज्य लेने को कहा, तब उसने कुराज्य होने से मना किया । लोगों ने सिंहसार को कहा, तब उसने सहर्ष मंजूर किया। एकबार सिंहसार ने सोचा जयानंद यहाँ से चला गया तो पिता का राज्य उसे मिल जायगा ।'' इसलिए उसको कहा ''मैं तुम्हारे बिना कैसे रह सकूंगा ?'' ''अतः तुम यहाँ ही रहो ।'' सरल स्वभावी

विजय नेमिसूरि ज्ञान

जयानंद ने स्वीकार किया और वहाँ रहा । एक दिन गर्व से सिंहसार बोला "देख ! अधर्म से मैंने राज्य पाया । हँसकर जयानंद बोला "इतने से राज्य में गर्व आ गया । बरोबर हैं, बिचारा रंक गुड़ के टुकड़े से भी राजी हो जाता है।" उन शब्दों से उसे क्रोध आया परंतु शक्तिशाली के आगे मौन रहा ।

एकबार सिंहसार ने कहा "मुझे गिरिमालिनी देवी की आराधना करनी है । तुम उत्तर साधक बनो ।" उसने स्वीकार किया । वे वहाँ गये । देवी की उपासना की । सिंहसार दंभ से मंत्र जपने बैठा । जयानंद ने उसके चारों और घूमकर उसकी सुरक्षा की । दो प्रहर बाद वह उठा और बोला मेरा मंत्र सिद्ध हो गया । अब इस मंत्र जाप के कारण मुझे तो निंद्रा लेनी नहीं है । तुम सो जाओ। मैं रक्षा करूँगा ।

विश्वस्त जयानंद सो गया । उसे नींद आने के बाद मायावी सिंहसार ने शस्त्र से उसकी दोनों आँखें निकाल दी । और बोला "रे दुष्ट! मेरे अधर्म पक्ष और राज्य की निंदा करता है । शर्त में हार जाने के बाद भी नेत्र नहीं देता था । इसलिए मैंने ले लिये हैं। अब तू धर्म का फल अन्धा बना हुआ भोग । फिर वह गर्व सहित पल्ली में आ गया।"

जयानंद ने सोचा । 'धिक्कार है मुझे "शास्त्रवेत्ता होकर भी मैंने इस दुष्ट का विश्वास किया। कुत्ते को भी भोजन देने से वह दाता पर स्नेह करता है। इसे दो बार जीवित दान देने पर भी इसने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया ।" फिर सोचा-

यह मेरे पूर्वकृत कर्म का ही फल है। सिंहसार तो निमित्त मात्र है। इस आपत्ति में भी मुझे धैर्य रखना है। जिससे नये अशुभकर्म न बंधे । उसने सिंहसार से मन ही मन क्षमायाचना कर

ली। 'मेरे कर्म सद्ध्यांन से ही क्षय होंगे। अत: मैं धर्मध्यान में ही रहूँ। मेरे पास मनोवांछित फलदायक सम्यक्त्व है। बस, वही मेरा संरक्षक है। ऐसा सोचकर उसने कार्योत्सर्ग ले लिया । परमेष्ठियों के स्मरण में ध्यानमग्न हो गया। उसके प्रभाव से गिरिमालिनी देवी का आसन कंपा । वह वहाँ आयी और बोली "मैं तेरी इस विपत्ति का विलय करने आयी हूँ । तू एक पंचेन्द्रिय प्राणी की बलि देकर मेरी पूजा कर।" जयानंद ने कहा "आँख के साथ मेरे प्राण भी चले जायँ, तो भी मैं किसी प्राणी को नहीं मारूँगा । फिर देवी ने बली, भोज्यादि मांगा । जयानंद के मना करने पर देवी ने कहा "केवल प्रणाम कर, जिससे मैं तुझे ठीक कर दूँगी ।" तब उसने कहा-मैं प्रणाम भी नहीं करूँगा । मेरा सम्यक्त्व मलीन हो जाय ऐसा कोई कार्य नहीं करूँगा । फिर वह क्रोधित होकर बोली मेरी अवज्ञा का फल देख। उसने प्रचंड वायु का उपद्रव किया । उसको वायु से आकाश में उठाकर नीचे फेंकने लगी । तब भी अक्षुभ्य होने से बीच में ही उसे धारण कर लिया । फिर संतुष्ट होकर बोली "हे महाभाग! यह औषधि ले। इसके रस से आँखे ठीक हो जायगी। फिर उसने देवी प्रदत्त औषधि लेकर घिसकर (जल से) आँख में लगा दी, पूर्व से भी अधिक दिव्यनेत्र हो गये । फिर देवी ने उसे जिस सम्यक्त्व के लिए तू इतना दृढ़ है उस सम्यक्त्व धर्म का स्वरूप बता । ऐसा कहा । तब जयानंद ने धर्म का स्वरूप समझाया । सुनकर उसे पूर्वभव की स्मृति हुई। देवी ने कहा-"

पूर्वभव में मैं श्राविका थी । परंतु पुत्र की अस्वस्थता में किसी झाड़ फूंक वाले से (मंत्र-तंत्र वाले से) पूछा तब उसने भूतादि दोष बताकर मंत्र चूर्णादि का प्रयोग किया । भाग्य की प्रबलता से वह ठीक हो गया । तब मैंने प्रीतिपूर्वक उसे दान दिया । वह भी यदा कदा आता था । अपना शौचमूल धर्म बताता

था । एकबार मुझे संदेह हुआ, इसका शौचमय धर्म सत्य? या मलमय-जैन धर्म सत्य? इस शंका के अतिचार से समकित को मलिनकर शनै-शनैः विराधनाकर, मैं बहुत देवियों के परिवारवाली क्रुर कर्म विधायिनी महाऋद्धिवाली, गिरिनायिका गिरिमालिनी नाम से मिथ्यादशा में अग्र देवी बनी । कहा है:-

'आम्र और नीम के मूल दोनों, मिल जायँ तो आम्र नीम का गुण ले लेता है।'

अब तेरे वचनों से मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान जाकर समकित सहित मति-श्रुत-अवधिज्ञान प्रकट हो गये हैं। मेरा पूर्वभव तुझे सुनाकर तुमको मैंने गुरु रूप में स्वीकार किया है । अब मैं निरपराधी प्राणी को नहीं मारूँगी । परंतु पूर्वका पाप कैसे खतम हो, उसका उपाय तुम बताओ। कुमार ने कहा "देवता तप तो नहीं कर सकते । इसलिए अरिहंत के चैत्यों में पूजा प्रभावना, संघ को धर्म में सहायक बनना, आशातना करनेवालों को दूर करना, ऐसे कार्य करने से तेरे पूर्व के पाप खतम हो सकते हैं । देवी ने स्वीकार किया । फिर देवी ने कहा "तुझे कहाँ पहुँचाऊँ?" जयानंदकुमार ने कहा-मुझे हेमपुर में रख दे ।" उसने अपने गुरु को विपत्ति निवारण औषधि, दिव्यालंकार और वस्त्र दिये । देवी प्रणामकर चली गयी । वह औषधि और दिव्य वस्त्राभूषण पहनकर नगर में प्रविष्ट हुआ । उसकी लक्ष्मी को देखकर जनता मोहित हुई । घूमता हुआ द्यूतकारों को देखकर कौतुक से भूषण को दाव पर लगाकर राजपुत्रों से खेला । और दस लाख लगाकर दस लाख रुपये जीत गया । फिर उन्होंने खेलना बंद किया । तब कुमार बाहर आया । याचक लोग उसके भूषणादि से आकर्षित होकर याचना करने लगे । उसने दस लाख का दान याचकों को कर दिया । जनमुख से हेमपुराधीश ने कुमार की उदारता सुनकर उसे अपने प्रधान पुरुषों के द्वारा आदरपूर्वक बुलवाया । साहसिकों में अग्रणी वह भी गया।

दिव्यालंकार एवं अद्‌भुत लावण्य से सारी सभा विस्मित हुई। कुमार ने राजा को नमस्कार किया । राजा ने आलिंगन देकर अपने अर्धासन पर बैठने का आग्रह किया। पर वह विनय से राजा के सामने नीचे आसन पर बैठा । राजा के 'कुशल हो' ऐसे पूछने पर वह बोला ''राजन्! आज मेरा जन्म सफल हो गया ।' मेरे लोचन भी सफल हो गये। राजा ने कहा ''महाभाग । तेरी आकृति दिव्य है। विनयादि गुण परस्पर सौभाग्य कर है। तेरी लावण्यकांति नेत्रों के द्वारा पान करने पर तृप्त नहीं होती। कुमार बोला ''आपकी सौम्यदृष्टि से मैं धन्य हुआ ।'' इस प्रकार परस्पर प्रीतिवाचक शब्दों से सभा का समय पूर्णकर दोनों राजमहल में गये । स्नान भोजन से निवृत्त होकर परदे में जाकर (गुप्तगृह में जाकर) आसन पर बैठकर कुमार से कहा। हे वत्स! मैंने जिस कारण से तुझे बुलाया है। वह सुन ।

''मेरी सौभाग्यशालिनी ललिता विमलादि पांच सौ रानियाँ हैं। उनके भानु भानुधर, भानुवीर आदि सौ पुत्र हैं। उनके ऊपर ललिता पटराणी की कुक्षि से जन्मी सौभाग्यमंजरी नामक एक पुत्री है। वह ६४ कलाओं में प्रवीण, लावण्य की खान प्रियभाषिणी और गुणयुक्त है । वह दान एवं युद्ध में उत्तम पुरुष को चाहती है । इसलिए मैंने रेणुका कुलदेवी की तीन उपवासकर आराधना की । उसने कहा 'युवराज के घर के पास द्युतपट्टक में दिव्यालंकार से विभूषित सुभगाकृतिवाला पुरुष दस लाख जीतेगा और दसों लाख याचकों को दान में दे देगा । वह सौभाग्यमंजरी का पति होगा । फिर मैंने तीन उपवास का पारणा किया । और पुत्रों से कह दिया था। और आज देवी का कहा हुआ सब पूर्ण हुआ । अब मेरी पुत्री का तुम स्वीकार करो ।'' कुमार ने कहा ''वंश गुण आदि जाने बिना कैसे पुत्री दी जाय? कहा है-कुल, शील, सनाथता, विद्या, वित्त, शरीर और वय ये सात बातें देखकर फिर कन्या देनी चाहिए ।''

राजा ने कहा "तेरे आकार, विवेक, देवीवाणी से कुलादि सब जान लिया है । मेरी प्रार्थना मत ठुकराना । कुमार मौन रहा। फिर ज्योतिष द्वारा प्रदत्त मुहूर्त में पाणिग्रहण हो गया । कन्यादान में विपुल धनमाल महलादि दिये । कुमार पत्नी के साथ सुखपूर्वक रह रहा है । कुछ दिनों के बाद राजा ने कहा 'विवाह के बाद प्रौढ़ उत्सव करके एक पशु से कुलदेवी की पूजा करनी है। अत: इस चतुर्दशी को पूजा कर लेना ।' तब कुमार बोला । 'मैं कभी भी निरपराधी पशु की हत्या नहीं करूंगा । नहि कराऊँगा, न उसकी अनुमोदना करूँगा।"

नरक प्रदान होने से हिंसा के समान कोई पाप नहीं, और *(स्वर्ग-अपवर्ग प्रदान से) अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं ।*

हे राजन्! प्राणीवध से कभी शांति नहीं होती । सर्प के मुख से अमृत, अपथ्य से रोग क्षय, विवाद से साधुवाद नहीं होता। वैसे ही प्राणिवध से शांति नहीं होती । तब राजा ने कहा 'खाद्य पदार्थ से उसकी पूजा करो।' उसकी पूजा नहीं कि तो वह अनर्थ करती है । कुमार बोला-मिथ्यादृष्टि की स्तुति ही नहीं करूंगा तो अर्चना की बात ही कहाँ? जिसके अरिहंत देव, तात्त्विक गुरु और तात्त्विक धर्म हो उसका इंद्र भी अनर्थ नहीं कर सकता तो देवी की क्या हेसीयत? जिसके हृदय में जिनेश्वर है, उसको ग्रह प्रसन्न होते हैं, देव वश होते हैं। राजा उस पर प्रभाव नहीं डाल सकते। दुर्जन दूर भाग जाते है, संपत्ति विलास करती है।" तब राजा ने जामाता से अधिक चर्चा करना उचित न जानकर उसको महल में भेज, राजा देवी के मंदिर में गया। और देवी से कहा-तुं ने जो जामाता दिया, वह तेरी पूजा नहीं करता, तू और वह जाने । मैं तेरा भक्त हूँ पर क्या करूं ? ऐसा कहकर वह नमस्कारकर घर गया। कुमार भी अपने महल में जाकर उपद्रव की आशंका से अर्हत् देव के पट की पुष्प, धूप-दीप से पूजाकर जिनध्यान

में एकाग्र होकर निष्कंप बैठ गया । देवी ने दूसरे प्रहर में दिशाओं को धुमील बतायी परिवार ने व्याकुल होकर कोलाहलकर भाग दौड़ की। यह उपसर्ग देवीकृत जानकर कुमार ने सोचा "अरिहंत के ध्यान में मग्न समकित धारी को किसीकी डर नहीं है।' वह पंच परमेष्ठि के ध्यान में लीन हो गया । धूंवा जाने के बाद अग्निज्वाला प्रसारितकर देवी रौद्ररूप धारिणी बनकर प्रकट हुई। चक्र त्रिशूल आदि विविध हथियार हाथ में ली हुई उग्र शब्दों में बोली 'रे दुष्ट! मैंने स्त्री और लक्ष्मी प्राप्त करवायी और मेरी गर्हा करता है। अभी मेरी पूजा प्रणाम आदि कर, अन्यथा मेरे क्रोधित होने पर इंद्र भी तेरी रक्षा नहीं कर सकेगा । व्यर्थ ही मर जायगा। फिर अक्षुभित और मौन कुमार के मस्तक पर अंगारे वर्षाये । पर जिनध्यान के प्रभाव से उस अंगारों का लेश भी प्रभाव न हुआ । अग्नि बुझ गयी । फिर देवी ने सिंह छोड़ा वह गर्जना करता उसकी ओर झपटा, परंतु जिनध्यान के प्रभाव से उसकी दाढ़ें गिर गयी और नख टूट गये । वह भी पीछे हट गया। फिर गर्व से देवी ने सर्पो को छोड़ा । वे कुमार को चारों ओर से भींसकर दंश देने लगे, पर उनके भी दांत गिर गये, वे भी दूर हो गये। तब उसने सोचा 'इसके ध्यान के प्रभाव से मैं पराभव करने में असमर्थ हूँ। अतः अब अनुकूल उपसर्ग से प्रभावित करूँ? फिर वह चंद्रमुखी बनकर मधुर वचनों से बोली । "स्वामिन्! मेरे सारे अपराध क्षमा करो । दिव्य शरीरवाली को स्वीकारकर मनुष्य भव में दैवी सुख का उपभोग करो । तेरी दासी हूँ। रोज दिव्य भोग भोगेंगे। मैं तेरे आगे प्रीतिपूर्वक गीत-गान नाच करूँगी ।" इस प्रकार कामोद्दीपक वचनों से उसे ध्यान से चलित करने का प्रयत्न किया । पर वह ध्यान से चलित न हुआ। तब देवी विस्मित होकर अपने स्वाभाविक रूप में आकर बोली । तेरे सत्त्व से मैं खुश हूँ: अतः अब उपसर्ग नहीं करूँगी। हे कुमार! तुं यह कौन सा मंत्रादि का जाप कर रहा है जिससे तु निर्भय

है। तेरा धर्म कौन सा है? जिससे मुझ उपकारी की भी पूजा नहीं करता है । ऐसे उसके वचन सुनकर कार्योत्सर्ग ध्यान पारकर कुमार बोला-जगत में श्रेष्ठ परमेष्ठि पुरुषों का ध्यान करता हूँ। जिनके ध्यान से आधि-व्याधि और उपाधि सभी नष्ट हो जाती है। मेरा धर्म अर्हत् प्रणित जगत हितकारी अहिंसा प्रधान है। जिसमें मिथ्यादृष्टियों की अर्चा का त्याग है । अत: हे भद्रे! यदि आत्मा का हित चाहती है तो हिंसा मत कर । देव भी हिंसा के कारण क्रमश: नरक में जाते हैं। फिर उसके पूछने पर कुमार ने विस्तारपूर्वक अर्हत् प्ररूपित धर्म का स्वरूप समझाया । उस देवी ने कुमार के वचन से प्रबुद्ध होकर सम्यक्त्व को स्वीकार किया । हिंसा से विरक्त हुई । पूर्वकृत हिंसा के पाप से मुक्त होने के लिए अर्हत् पूजा, संघ सहायता धर्म प्रभावना आदि को स्वीकार किया । फिर उसको गुरु मानकर दिव्य औषधि दी। जिसको शिर पर रखने से स्व-पर का इच्छित रूप हो सके। अलंकार वस्त्रादि देकर पुष्प रत्नादि की वृष्टि की। दुंदुभि नादकर उसको नमस्कारकर देवी चली गयी । वहाँ से वह राजा के महल में गयी और बोली- 'जागते हो या नहीं?' राजा ने कहा-जामाता के घर धुंआ आदि देखकर निद्रा कैसे आए? तब देवी ने कहा-वह सात्त्विक शिरोमणि है। प्रतिकूल व अनुकूल उपसर्गो में अड़िग रहकर उसने मुझे दयामूल आर्हत् धर्म प्राप्त करवाया। तू भी उसके पास धर्म का स्वरूप समझकर स्वीकार करना। देवी ऐसा कहकर अपने स्थान पर गयी ।

प्रात: राजादि सभी दुंदुभि नाद से प्रभावित सर्व वृत्तांत जानने हेतु कुमार के महल में गये । वहाँ दिव्य वस्त्रालंकार, रत्नवृष्टि, पुष्प आदि देखकर आश्चर्य को प्राप्त किया । कुमार ने भी राजादि का अभ्युत्थान आदि से सत्कारकर उनके पूछने पर रात्रि का पूरा वर्णन सुनाया । चमत्कार को पाये राजाकुमार के पास धर्मश्रवणकर, धर्म स्वीकार करने का विचार कर रहे थे । इतने में उद्यान पालक

ने आकर 'ज्ञानी गुरु श्री धर्मयशमुनिराज सपरिवार पधारे हैं' ऐसे समाचार सुनाये। तब कुमार के वचन से सभी वहाँ वंदन एवं धर्मश्रवण करने गये। सविस्तार धर्म और उसके प्रभाव को श्रवण कर सम्यक्त्वादि धर्म स्वीकारकर अपने-अपने स्थान पर गये। राजा राजपुत्र राजवर्ग प्रजा जयानंदकुमार के वृत्तांत को देखकर कुमत को छोड़कर जिनधर्म में ही रत हो गये। इस प्रकार कुमार धर्ममय समय पसार करता हुआ सर्व लोक में (जगत में) प्रसिद्ध हो गया ।

जयानंदकुमार शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता हुआ अपने गुणों से प्रजा को प्रसन्न करता था । एकबार श्रीवर्धनकुमार आदि सौ पुत्रों के साथ जयानंद राजसभा में बैठा था । उद्यानपालक ने आकर कहा ''राजन्! आपके उद्यान में एक कोल (सुअर) आकर उद्यान नष्ट प्राय: कर रहा है । वह आप के उद्यान रक्षकों को भी डरा रहा है। ऐसा सुनकर राजा उसे मारने के लिए जाने लगा । तब उसके पुत्रों ने उसे विनयपूर्वक रोका और स्वयं गये। जयानंद ने तो पराक्रमी होने पर भी सामने पशु होने से उपेक्षा की। फिर भी वह कौतुक से वहाँ गया। राजपुत्रों ने उस कोल (सुअर) को देखकर बाणों की वर्षा की, पर वह कोल इस प्रकार उछलता था कि वे बाण निरर्थक सिद्ध होने लगे । उसने हस्ति, अश्व आदि को भी गिरा दिये । अपने नखादि से वीर हृदयों को भी हरा दिया । राजकुमारों को व्याकुल देखकर जयानंद उसको शस्त्ररहित और भूमि पर देखकर शस्त्र छोड़कर, अश्व छोड़कर असि को कमर में बांधकर उसके सामने गया । कोल (सुअर) दौड़कर कुमार के ऊपर गिरने आया तब एक मुष्टि के प्रहार से उसके दांतों के टुकड़े कर दिये । भूमि पर गिरते समय उसको हाथों से पकड़कर आकाश में घूमाकर सात तालवृक्ष जितना दूर फेंका । वह भी आक्रंदन करता हुआ हड्डी और नख तूटा हुआ जंगल में प्रविष्ट हो गया । तब जयानंदकुमार

उसे दूर भगाने के लिए वन में गया, तो वहाँ उसने कोल (सुअर) को नहीं देखा । परंतु वहाँ एक श्वेत हस्ति कैलाश पर्वत जितना बड़ा देखा । उसे देख जयानंदकुमार खुश होता हुआ उसे घूमाकर मुष्टि प्रहारों से थकाकर, वश में कर उस पर चढ़ गया । मुष्ठि के प्रहार से उसे हेमपुर की ओर ले जाने का प्रयत्न किया । परंतु गजराज बलपूर्वक वन में दूर तक चला गया । फिर वह आकाश में उड़ा । कुमार उसकी पीठ पर बैठा था । सरोवरों को गोष्पद के समान, नदी सारणी के समान, पर्वत बिल के समान देखता हुआ सोचने लगा 'यह कोई वैरी होगा तो मुझे कहीं समुद्रादि में फेंक देगा । ऐसा सोचकर उसने एक मुष्टि का प्रहार किया । वह हाथी विह्वल होकर उसे आकाश में छोड़कर कहीं चला गया । जयानंदकुमार तो गिरते ही देवीदत्त विघ्न निवारिणी औषधि का स्मरणकर एक सरोवर में गिरा । उसे तैरकर तट पर आ गया । कुमार एकवृक्ष पर चढ़कर मार्ग देखने लगा । वहाँ निकट में एक ग्राम और मार्ग दिखायी दिया । वह वहाँ से उतरकर चलने की सोच रहा था, इतने में वह वृक्ष भी आकाश में उड़ा । शीघ्रता से अरण्य में जाकर एक पर्वत के खंड के पास रुका । कुमार उस पर से उतरकर तापसों से सेवित एक व्याघ्र को देखकर विस्मित हुआ। वह तापसों के पास गया । तापसों से पूछने पर तापसों ने कहा "हे नरवृषभ! आओ आओ तुम्हारा स्वागत है ।" तापसों ने आलिंगन देकर उचित आसन पर बिठाया । और कहा 'यह कथा बड़ी है । पहले आप भोजनादि से निवृत्त हो जाओ । फिर हम व्याघ्र की बात कहेंगे । जयानंदकुमार ने वैसा ही किया । तापसों में मुख्य हरिवीर था । उसने व्याघ्रचरित्र कहना प्रारंभ किया:-

"महापुर में नरसुंदर राजा था । उसका प्रिय पात्र हरिवीर नामका बालमित्र सेनापति था । राजा का प्रीतिपात्र, स्वजनों में अग्रिम, उनका

मामा भोगराजा भोगपुर का अधिपति था । एकबार सुरपुर के राजा सुरपाल ने भोगपुर जाकर भोगराजा को ललकारा काफी समय तक दोनों में युद्ध हुआ । क्षीण बल के कारण भोगराजा अपने नगरमें चला गया । फिर भागिनेय को बलवान जानकर उसकी मदद मांगी । नरसुंदर राजा जाने लगा । तब हरिवीर सेनाधिप ने कहा "चींटी पर कटक का क्या काम ? मैं सुरपाल को जीतकर आपके मामा की रक्षा करूँगा।" तब हर्षित नरसुंदर ने दो हजार हाथी, दो हजार रथ, पांच लाख अश्व और पांच क्रोड़ पदाति सेना के साथ उसे भेजा । हरिवीर भोगपुर आया और महामानी सूरपाल को ललकारा । भोगपुर के राजा ने उसका स्वागत किया । युद्ध प्रारंभ हुआ । सूरपाल की सेना, हरिवीर की सेना के सामने हारने लगी । तब सूरपाल स्वयं युद्ध के लिए गया। भोगराजा को कहा "रे एकबार तो भागकर दुर्ग में चला गया था । अब कहाँ जायगा ? तब भोगराज ने कहा "एकबार फाल चुक गया सिंह क्या दूसरी बार फाल देकर मृगों को नहीं मारता है ? फिर दोनों का युद्ध चला । परंतु भोगराजा उसके बाणों को सहन न कर सकने के कारण व्याकुल हो गया । तब हरिवीर सूरपाल के सामने आया । सूरपाल ने कहा 'मूर्ख ! परकार्य में क्यों मर रहा है ?'

हरिवीर ने कहा "महान योद्धाओं को स्व-पर का भेद नहीं रहता । मरण भाग्याधीन है, तेरी इच्छा से नहीं ।" उन दोनों में युद्ध चला । सूरपाल उसके सामने टीक न सका और सोचा कि इसके साथ युद्ध में मेरी मृत्यु निश्चित है। इसलिए 'जीवतो नर भद्रा पामे'- कहावतानुसार मुझे पीछे जाना ही ठीक है। ऐसा निर्णयकर वह पीछे हटा । तब भोगराजा ने उसकी सेना को लूटा। अश्व, गज, शस्त्र, अलंकार, आदि लेकर हरिवीर के साथ अपने नगर में आया। भोगराजा ने स्वयं को जीवनदान, राज्यदान देनेवाला मानकर प्रीतिपूर्वक उसका सम्मान किया और अपने आदमियों से पूछा "मैं हरिवीर को एक

कन्या देना चाहता हूँ । किसीकी विवाह योग्य कन्या हो तो कहो'' तब सुरदत्त नामक सेनापति बोला ''मेरी एक कन्या है ?'' शुभ मुहूर्त में उसका विवाह हरिवीर से कर दिया । राजा ने भी कन्यादान में बहुत धन दिया । यथेष्ट समय ससुराल में रहकर महापुर जाने की बात कही। तब सुरदत्त ने अनुमति दी । परंतु 'सुभगा' पत्नि का मधुकंठ नामक एक नौकर से संबंध होने से वह जाना नहीं चाहती थी। उसने शादी भी अपने पिता की आबरू को सुरक्षित रखने हेतु ही की थी । उसने पेट दर्द का बहाना कर दिया। स्त्रियों को कपट शिक्षा लेनी नहीं पड़ती। वह कला तो उनमें होती ही है।

वह क्रंदन करती हुई मंच पर लोटने लगी। अनेक उपचार किये । पर वह अधिकाधिक क्रंदन करने लगी । दंभ से पति पर प्रेमवर्षा करती हुई बोली-''मेरे प्रबल भाग्य से सर्वोत्तम पति मिले । परंतु किसी पापोदय से मैं आपके साथ नहीं आ सकती । आप भी यहाँ कितने दिन रहोगे? हरिवीर कुछ दिन रुका तो उसने भोजन लेना बंदकर अपने शरीर को अधिक कृश बनाया । तब सुरदत्त ने कहा ''आप इस अवस्था में इसे ले जाकर उपाधि में पड़ोगे । अत: हम इसके ठीक हो जाने पर आपको समाचार भेजेंगे । फिर आकर ले जाना ।'' हरिवीर सुभगा के कृत्रिम प्रेम को स्वाभाविक समझ कर उसकी यादें लेकर गया ।

इधर थोडे दिनों में उसने अपना नाटक समेट लिया । पूर्ववत् मधुकंठ नामक नौकर के साथ स्त्री चरित्र में प्रवीण होने के कारण किसीको ध्यान में न आये वैसे क्रीड़ा करती रहती थी । अपनी पुत्री को स्वस्थ व आनंदित देखकर पिता ने हरिवीर को समाचार भेजे । वह उसके प्रेम से आकर्षित होकर लेने आया । सुरदत्त ने उचित आदर सत्कार किया । परंतु सुभगा अंतर में म्लान हो गयी । परंतु बाहर से स्नेह प्रदर्शित करने लगी । कहा है 'ऐसी स्त्रियाँ एकपुरुष को हृदय

में धारण करे, दूसरे पुरुष को दृष्टि से बुलाये, तीसरे को वचन से आश्वस्त करे और रमण किसी ओर के संग करे ।'

उसने पति पर इतना स्नेह बरसाया कि उसे कोई शंका उत्पन्न ही न हो। फिर थोड़े दिनों के बाद जाने की बात चली तब उसने एक और तैयारी कर ली। अपने वस्त्र सामान आदि सज्ज, करके शामको दंभ से ग्रहिलत्व दर्शाने लगी । मस्तक घूमाना, अंटसंट बोलना, अट्टहास करना, किसीको डराना, बर्तन फेंकना, बालकों को मारना, वस्त्र जैसे तैसे खुले करना, गाली देना, हंसना, रोना आदि कार्य प्रारंभ किया । घर के लोगों ने समझा कि इसे कोई प्रेतात्मा की पीड़ा हो गयी है । उपाय प्रारंभ किये । परंतु कोई फर्क नहीं पड़ रहा था । बहुत दिन निकल गये । कहा है 'जागते को कौन उठा सकता है? हरिवीर ने सोचा' 'अब मुझे अधिक दिन यहाँ रहना उचित नहीं।' ऐसा सोचकर उसने श्वसुर से जाने की बात कही । सुरदत्त ने भी सोचा 'ऐसी हालत में वहाँ ले जाकर क्या करेंगे? उसने भी जाने की बात स्वीकारकर ली । हरिवर ने अपने नगर में आकर उसकी स्वस्थता हेतु कुदेवों की बलि पूजा की । शकुनिकों आदि को पूछा और जिसने ठीक होने का कहा उनको धनादि का दान दिया । जिसने जो जो उपाय बतायें, वे सब किये।'

इधर हरिवीर के जाने के बाद उसी हालत में मधुकण्ठ के साथ क्रीड़ा करते, करते कुछ दिनों के बाद पुनः ठीक हो गयी । थोड़े दिनों के बाद सुरदत्त ने पुनः समाचार भेजे । हरिवीर लेने आया। सुभगा ने अत्यधिक प्रेम दर्शाया । फिर एक दिन रात को कहा "हम यहाँ से चले, तब आप मेरे पिता से मधुकण्ठ नामक एक नौकर को मांग ले । अत्यन्त चतुर है, सेवाभावी है, और मार्ग का ज्ञाता है । सुभगा ने सोचा अब नाटक करना ठीक नहीं । अब तो इस कांटे को ही निकाल देना है जिससे स्वेच्छा से मधुकण्ठ के

साथ रह सकुँ । जाने का दिन तय किया । माता-पिता ने हितशिक्षा दी । वत्से! पतिभक्त रहना । सदाचार का पालन करना, परिवार के साथ निष्कपट व्यवहार रखना । नणंद से स्नेह, सासु पर भक्ति, देवर पर स्निग्ध, परिवार पर वात्सल्य भाव रखना । इत्यादि हितशिक्षा उसने एकाग्रता से सुनी और दूसरे कान से बाहर निकाल दी । हरिवीर की भावनानुसार मधुकंठ को साथ भेज रहे थे । सुभगा अंदर बाहर दोनों ओर से खुश थी। कुछ दूर तक सभी पहुँचाने गये । "फिर आना" कहकर अपने-अपने घर गये।

हरिवीर मधुकंठ के दर्शित मार्ग से आगे बढ़ रहा था । सुभगा के कृत्रिम प्रेम से वह प्रफुल्लित था । मार्ग में एक स्थान पर नदी और वन देखकर सुभंगा ने कहा 'यहाँ हम भोजनादि से निवृत्त हो जायँ । हरिवीर ने वहाँ पड़ाव डाला । भोजनादि हो जाने के बाद पूर्व के संकेतानुसार सुभगा ने कहा "हम यहाँ इस वन में थोड़ी देर क्रीड़ा करने के लिए जायँ । आप अपने आदमीयों को यहाँ रुकने को कहें ।" सुभगा के प्रेम से अंधा बना हरिवीर उसके साथ उस अरण्य में गया । मधुकंठ भी रथारूढ़ होकर उनकी रक्षा के बहाने अंदर गया और सैनिक बाहर रक्षक के रूप में रहे। एक प्रहर बीत गया फिर भी हरिवीर को बाहर आया न देखकर वे उसको खोजने अंदर गये । परंतु तीनों में से कोई न मिला । आगे जाने पर एक जगह हरिवीर की तलवार मिली । खिन्न होकर उन्होंने तीन दिन तक उनको ढूंढने का प्रयत्न किया । परंतु न मिलने पर महापुर आकर भोगराजा को शोक के समाचार दिये। शोकमग्न भोगराजा ने अपने हजारों सैनिकों को चारों ओर ढूंढने के लिए भेजे।

वे सभी खोज़-खोज़ कर थककर वापिस आये । फिर भी किसीके न मिलने पर पुत्र से भी अधिक प्रिय हरिवीर के वियोग से राजा शोकमग्न रहने लगा । उसका परिवार भी बहुत

रोया । धीरे-धीरे शोक से निवृत्त होकर दूसरे सेनापति की नियुक्ति की । फिर पूर्ववत् राज-कार्य करने लगा ।

इधर एकबार राजा गज ग्रहण की इच्छा से सब सामग्री लेकर विन्ध्यपर्वत के पास वन में गया। वहाँ गजों को ग्रहण किया, एकबार एक शबर बंदर के परिवार को लेकर आया और बंदरों से अनेक प्रकार के खेल करवाकर राजा का मनोरंजन किया। राजा ने शबर को बहुत धन दिया । मुख्य कपि राजा को देखकर अश्रुधारा बहाने लगा। बार-बार पैरों पर गिरने लगा । राजा विस्मित हुआ। कपि चेष्टा से कुछ कहते हुए भी कोई उसके भावों को जान न सका । तब राजा ने उसके अभिप्राय को ऐसा जाना कि यह मेरे पास रहना चाहता है अत: मैं इसे ले लूं । उसने शबर को धन देकर उस पूरे कपिवृन्द को ले लिया । पशुरक्षाधिकारी को उनकी व्यवस्था का अधिकार दे दिया। गजों को ग्रहणकर अनेक दिनों के बाद राजा अपने नगर में आया। पशुरक्षाधिकारी केलीवीर अवसर प्राप्त होने पर कपिवृंद का नृत्य करवाता है । राजा रंजित होकर अधिक ग्रास आदि दान देता है, राजा तत्त्व से अज्ञ होते हुए भी उस मुख्य बंदर के लिए मणिस्वर्णालंकार बनवाता है। जब स्वर्णालंकार स्वर्णकार ले आया। तब राजा ने अपने हाथों से उस बंदर को गहने पहनाने प्रारंभ किये। जब गले का वलय निकालकर नया वलय पहनाने हेतु तत्पर हुआ। तब वह बंदर पुरुष रूप में प्रकट हो गया और उसने राजा को प्रणामकर कहा कि "हरिवीर आपको नमन करता है।" राजादि सब सम्भ्रात होकर पूछने लगे-"यह कैसे हुआ? तब वह रोने लगा । राजा ने उसे आलिंगन देकर प्रीतिपूर्वक एक आसन पर बिठाया । राजा के आदेश से अनेक प्रकार के बाजे बजाकर हर्ष व्यक्त किया गया । उसका कुटुम्ब भी उस वृत्तान्त को जानकर वहाँ आया । गले लगकर रोने लगे । मंगल आशीर्वाद दिये । फिर राजा के पूछने पर उसने कहा "हे स्वामिन्! कर्म के कारण कुछ भी दुर्लभ नहीं है। कर्म ने मुझे

तिर्यंचयोनि में फेंक दिया । आज आपने मेरा उद्धार किया। अब जो मैंने अनुभव किया वह मैं कहता हूँ। क्रीड़ा के लिए मैं वन में गया। यहाँ तक आपको ध्यान है। कामचेष्टा से मधुर स्नेह आलाप संलाप के द्वारा मुझे बार-बार मोहित करती सुभगा को सती जानता हुआ, उसका हाथ पकड़कर मैं गहन झाड़ी में प्रविष्ट हुआ । वहाँ मैं उसके साथ इधर-उधर वृक्षों को देखता हुआ घूम रहा था । तब उसने वहाँ मुझे क्रीड़ा करने हेतु अतीव कामातुर बना दिया और उसने वहाँ मेरे साथ क्रीड़ा की । फिर मुझे कहा 'जब आप मुझ पापिनी और रोगीष्ट को छोड़कर गये थे । उस समय मैं आप के संगम सुख से वंचित होकर ठीक हुई । एकबार भिक्षा के लिए आयी एक परिव्राजिका को औषधियों की थैली सहित देखी । उसको विज्ञ जानकर इच्छित पदार्थों के दानादि से संतुष्ट की । एकबार उसने कहा "हे सुभगे! बोल, मैं सभी कार्यों में प्रवीण हूँ। तेरा कोई कार्य हो तो कह।" तब मैंने कहा 'हे माता! मेरे रोग के कारण दोबार मुझे पति के सुख से वंचित होना पड़ा । अतः ऐसा करो जिससे मैं पति सुख निरंतर पा सकूं।' तब उसने औषधि गर्भित लोहे का यह वलय दिया। और कहा "इसको पास में रखने से रोग और विघ्न नहीं आयेंगे। दुष्ट देव दानव, मानव और तिर्यंचों का प्रभाव भी खत्म हो जायगा।" तब मैंने आनंदित होकर उसका सत्कार किया वह गयी। इसी वलय के प्रभाव से मैं नीरोगी हुई और आपका सानिध्य प्राप्त हुआ । अब मेरे लिए आप ही सर्वस्व हैं। मैं आपका ही कल्याण देख रही हूँ। अवसर पर इसे आपको पहनाऊँगी। अब तो आपके मस्तक के नीचे रखती हूँ। अब आपको रतिक्रीड़ा की थकान है, आप सो जाइए। उसने वह वलय बताकर मेरे मस्तक के नीचे रख दिया। मैं उसकी स्नेहभरी बातों से मूढ़ बनकर सो गया । थोड़ी गहरी नींद आयी देखकर उसने वह वलय मेरे गले में डाल दिया। प्रायः करके निद्रा वैरिणी होती है। जब मैं जागृत हुआ तब स्वयं को बंदर रूप में देखा। उसको न देखकर मैं उसके पदानुसार

शीघ्र गया तो मधुकंठ के साथ उसको रथारूढ़ देखा । वह मुझे देखकर बोली। 'मूढ़! एक पक्षीय स्नेह कैसा?'

मेरे पिता ने अनजान में विवाह किया है। मैं तो बालपने से ही गीतकला में प्रवीण इस मधुकंठ पर आसक्त हूँ। इसीको पति रूप में चाहती थी । मैंने विवाह को नहीं माना था । परंतु स्वजनों के अत्याग्रह से विवाह मंजूर किया था । इस प्रकार उसने अपना समग्र चरित्र विस्तार से कहकर कहा । सभी को विश्वास हो, इसलिए तुझ पर स्नेह दर्शाया । दोबार तुमको खाली हाथ भेजा । परंतु नहीं समझा और वापिस आया । इसलिए परिव्राजिका प्रदत्त वलय से तुझे कपि बना दिया । अब तिर्यंच योनि भोग। क्योंकि सजा के बिना मूर्ख नहीं मानते । दोबार सूचित करने पर भी मेरे अभिप्राय को न समझा । तब दूसरा उपाय न देखकर यह सब किया, इसमें मेरा दोष नहीं। अब मैं कहीं जाकर पिता के धन से मौज करूँगी । तू भी बंदरीयों के साथ क्रीड़ा कर। इस प्रकार मुझे कहकर मधुकंठ को रथ चलाने को कहा । तब मैं क्रोधान्वित बनकर उसे नखों से विदारने लगा, तब मधुकंठ ने मेरे मस्तक पर खड्ग से वार किया । मैं मूर्छित हो गया । रात में हवा से होश आया । प्रातः चारों ओर घूमता हुआ एक कपियूथ को देखा । नायक बंदर को हराकर मैं यूथेश बना । एकबार एक भिल्ल ने मुझे प्रमादावस्था में पकड़कर नृत्यादि कला सिखायी । और हे स्वामी! उसने आपको मुझे समर्पित किया । और आपने आज मुझे मानव बनाया । मेरे इस चरित्र को सुनकर कोई स्त्री पर विश्वास न करे । विषयासक्त जीव कौन सी पीड़ा नहीं पाते? विषयासक्तों का प्रायः करके स्त्रियाँ पराभव करती है।''

ऐसा सुनकर राजा बोला ''हे मित्र! खेद न कर । किसी सुशील कन्या से तेरा विवाह करेंगे । तू उनके साथ भोगों को भोग ।'' ''उसने कहा'' स्वामी! आपके होने पर कोई कमी नहीं। पर मैं स्त्रियों से

भयभीत हूँ। भोगों का मुख्य साधन वे ही हैं। अत: मैं इहभव परभव में सुखकारी तपाचरण करूँगा । आप अनुज्ञा दें।'' ऐसा सुनकर राजा ने सोचा मेरा मित्र विरक्त हुआ। ऐसा देखकर कौन विरक्त न हो! । हाथी, अश्व, सैनिक आदि का समूह साथ में होने पर भी इसकी एक स्त्री से रक्षा न हो सकी । क्योंकि इस संसार में जीव नि:शरण हैं, विविध कर्मो के द्वारा अनेक प्रकार के दु:खों से पीड़ित होतें हैं। इस संसार में कर्म से आवर्त जीव को सुख कहाँ? जैसे इसको कपि बनाया, वैसे मुझे कोई करे तो मेरी क्या दशा? यह एक से दु:खी बना तो मेरी इन अनेकों से क्या हालत बनेगी? इस प्रकार भव से उद्विग्न विचार कर रहा था । तभी उद्यानपालक ने बधाई दी कि 'हे देव!' 'हेमजट' तापस ज्ञान ध्यान युक्त परिवार सहित नगर के बाहर पधारे हैं ।''राजा सपरिवार वहाँ गया और देशना सुनकर हरिवीर आदि के साथ तापस बना । उसका नाम 'स्वर्णजट' दिया । राजा की पट्टरानी सुरसुंदरी भी व्रत विघ्न के भय से गर्भ की स्थिति बिना बताये तापसी हुई।

हेमजट, स्वर्णजट आदि पांचसौ तापसों के साथ वन में आकर पुन: तप में प्रवृत्त हुआ । एक बार गर्भ का ध्यान आने पर पूछा तब रानी ने सत्य बात कही । बाद में एक पुत्री का जन्म हुआ । उसका नाम तापस सुंदरी दिया । क्रम से तपस्विनियों के द्वारा पालन कराती हुई रूप-लावण्य युक्त युवावस्था में आयी। पिता ने उसे चौसठ कला में प्रवीण बना दी।

समय पर हेमजट ने स्वर्णजट तापस को अपना पद और साधन विधि सहित आकाशगामी पल्यंक विद्या दी फिर स्वर्गवासी हुआ । तब से पर्वत पर कुलपति स्वर्णजट की आज्ञा में तापस रहे हुए हैं। एकबार स्वर्णजट, गिरिचूडयक्ष के चैत्य में उपवास पूर्वक ध्यान आसन आदि के द्वारा उस विद्या को सिद्ध करने लगा । एक लक्ष जाप, इक्कीस दिन में पूर्ण हुए । देव ने संतुष्ट होकर आकाश-गामिनी पल्यंक दिया

। देव की पूजा स्तवनाकर स्वर्णजट ने पारणा किया । वह पल्यंक पर बैठकर अनेक तीर्थों को वंदन करने के लिए (विद्याधरों के समान) जाता था। पुत्री की चिन्ता से अनेक राजकुमारों को भी देखने जाता था । एकबार कहीं राजकुल में राजकुमार देखने गया था । वहाँ से व्याघ्र बनकर आया । उसको देखकर डरे हुए तापस भागने लगे। तब व्याघ्र ने नखों से भूमि पर लिखकर कहा 'कि मैं स्वर्णजट हूँ । किसी देव के शापसे मैं व्याघ्र बना हूँ। किसी धर्म तत्त्वज्ञ पुरुष के संसर्ग से मैं पुरुष रूप में आऊँगा । अत: उसको यहाँ ले आओ ।' तापसों ने सोचा 'तापसों से अधिक धर्म तत्त्वज्ञ और कौन होगा? यह सोचकर मंत्र विधान आदि किया परंतु कार्य सिद्धि नहीं हुई । तब सांख्य, अक्षपाद आदि से मंत्र विधान आदि करवाये । परंतु वे सब विफल गये। तब दूसरा उपाय न मिलने पर हम सभी चिन्तातुर हुए । फिर पर्वत पर स्थित गिरिचूड यक्ष के मंदिर में गये । और उसके सामने दर्भासन पर तप जप से उसकी अर्चना की। वह देव भी अष्ट उपवास के बाद प्रकट हुआ । हमने कहा-''हमारे कुलपति को वापिस तापस करो। देव ने कहा'' ''मेरी शक्ति नहीं है । क्योंकि मुझसे बड़े देव ने ऐसा किया है। इसलिए दूसरा कुछ कहो जो मैं कर सकूं। तब हमने कहा 'हमारी इष्ट सिद्धि के लिए धर्मतत्त्वज्ञ पुरुष को ले आओ। देव ने कहा' 'ज्ञानी के वचन से जानकर उसको ले आऊँगा ।' फिर वह कहीं गया। क्षणभर में आकर बोला 'चौथे दिन वह पुरुष स्वयं मिलेगा। ऐसा बोलकर वह आकाश में गया। चौथे दिन हम आकाश में उसकी राह देख रहे थे । तब हमारे भाग्य से आप आ गये। अब हमारे कुलपति को स्वरूपस्थ करने में आप समर्थ हो, अत: ऐसा करो। क्योंकि सज्जनों का कार्य परोपकार ही है ।'

इस प्रकार हरिवीर तापस के मुख से व्याघ्र का चरित्र सुनकर जयानंदकुमार विस्मय पूर्वक बोला 'यदि मेरे द्वारा कथित

सर्वज्ञदर्शित धर्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करो तो आपका कार्य करूँ।' "उन्होंने कहा "यदि हमारा कार्य आप करोगे तो देव के वचन से तुम ही तत्त्वज्ञ और हमारे गुरु हो।" तब कुमार ने कहा "ऐसा है तो शीघ्र अग्नि फल आदि सामग्री ले आओ। उन्होंने भी उसके कथनानुसार सारी सामग्री एकत्रित की। कुण्डादि बना दिये। कुमार ने सोचा 'ये आडंबर से ही प्रतिबोधित होगे।' ऐसा विचारकर जयानंद स्नानकर, मुद्रा ध्यान आसन आदि किये । और फिर निम्न मंत्र पढ़ा' ॐ नमोऽर्हद्भ्यः ह्रीँ सर्व सम्पद्वशीकरेभ्यः, ह्रीँ नमः सर्वसिद्धेभ्यः । सिद्धान्त चतुष्टेभ्यः, श्रीँ नमः आचार्येभ्यः। पञ्चाचारधरेभ्यः । ॐ नमः उपाध्यायेभ्यः सर्वविघ्नभयापहारिभ्यः ॐ नमः सर्वसाधुभ्यः सर्वदुष्टगणोच्चाटनेभ्यः सर्वाभिष्टार्थान् साधय साधय, सर्वविघ्नान् स्फोटय स्फोटय, सर्वदुष्टान् उच्चाटय उच्चाटय, एनं स्वं रूपमानय, हूँ फुट्-फुट् स्वाहा । इत्यादि मंत्रों को बोलकर पुष्प फलादि का होमकर आगे बिठाये हुए व्याघ्र का एकबार हाथ से स्पर्श किया । रेल्लणी देवी प्रदत्त यथेच्छ रूपविधायिनी औषधि निपुणता से उसके मस्तक पर रखी और वह व्याघ्र पुरुष रूप में हो गया, कुलपति को पूर्व के रूप में देखकर सब तापस प्रसन्न हुए। कुमार को प्रणामकर उसकी स्तुति की । कुलपति भी आदरपूर्वक कुमार को आलिंगनकर बोला "हारित मानवभव को पुनः नरावतार देनेवाले महाभाग्यवंत तुमको मेरा प्रणाम।" तब कुमार और तापसों ने पूछा' 'आपका यह व्याघ्ररूप कैसे हुआ । कुलपति ने कहा-

"कन्या के लिए कुमार की गवेषणा करने पर्यंक पर जा रहा था । अचानक गगन से पर्वत पर पर्यंक सहित गिरा और अपने आपको व्याघ्र बना देखा। और वहाँ एक जैनमुनि को ध्यानस्थ देखा। मुनि के आगे एक देव चार देवीयों के साथ मनोहर नृत्य कर रहा था । तब मैंने सोचा 'इस मुनि ने किसी कारण से मुझे ऐसा किया है । फिर मैंने

रोते हुए व्याघ्र भाषा में कहा 'भगवन्! मैंने कौन सा अपराध किया है, जिससे मुझे गिराकर व्याघ्र बनाया । हे कृपानिधि! कृपा करो और मुझे पुन: पुरुष बनाओ।'' मुनि ने कहा 'यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है । किन्तु किसी रोष से इस देवने ऐसा किया होगा । फिर नाटक पूर्ण होने पर मैंने मुनि से पूछा ''यह देव कौन है? और मुझ पर कुपित क्यों हुआ? करुणासागर मुनि बोले ''मैं वैराग्य से विद्याधरेशपना छोड़कर प्रव्रजित हुआ । सिद्धान्त पढ़कर भव्यजीवों को गुरु आज्ञा से प्रतिबोधित करते हुए एकाकी विहार में इस पर्वत पर आया हूँ । एक सिंह को गज पर आक्रमण करते देखा तब मैं करूणा से आकाशमार्ग से नीचे उतरा । मेरे तप प्रभाव से सिंह भाग गया । फिर गज को सब जीवों से क्षमापना करवायीं, पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र दिया। वह गज उसका स्मरण करते हुए सौधर्मकल्प में देव हुआ । वह देव पूर्वभव का स्मरण कर मुझे उपकारी मानकर भक्ति से दिशाओं को उद्योतित करता हुआ, मुझे नमस्कारकर पूर्व का वर्णन कहकर, मेरे आगे नृत्य करने लगा । इस बीच छाया देखकर मुझ पर तुझे आते देखकर मेरी आशातना से क्रुद्ध होकर, तुझे इस दशा में लाया है।'' ''इस प्रकार मुनि वचन सुनकर विनयपूर्वक देव को नमस्कारकर, आँखों से अश्रु वर्षा करते हुए दीनवचनों से शाप से मुक्त करने की प्रार्थना की देव ने कृपा करके कहा ''मूढ। राज्यभोगादि छोड़कर भी ऋषिकी आशातना करते हुए तत्त्व को नहीं जानता । निष्फल तप न कर। मेरे प्रभाव से पर्यंक पर बैठकर पूर्व के समान अपने स्थान पर जा । मास के अन्त में तत्त्ववेदी पुरुष तुझे फिर तापस बना देगा । उससे तत्त्व को जानकर उसको अपनी कन्या देना ।'' फिर मैं यहाँ आया । आगे का वर्णन तो आप जानते ही हैं। ऐसा वर्णन सुनकर कुमार एवं तापस आश्चर्य चकित हुए । फिर हर्ष से तपस्वीनियोंने मंगल गीत गाकर उत्सवकर सब तापसों ने मिलकर कुमार को धर्म पूछा। कुमार ने भी यति-धर्म व गृहस्थधर्म विस्तारपूर्वक

समझाया। तापस प्रतिबोध पाकर सम्यक्त्वसहित अणुव्रतधारी हुए। फिर कुलपति ने कहा "देव ने कन्या का वर तुझे कहा है अतः शीघ्र इसका पाणीग्रहण करो ।" यह सुनकर कुमार कुछ बोले इसके पहले कुमार के मस्तक पर पुष्टवृष्टि हुई । उस वृष्टि को देखकर तापस कुछ सोचे तभी गिरिचूड़देव ने प्रकट होकर कहा "मैंने पर्वत पर रहे हुए मुनि को पूछा-यह व्याघ्र पुरुष कैसे होगा?" उन्होंने कहा "तत्त्वज्ञ पुरुष के संग से ।" मैंने पुनः पूछा-तत्त्वज्ञ कैसे पहचानूं? मुनि बोले "जो कोलरूप में तुझे देखकर, तुझे जीत ले । वह तत्त्वविद् जानना । तब मैंने अनेक राजधानियों के उद्यानों में जाकर तोड़फोड़ की । पर मुझे कोलरूप में कोई जीत न सका । फिर मैं हेमपुर के उद्यान में कोलरूप में गया । वहाँ राजा के सौ पुत्रों को हरा दिया । पर इस कुमार के सामने मैं हार गया । फिर हस्तिरूप में माया करके, वृक्षसहित इसे यहाँ लाया । सौंदर्य उदारता, पराक्रम, उपकार और सद्धर्म में इसके समान कोई नहीं, ऐसा मैंने अनुभव किया । हे कुलपते! कौतुक देखने के लिए मैं अदृश्यरूप में यहाँ रहा । इसके उपदेश से, पूर्वभव संस्कार से बोधि की प्राप्ति हुई । मैं पूर्व में धन्यपुर में धन्य नाम से धनवान था। वसुमति मेरी पत्नी थी । श्रावक मित्र के संग से मैंने गुरु के पास सम्यक्त्व मूल धर्म ग्रहण किया ।"

एकबार पत्नी के शरीर में रोग उत्पन्न हुआ । उसकी शांति के लिए वैद्यभाषित अनेक औषध-उपचार किये, पर लाभ न हुआ। तब मांत्रिकों से पूछा । उनके द्वारा दर्शित उपाय से भी ठीक न हुआ । फिर गाढ़ स्नेह से ग्रंथिल बना मैं नगर में आनेवाले जटि-कार्पटिकों से भी पूछने लगा । मेरी पत्नी को स्वस्थ करनेवाले को एक लाख रुपये दूंगा ऐसा कहने लगा । ऐसा सुनकर एक जटी ने कहा 'तेरी प्रिया को रोगरहित कर दूं, फिर भी तू प्रतिज्ञावान रहेगा। तब मैंने कहा एक लाख रुपये दूंगा ।' तब उसको घर ले जाकर

प्रिया को दिखायी । फिर उसने अनेक प्रयोगों के द्वारा उसे स्वस्थ कर दी। उसके उपाय से मेरी भार्या पुष्ट शरीरवाली बनी । जटी के आग्रह से एक महिने तक उसे मेरे वहाँ रखा। उसने मुझे जैन धर्म में शिथिल बना दिया । उस पाप की आलोचना लिये बिना मैं मरकर गिरिचूड़ व्यंतर हुआ । कुमार के उपदेश से शुद्धधर्म को प्राप्त किया। इस खुशी में मैंने पुष्पवृष्टि की है। इस कुमार को तापस सुंदरी दे दो । फिर कुलपति ने शीघ्र विवाह क्रिया का आरंभ किया। देव ने सब सामग्री उपस्थित कर दी । दिव्यमंडप के रत्नस्तंभों में मुक्ता फलों के तोरण बांध दिये । दिव्य वस्त्राभरण युक्त कन्या और कुमार को विवाह मंडप में ले आये । देव ने कन्यादान में खुश होकर दैवीवस्त्राभूषण दिये । कुलपति ने व्योम-गामी पल्यंक दिया । उस रम्यवन में गिरिचूड़ देव निर्मित विमान सदृश हेममयी सप्तखंडी महल में खाद्यादि सामग्री से परिपूर्ण, इच्छित दाता, देव परिवार से युक्त, तापससुंदरी के साथ विलास करता हुआ, कुमार वहाँ रहा । पल्यंक के बल से अनेक तीर्थों की यात्रा की । कभी पत्नी के साथ, कभी अकेला, इच्छापूर्वक नदी, पर्वत, वनादि में क्रीड़ा करता था । तापसों को जैनाचार का पूर्ण ज्ञान करवाया । और उनके हृदय में दीक्षा के भाव उत्पन्न करवाये। वे भी अर्हत् शासन में दीक्षित होने की इच्छावाले हुए ।

एकबार जयानंदकुमार महल में सातवें खंड में भद्रासन पर स्थित था । तब आकाश से एक परिव्राजक को अपने समीप आते हुए देखा । वह आकर, आशीर्वाद देकर आसन पर बैठा । कुमार ने उसके रूप लावण्यमय वदनकमल को देखकर पूछा-"आप कौन है? कहाँ से आये? कार्य क्या है? आप क्या चाहते हैं?" उसने कहा 'हे शूर! तेरे जैसा अन्य कोई परोपकारी नहीं है। इसलिए मैं मेरा वृतान्त कहता हूँ । सुनो ।'

''भद्रदत्त नाम के मेरे गुरु गंगा किनारे रहते थे । उनका मैं गंगदत्त नाम का शिष्य हूँ । गुरु ने औषधिकल्प दिया। उस कल्प से मैं औषधियों को पहचान लेता हूँ । मलयकूट पर अनेक औषधियाँ हैं। वे विधिपूर्वक साधना करने पर सम्यक्प्रकार से जानी जाती हैं। इसलिए वहाँ जाकर एकबार साधना प्रारंभ की, परंतु उस पर्वत का स्वामी क्षेत्रपाल मलयमाल उपसर्ग करके मुझे डराता है । इसलिए साधने में समर्थ नहीं हो रहा हूँ । गुरु आम्नाय से पादलेप से पृथ्वीपर घूमता हूँ। आज इस वन में असंभव स्वर्णमंदिर देखकर, तापसों से पूछने पर, आपका लोकोत्तर स्वरूप जाना । देवों से भी अजेय तुम को जानकर सर्वार्थसिद्धि की याचना के लिए आया हूँ। कहा है-महान पुरुषों से की गयी याचना लज्जा का कारण नहीं होती । इसलिए हे भद्र! अगर क्षेत्रपाल को जीतने में समर्थ हो तो औषधि सिद्ध करने में विघ्नहर उत्तर साधक बनो!'' तब विश्वोपकारक कुमार ने कहा 'शक्र को भी जीतकर तेरा कार्य सिद्ध करूँगा ।' उसने कहा ''अच्छा तुझसे सब संभव है। परंतु वह पर्वतराज यहाँ से सौ योजन दूर है। साधना कृष्णपक्ष की द्वादशी से तीन दिन की है। निर्विघ्नता होगी तो चतुदर्शी को सिद्ध होगी । आज अष्टमी है, इसलिए हे सन्मतिवान्! तैयार हो जा । मैं प्रातः तुझे स्कंध पर बैठाकर तीन दिन में वहाँ पहुँचाऊंगा ।'' तब कुमार ने स्मितकर के कहा ''तुम जाओ । अपना काम करो । द्वादशी को सूर्योदय के पूर्व मैं अपनी शक्ति से आ जाऊँगा । इसमें संशय मत रखना । सत्पुरुष का वचन मेरु के समान अचल रहेगा ।'' ऐसा सुनकर, वह परिव्राजक कुमार को मिलने का स्थान बताकर आकाशमार्ग से गया। फिर जयानंदकुमार ने अपनी पत्नी से कहा ''मलयकूट पर्वत पर जाकर आऊँगा । परोपकार का पुण्यांश तुझे भी मिलेगा । इसलिए पिता के पास तुम रहना । फिर एकादशी की रात

को पल्यंक पर बैठ़कर वह मलयकूट गया । वहाँ पल्यंक एक स्थान पर छिपाकर, साधक को मिला। साधक से, कहा "अब तुम साधना करो । मेरे रक्षक होते हुए तुम्हें कोई भय नहीं होगा ।" वह कुमार के साहस की प्रशंसाकर विधिपूर्वक साधना करने लगा ।

तीसरे दिन चतुर्दशी को रात्री में पूर्वदिशा में घोर अंधकार सहित धुएं को देखा । कुमार ने धैर्यपूर्वक देवी अर्पित औषधि के द्वारा और नमस्कार जाप के द्वारा उसे दूर कर दिया । फिर क्षणभर में धूम्रअग्नि को देखा, तो पूर्व रीति से उसे भी दूर कर दिया । फिर कुमार ने भीषण अट्टहास सुना। उससे भी कुमार क्षुभित न हुआ। आकाशवाणी हुई कि 'पहले साधक का भक्षण करूँ या उत्तर साधक का? तब जय ने कहा-"पाषाणों को खा । हम दोनों तेरे वश में नहीं आयेंगे । मृग सिंह को कैसे खायगा? सिंहरक्षित मृग को भी कैसे खा सकेगा? मैं तो शक्र को भी जीत लूंगा। तो तुझे जीतने की क्या बात?" तब पुनः आकाशवाणी हुई "मूर्ख! दूसरे के लिए क्यों मर रहा है क्या तुने नहीं सुना? देवता कभी भी मानवों से जीते नहीं जाते ।" इसलिए तू दूर हो जा तू निरपराधी है, तुझको नहीं मारूँगा । परंतु अपराधी साधक को तो अवश्य मारूँगा। यह मेरे पर्वत पर विविध औषधि लेने की इच्छावाला विद्यासाधना के समय मेरी अर्चना नहीं करता है, इसलिए इसे मारूँगा ।" कुमार ने हँसकर कहा, "तू अगर वीर है तो अदृश्य क्यों है? प्रकट हो । तेरी वीरता तो मैं भी जानूं।" इस प्रकार जय की तर्जना से वह देव क्रोध से सुअर रूप में प्रकट हुआ । कुमार ने भी उसको पृथ्वी पर गिरते देखकर देवी प्रदत्त औषधि के बल से सुअर होकर युद्ध के लिए गया । दोनों घोर आवाज करते हुए एक दूसरे से भीड़ गये । देव कष्ट से रोता हुआ भाग गया । फिर गज रूप में आया, तब कुमार ने गज रूप से उसके दांत तोड़ दिये। सूंड तोड़ दी। गज भी थककर भागा । सिंह रूप से आया तब कुमार ने

सिंह रूप से उसे हराया। इस प्रकार सब युद्धों में उसे अजय मानकर विकराल रूप बनाकर एक हाथ में डमरू, दूसरे हाथ में नाग, तीसरे हाथ में मुद्गर और चौथे हाथ में तलवार लेकर पैरों से पृथ्वी कंपाता हुआ बोला'' मैं इस पर्वत का 'मलयमाल' नाम का क्षेत्रपाल हूँ। तेरे साथ सुअर आदि रूप से युद्ध की बालक्रीड़ा की है। तुझ से हारा वह तेरी बाल क्रीड़ा को पुष्ट करने हेतु । अब तू मुझे जीतने की आशा छोड़ दे। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। जीने की आशा रखता हो तो दूर चला जा । दूसरों के लिए तुझे मारने से मुझे यश नहीं मिलेगा ।'' जयानंद ने कहा ''युद्ध तेरे लिए क्रीड़ा बना, मेरे लिए परोपकार हुआ। वय एवं शरीर से बड़ा नहीं माना जाता । लेकिन शक्ति से और तेज से बड़ा होता है, वही बड़ा है। कहा है-''

हाथी बड़ा है पर अंकुश के वश है, पर्वत वज्र से गिर जाते हैं। दीपक के प्रकट होने पर अंधकार चला जाता है। इसलिए छोटे बड़े का कोई प्रश्न ही नहीं ।

धीर पुरुषों की मृत्यु भी परोपकार के लिए होती है। जिसके धर्म-यशरूपी प्राण स्थिर हैं, वे मरकर भी जीवित हैं । इसलिए जय या पराजय तो युद्ध में जानी जायगी । तुझे मेरी शक्ति का अंदाज पहले के युद्ध में नहीं आया हो, तो फिर से युद्ध कर।'' इस प्रकार पुनः जय से तर्जित वह क्षेत्रपाल मुद्गर उठाकर कुमार को मारने दौड़ा । तब औषधि के प्रभाव से उसके जैसा रूप बनाकर जयानंद नमस्कार मंत्र का स्मरणकर उसे मारने दौड़ा । दोनों का भयंकर युद्ध हुआ । कुमार ने विघ्नहर औषधि के बल से और धर्म प्रभाव से तलवार से उसके डमरु के, सर्प के, मुद्गर के और तलवार के सौ सौ टुकड़े कर दिये । पुन्य से क्या सिद्ध नहीं होता ?। फिर कुमार ने उसको शस्त्र रहित जानकर तलवार छोड़ दी । फिर क्षेत्रपाल ने वृक्ष उठाया। कुमार ने भी वृक्ष से उसके वृक्ष को चूर्णकर दिया। फिर नये-नये

वृक्षों से युद्ध किया । फिर शिला से युद्ध किया । मल्लयुद्ध किया, मल्लयुद्ध में क्षेत्रपाल को कुमार ने मुष्टी के घात से थकाकार दूर फेंक दिया । वह शिला पर गिरा, भयंकर व्यथा हुई पर देव होने से मरा नहीं । फिर कुमार के तेज को देखकर चमत्कृत होकर स्वयं का रूप प्रकटकर कुमार से कहा "हे कुमार! मैं देवों से भी अजेय हूँ । फिर भी तूने मुझे जीता। इससे तूने जगत को जीत लिया, ऐसा मैं मानता हूँ। अब पूछता हूँ तेरा कौन सा मंत्र, कौन सा धर्म है, जिसके बल से तू बलवान है?" जयानंद ने उसे शांत, मुक्तक्लेश और प्रीतियुक्त धर्मार्थी जानकर कहा "मेरे देव वीतराग हैं । गुरु चारित्रवान हैं। दयामय समकितादि धर्म है। इससे मैं जय पाता हूँ ।" इस प्रकार विस्तार से उसने धर्म का स्वरूप सुनाया । क्षेत्रपाल ने धर्म सुनकर कहा-"अच्छा, तूने मुझे प्रतिबोधित कर दिया है। मैं पूर्वभव में ऋद्धिमान् धर्मदत्त नाम का श्रावक था । एकबार उद्यान में धनेश्वर नाम का परिव्राजक देखा। मासक्षमण करता था । चार करोड का धन छोड़कर वह दीक्षित हुआ था । ध्यान मग्न रहता था । निःशंक और निश्चल आसन युक्त था। उसको नमस्कार करने के लिए आये लोगों के सामने मैंने ग्रहस्थपने की मित्रता से कहा-"यह ध्यानी त्यागी और तपस्वी है" यह श्रावकों के द्वारा भी प्रशंसनीय है, ऐसा मानकर राजादि ने उसकी ज्यादा पूजा की । इस प्रकार समकित के चौथे अतिचार से मिथ्यात्व का प्रवर्तन होने से समकित की विराधनाकर मैं मिथ्यात्वी क्षेत्रपाल हुआ ।

समकितवान् आत्मा वैमानिकदेव में ही जाता है। कहा है-समकिती आत्मा वैमानिक देव का आयुष्य बांधता है, अगर उसने पूर्व में आयु न बांधा हो, या समकित को छोड़ न दिया हो । समकित की विराधना से नीच देवत्व प्राप्त होता है ।

बोधिदुर्लभ पना प्राप्त होता है। मैंने आराधन किया हुआ धर्म अतिचार से ही मलिन होने से दुर्गति में नहीं गया। तुझ से

बोधि प्राप्त हुई। तेरे पास धर्म के स्वरूप को श्रवणकर, पूर्व संस्कार जागृत होने से ज्ञान से यह सब जानकर, मैंने तुझे कहा। "देव के ये वचन सुनकर कुमार ने उसकी प्रशंसा की "धन्य है तुझे जो तू प्रतिबोध को पाया ।" कुमार ने उसे सम्यक्त्व सहित हिंसादि न करने के नियम दिये। देव ने कहा-"धर्मदाता होने से मैं कृतघ्न नहीं हो सकता, परंतु तू कोई वर मांग। उसे देकर गुरु की पूजा करूँ।" तब कुमार ने कहा "हे महाभाग! मेरे लिये तो मांगने जैसा कुछ भी नहीं है। पर, इस साधक को वांछित औषधि दे। क्योंकि मैंने इसके लिए ही यह उपक्रम किया है।" देव ने कहा "मैं दूंगा । परंतु इसके पास रहेगी नहीं। क्योंकि भाग्य के बिना देव प्रदत्त भी नहीं रहता। तथापि मैं आज्ञा देता हूँ। औषधि कल्प में पंडित यह स्वयं देखकर औषधि ग्रहण करे। परंतु तुम कुछ लेकर मुझ पर उपकार करो, जिससे मेरे द्वारा गुरु की पूजा हो जायँ ऐसा कहकर उत्तम पांच औषधि उसे दी। कुमार ने भी प्रार्थना भंग के भय से ग्रहण की । फिर देव ने पांचों औषधि की महिमा बतायी ।"

(१) यह पीली दो अंगुल बड़ी, चार अंगुल लंबी बार हजार जाप से सिद्ध होगी । इसकी अर्चना से यह प्रतिदिन पांचसौ रत्न देती है। मंत्र है ॐ महाभैरवि क्षाँ-क्षौँ क्षः श्रियं वितर वितर स्वाहा ।

(२) पीत औषधि समान यह रक्त औषधि की पूजा से यह पूछती है 'क्या दूं, फिर मांगने पर दुगुना दुं, तीन गुना दूं ऐसा कहती है, पर देती कुछ नहीं । यह कौतुक के लिए है। इसका मंत्र ॐ महावादिनी झाँ झौँ झौँ महाश्रियं वद वद स्वाहा । इसकी विधिपूर्ववत् ।

(३) इससे अर्ध प्रमाण यह श्वेत औषधि सर्व रोगहर समस्त विषहर जंगम स्थावर विष का हरण करती है। पानी के सींचने से प्राणीयों के घाव-व्रण आदि शीघ्र मिट जाते है। आँखें गयी हो तो भी दे देती है । इसकी साधन विधि नहीं है ।

(४) इससे अर्धमानवाली नीली औषधि स्वमंत्र से मंत्रित चेतन, अचेतन के मस्तक पर रखने से अतीत अनागत जो पूछे, उसका ज्ञानी के समान सम्यक् प्रत्युत्तर देती है। मंत्र साधना पूर्ववत् मंत्र यह-"ॐ महाघण्टे चण्डे चण्डशासने प्रश्नार्थं वद वद क्रैँ क्रैँ स्वाहा ।"

(५) पाँचवी श्याम औषधि पानी से सिंचन करने पर दुष्टकार्मण, दुष्टमंत्र, दुष्टचूर्ण, दुष्ट औषधि से संभवित दोषों का नाश करती है। इस प्रकार पाँचों औषधि के स्वरूप को सम्यक् प्रकार से समझकर हर्षित होकर जयानंदकुमार साधक के पास देव सहित आया।

देव ने कहा "हे भद्र! कुमार के अनुभाव से मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ । अत:ध्यान तजकर मेरे आदेश से इच्छानुसार औषधि ले ले । साधक ने भी प्रसन्नता पूर्वक देव की पूजा की । फिर कुमार को पूछकर, कार्य होने पर मेरा स्मरण करना ऐसा कहकर, नमस्कारकर, देव अपने स्थान पर गया । साधक ने भी उस पर्वत पर घूम घूमकर अपने भाग्यानुसार औषधि ग्रहण की। फिर कुमार को कहा "तेरे प्रभाव से मेरी इच्छा पूर्ण हुई। आपकी आज्ञा से मैं स्व स्थान पर जाता हूँ। कुमार ने उसे अनुमति दी। कुमार भी पल्यंक पर बैठ़कर रत्नपुर के उपवन में आया । वहाँ चैत्य देखा । आशातना के भय से कुछ दूर पल्यंक से नीचे उतरकर उस चैत्य में प्रवेशकर जिनेश्वर को वंदन किया । फिर मंत्र साधन योग्य स्थल देखकर पल्यंक किसी स्थानपर छूपाकर तीन उपवासकर विधिपूर्वक तीनों मंत्रों से औषधि को सिद्ध कर फिर परमेश्वर की पूजाकर फलों से पारणाकर, प्रथम औषधि से पांचसौ रत्न प्राप्त किये । फिर वहाँ अष्टाह्निका पूज़ोत्सवकर रत्नपुर में प्रवेश किया। एक मकान किराये का लेकर साधारण श्रावक के घर निवास किया। एक गोशीर्ष-चंदन की प्रतिमा छोटी बनवाकर गुरु से प्रतिष्ठा,करवाकर, नित्य पूजाकर आद्य औषधि से पाँचसौ रत्न प्रतिदिन प्राप्त करता था एक पेटी में वह प्रतिमा और पाँचो औषधियाँ गर्भग्रह में सुरक्षित स्थान

पर रखता था । श्रावक कुटुम्ब उसकी भक्ति करता था । कुमार भी उसे बहुत दान देता था । याचकों को भी प्रचुर दान देता था । इच्छापूर्वक विलास करने से लोगोंने उसका नाम '**श्री विलास**' रखा ।''

वहाँ रत्नरथ राजा राज्य करता था । वह सौन्दर्य, ऐश्वर्य, गांभीर्य, शौर्य आदि गुणों से युक्त था। उस नगरमें रतिमाला गणिका थी । वह चौसठ कलाओं में प्रवीण थी । राजा उस पर मोहित होकर उसे अंत:पुर में ले गया। गणिका ने एक पुत्री को जन्म दिया। जन्मोत्सव मनाकर उसका नाम 'रतिसुंदरी' दिया । बाल्यवय पूर्णकर अध्ययनकर वह भी चौसठ कलाओं में प्रवीण हुई ।

पूर्वभव के संस्कार से जैन अध्यापकों के पास से सम्यक् प्रकार से षड्दर्शन की ज्ञाता हुई। जैनधर्म पर अधिक श्रद्धावाली हुई। वह पंच परमेष्ठी की भक्ति करती थी। उसको अत्यन्त रूप गुण संपन्न जानकर उसके लिए राजकुमार की खोज़ करवायी। परंतु उसके योग्य कोई राजकुमार न मिला ।

रतिमाला पर अन्य रानियों की ईर्ष्या देखकर राजा ने उसे राजमहल के पास में ही एक महल में निवास करवाया । रतिसुंदरी भी माता के साथ रही । उस राज्य की कुलदेवी चंदेश्वरी का चैत्य उद्यान में था। लोक उसकी पूजा करते थे । एक बार उसके चैत्य में स्वाध्याय ध्यान में लीन कोई अप्रमत्त महामुनि चार मास उपवास करके रहे । चंदेश्वरी उन महामुनि के गुणों से प्रमुदित हुई । उसके पूर्वभव के संस्कार जागृत होने से उसने अपना पूर्वभव देखा ।

मैं नंदिपुर में देवशर्म ब्राह्मण की स्वरूपवान नन्दिनी नाम की पुत्री थी । सुशर्म को दी गयी थी। एक वर्ष में उसकी मृत्यु हो गयी । दु:खी नन्दिनी पिता के घर आयी । एकबार उसके घर के पास धर्मगुप्त नाम के गुरु ठहरे । ब्राह्मण प्रतिबोध पाकर श्रावक हुआ । नंदिनी भी सम्यक्त्व सहित अणुव्रत धारिणी श्राविका हुई । वह षडावश्यक

तत्पर देव गुरु पर भक्तिवाली बनी । अल्प आरंभवाली, पठन-पाठन में तत्पर देखकर पिताने उसे घर कार्य से निवृत्तकर धर्मध्यान में रत रहने की अनुमति दी । समय जाते हुए गुर्वादि सामग्री के अभाव से मठवासिनी एक परिव्राजिका के साथ आलाप संलाप करती देखकर पिता ने कहा ''हे पुत्री! पाखंड़ी के परिचय से समकित को दुषित मत कर । इस प्रकार पिता के कहने पर भी गाढ़ प्रीति हो जाने से उसका साथ न छोड़ा । पड़ौस में सावित्री ब्राह्मणी, उसका पुत्र यज्ञदत्त और उसकी पत्नी अंजना रहते थे । यज्ञदत्त को अपनी पत्नी पसंद न थी । अचानक नंदिनी के पिता स्वर्गवासी हुए। यज्ञदत्त नंदिनी को प्रतिदिन देखते-देखते उस पर रागवाला हो गया । परंतु उसकी प्राप्ति न होने से वह कृशांग हो गया । एकबार माता के पूछने पर निर्लज्ज बनकर कारण बताया । माँ ने भी कहा-'खेद मत कर, मैं तेरे मनोरथ पूर्ण करूँगी । एकबार नंदिनी को सावित्री ने कहा' 'वत्से! तुझे धन्य है कि मेरा पुत्र तुझ से प्रेम करता है। अत: तू उसका स्वीकार कर । जिससे रूप लावण्य यौवन सफल हो जायँ । ऐसा सुनकर नंदिनी क्रोधित होकर बोली 'मूढ! धिक्कार है तुझे । जो ऐसे कटु-वचन बोल रही है। प्राण का अंत होने पर भी मैं मेरा शील खंडित न होने दूंगी । शीलभ्रष्टता से तो नरक में पात होता है।' सावित्री मौन रहकर चली गयी। पुन: दो तीन बार ऐसा प्रयत्न किया । पर वह प्रयत्न विफल रहा । तब सावित्री ने परिव्राजिका का संपर्क किया। परिव्राजिका को कहा-'मेरे पुत्र पर नंदिनी अनुरागवाली हो वैसा तुम करो ।' उसने भी 'हाँ' कह दी। परिव्राजिका फिर एक कुत्ती को वश में कर पैरों पर गिरने आदि की चेष्टा की शिक्षा दी । एकबार नंदिनी के आने के समय पर रोती हुई उस कुत्ती को उसके पैरों पर गिराया । नंदिनी ने पूछा 'यह क्यों रो रही है? परिव्राजिका ने कहा 'इसकी कथा सुन । पृथ्वीपुर नगर में दत्त विप्र की दो पुत्रियाँ एक अग्निदत्त को दी। उसके

तीन पुत्र हुए । पति की मृत्यु के बाद वह परिव्राजिका बनी वह मैं। छोटी बहन अग्निशर्मा को दी पर वह छ:महिने में विधवा हुई । एकबार हरिदत्त ने उसके पास याचना की । परंतु व्रतखंडन के भय से उसने नहीं स्वीकारा । वह मेरे पास आयी । मुझे कहा मुझे परिव्राजका कर। ''मैंने कहा 'अपुत्र व्रत योग्य नहीं होते । मेरे द्वारा मना करने पर भी स्वर्ग की इच्छावाली वह परिव्राजिका हुई फिर वह तप करके मरकर यह कुत्ती हुई है । मुझे देखकर पूर्वभव यादकर रो रही है। भोगान्तराय कर्म इसने बांध लिया, उसका फल यह भोग रही है । अत: मेरा तुझे भी कहना है कि कोई तेरे पास प्रार्थना करे तो उसका भंग न करना । कपटी मायावीनी ने नंदिनी के चित्त को चंचल कर दिया । वह सोचने लगी । दुष्कर ब्रह्मव्रत पालन का यह फल हो तो भोगों को क्यों न भोगे । ऐसा चिंतन चलता था । सावित्री ने एकबार पुन: प्रयत्न किया। तब नंदिनी ने 'भाईयों से मैं डरती हूँ ।' ऐसा कहा । तब उसने कहा 'तीर्थयात्रा के छल से घर से आभूषण आदि ले जा । मेरा पुत्र भी वहाँ आ जायगा। इसमें कोई दोष नहीं रहेगा।' नंदिनी ने यह स्वीकार किया। सावित्री ने अपने पुत्र को सांकेतिक स्थान पर भेज दिया । बहू को पिता के घर भेज दी। सावित्री नंदिनी की राह देखती थी। तभी सुव्रता नाम की साध्वीजी वहाँ पधारी । उनके पास ही उसने धर्म पाया था। वह उनके पास गयी। और एकांत में परिव्राजिका की बात कही। तब साध्वीजी ने उसे समझाया । 'अगर पुत्र से स्वर्ग होता हो, तो शूकरी, कुत्ती, कुकुट्टी, गद्धी आदि का स्वर्ग प्रथम होगा । उसकी बात पर विश्वास मत करना । वीतराग वचन पर शंका मत कर । दु:शील से इसभव एवं परभव में दु:ख ही दु:ख भोगना पड़ता है। इसलिए तू उस अज्ञानी की बातें मस्तिष्क से निकाल दे। दु:शील सेवन से स्त्री तिर्यंच, गद्धी, घोड़ी शूकरी, बकरी आदि के भवों में एवं कदाच नरभव मिल जाय तो वहाँ वन्ध्यापन, बाल विधवा, दुगंधा,

कुरूप, योनिरोग, अल्पायु, कुष्टादि रोगों से पीड़ित होना पड़ता है। स्त्री-जन्म ही निन्द्य है । उसमें भी विधवापन, अपुत्रत्व आदि विशेष दुःखकर है। तू अपने आपको शील सुगंध से सुंगधित रख ।' नन्दिनी समझ गयी। फिर साध्वी को वंदनकर अपने घर गयी। सावित्री आयी, तब उसे कह दिया 'मैं नीचाचार का सेवन नहीं करूँगी। पुनः मेरे पास मत आना । अगर आयगी तो मेरे भाईयों के द्वारा तेरी हत्या करवा दूंगी।' वह भयभीत होकर चली गयी । फिर नंदिनी रत्नावली, मुक्तावली आदि तप करने लगी। परंतु उस परिव्राजिका का संग प्रीति के कारण नहीं छोड़ा। उसने भी फिर कभी दुःशील के लिए प्रेरणा नहीं दी । एक हजार वर्ष का आयु पूर्ण हुआ । परपाखंडी संस्तव के द्वारा सम्यक्त्व की विराधना के कारण वैमानिक देव सुख से मैं वंचित रही।'' इस प्रकार पूर्वभव को यादकर, मुनि को नमस्कारकर, अपना वृतान्त बताकर, सम्यक्त्व ग्रहण किया। चातुर्मास के बाद मुनि विहारकर गये । देवी अब शासन संघ की प्रभावना करने लगी।

लोगों के मुख से उस देवी के प्रभाव को देखकर पिता की चिन्ता को दूर करने हेतु अपने अनुरूप पति प्राप्त करने के लिए रतिसुंदरी उस देवी की पूजा करने लगी। देवी ने उस पर प्रसन्न होकर स्वप्न में कहा-''तू राजा के पास नृत्य कर रही होगी तब स्तंभ से दो पुतली उतरकर जिस वीणावादक को चामर ढ़ोलेगी, वह तेरा पूर्वभव का पति और इस भव में अर्धचक्री समान तेरा पति होगा ।'' रतिसुंदरी जाग गयी। प्रमुदित होती हुई अर्हन्त की पूजाकर देवी की पूजा की। फिर उस दिन से उसने पूर्वभव के पति के अलावा दूसरों को देखना भी बंद कर दिया। दास भी अब उसके घर में प्रवेश नहीं कर सकते थे।

कुछ समय के बाद उस नगर में विजया नाम की एक नर्तकी ने आकर नगर में उद्घोषणा की कि मुझे नृत्य में जो जीते, उसकी मैं दासी बनूं । और मैं जीतुं तो उसे दासी बनना होगा। कोई उससे

मुकाबला करने को तैयार न हुआ । राजा को खेद हुआ। इस प्रकार पिता को खेदित देखकर रतिसुंदरी ने कहा ''मैं उसे जीत लूंगी।'' परंतु पुरुषों के बिना निर्णय कैसे होगा ? तब राजा ने कहा ''पुत्री! पुरुषों को दूर रखकर पिता के आगे तू नृत्य कर । फिर पिता को प्रणाम-कर नृत्य का दिन निश्चितकर वह अपनी माँ के पास गयी। फिर नृत्य के दिन राजा ने विजया को बुलाया । रतिसुंदरी भी सुखासन पर आरूढ़ होकर नृत्य के सामान सहित वहाँ जा रही थी । मार्ग में मन में नाट्यानुरूपा वीणावादिका नहीं है, ऐसी चिंता कर रही थी । मार्ग में प्रतिहारिणीयों के द्वारा पुरुषों को दूर किये जाते देखकर श्री विलास ने कौतुक से पास में खड़े एक व्यक्ति से पूछा-'यह क्या है? उसने रतिसुंदरी का वृत्तांत बताया । वह सर्व कला-विशारद नाट्यावलोकन के लिए और कौतुक देखने के लिए पुरुष का प्रवेश असंभव मानकर, स्त्रीरूप बनाकर, कहीं से भी वीणा लाकर उस समूह में मिल गया। वह रतिसुंदरी के साथ राजसभा में आ गया। फिर राजा अपने निर्णायक सद्स्यों के साथ सभा में आया । नृत्य देखने आने वालें पुरुषों को किंचित दूर बिठाये। फिर राजा ने विजया को नृत्य के लिए आदेश दिया। उसने भी गीत-वाद्य लय युक्त मनोहर नृत्य प्रारंभ किया । चित्रैकरसात्मक सभी सभा को रंजन करती हुए बांस, भाले, तलवार, क्षुरिका आदि के द्वारा भी नृत्य किया। फिर चावल के पुंज पर सुई रखकर, उस पर पुष्प रखकर नृत्य किया। प्रत्येक नृत्य में राजादि द्वारा बहुत दान दिया गया ! उस समय की उसकी भावभंगिमा अंगुली आदि में जो-जो दोष थे वे सब रतिसुंदरी ने उन निर्णायक पंडितों को बताये, तब उन्होंने भी उसके उन दोषों को स्वीकार किया । फिर राजा ने रतिसुंदरी को आदेश दिया । विजया ने जो-जो नृत्य किये थे । वे सब नृत्य रतिसुंदरी ने देवों को भी दुर्लभ इस प्रकार किये । उसके नृत्य के समय स्त्रीवेषधारी जयानंदकुमार ने वीणा बजायी । उस वीणा

की ध्वनि से जन समुदाय और पंडितों को अत्यधिक आनंद आया। उस वीणा का नाद देवों को भी दुर्लभ था। उस नाद से मानव तो क्या गज--अश्व आदि पशु भी स्तंभित हो गये। उस नाद से रतिसुंदरी का नृत्य अत्यंत अद्‌भुत हो गया। इस नृत्य से रंभा को भी जीत ले तो फिर विजया की क्या बात? उस अवसर में देवी प्रभाव से स्तंभ में से दो मणी पुतलियाँ निकलकर वीणा बजाने वाली उस स्त्री के दोनों ओर चामर ढोलने लगी । उसे देखकर सभी विस्मित हुए । रतिसुंदरी ने सोचा 'देवी वचन सत्य हुआ । परंतु स्त्री मेरा पति कैसे होगी? क्या यह भी कोई माया है? या जो होगा वह स्वयं जाना जायगा। परंतु इसे अच्छी प्रकार ग्रहण करनी चाहिए । मेरे पास रखनी चाहिए। विजया ने पुष्प पर नृत्य किया । फिर रतिसुंदरी ने मकड़ी के जाल पर नृत्य करके दिखाया । तब जयारव हुआ । राजा भी बहुत हर्षित हुआ । आनंद में मग्न रतिमाला अपनी पुत्री को राजा के आदेश से उत्सवपूर्वक अपने महल में ले गयी। रतिसुंदरी ने आज्ञा दी उस वीणावादिका को बहुमानपूर्वक अपने महल में साथ ले आओ । दासी विजया को घर तक ले जाकर मुक्त कर दी। दासियों ने उस वीणावादिका को खोजी, पर कहीं न मिली, तब उसने प्रतिज्ञा की कि उसे देखे बिना मैं भोजन नहीं करूँगी । रतिमाला के बहुत कुछ समझाने पर भी भोजन के लिए सहमत न होने से राजा को समाचार भेजे। राजा ने उस नगर में चारों ओर उस नारी की खोज़ करवायी । परंतु तीन दिन में भी न मिली । फिर, जीवितव्य की संदिग्ध अवस्थावाली उसको जन मुख से सुनकर कृपालु और पूर्वभव के स्नेहानुराग से प्रेरित जयानंदकुमार उसको जीवित रखने की इच्छा से पूर्ववत् नारीरूप कर उसके घर के पास ठहरा । दासियाँ उसे देखकर आदरपूर्वक रतिसुंदरी के पास ले गयी । किसीने तो रतिसुंदरी को पहले जाकर बधाई भी दी । उसने भी उसे अलंकार भेट दिये। रतिसुंदरी उसे द्वार पर आयी

देखकर हर्ष स्नेह से आकुल होकर सामने गयी और पैरो पर गिरकर बोली "हे सखि! हे जीवनदायिनी! आज मेरे भाग्य जागृत हुए, जो तुमने कृपा की । तेरा स्वागत है । उसे गृह में ले जाकर रतिसुंदरी ने पलंग पर बिठाया फिर थोडी देर धर्मशास्त्र कलाशास्त्र आदि बातों से विनोद कर, फिर अपने हाथ से उसे स्नान वस्त्रालंकार पहनाकर उसे भोजन करवाकर स्वयं ने भोजन किया । फिर उसको प्रार्थनाकर अपने घर में उसे रहने के लिए राजी कर ली।'

वे नारियाँ धर्म-अर्थ-काम की शास्त्रवार्ता में अपना समय व्यतीत करती थी। रतिसुंदरी सामुद्रिक शास्त्र की ज्ञाता थी। वह बार-बार सोचती थी कि 'इसके सर्वांग पर जो चिह्न हैं, वे चक्री तुल्य राज्य लक्ष्मीवान् के हैं। फिर यह स्त्रीरूप में कैसे? गति-चेष्टा-स्वर आदि पुरुष के हैं। यह किसी कारण से स्त्री हुई है। ऐसा एक दिन निश्चित कर उससे बोली "स्वामिन्! देवी वचन से मैंने तुमको पूर्वभव का पति जाना है। जैसे कला स्नेह आदि अकृत्रिम बताये वैसे रूप भी अकृत्रिम बताओ । दयानिधे । मुझ पर कृपा करो।" इस प्रकार उसकी प्रार्थना से श्रीविलास ने पुरुष रूप प्रकट किया रतिसुंदरी भी कामदेव के समान रूप देखकर आनंदित होकर बोली "आज मेरे घर कल्पवृक्ष फला । देवताओं की पूजा के फल से आप का संगम हुआ।" जयानंदकुमार बोला "हे सुभगाक्षी! मेरा मनरूपी हंस तेरे प्रेमरूपी वाणी में क्रीड़ा कर रहा है। दासी मुख से रतिमाला ने सुनकर विविध प्रकार से उत्सव किया । दासीओं के द्वारा राजा को कहा गया कि हे राजन्! "आज देवी द्वारा कथित आपकी पुत्री का पति प्रकट हो गया।" राजा ने उन्हें यथेष्ठ दान देकर सर्व विवरण जानकर, उत्कंठापूर्वक प्रधान पुरुषों को उसे बुलाने भेजा । राजा के पास वह गया। उसका अद्भुत रूप देखकर, उसे नमस्कार करते देखकर, राजा ने उठकर उसको आलिंगन किया और बोला "आज हमारी घड़ियाँ फलवती हुई । जिससे आपके अनुत्तर रूप

के दर्शन हुए। 'हे सुभग! तेरा क्या स्वागत करे? तुझे कुलादिक का प्रश्न करना भी ठीक नहीं । क्योंकि देवी वचन विपरीत नहीं होता । जिस नगर को तूने जन्म से पवित्र किया है 'वह कौन सा नगर है, सत्य कहना।' तब कुमार ने कहा ''राजन्! विजय पुर का मैं निवासी देश देखने की इच्छा से घूमता हुआ इस नगरमें आया हूँ। फिर राजा ने उसके साथ भोजन किया । अवसर पाकर राजा ने कहा ''मेरी इस कन्या को ग्रहण कर।'' उसने कहा ''अज्ञातकुल वाले को कन्या कैसे दी जाय?'' राजा ने कहा ''देवी के वचन से तेरे गुण, प्रकृति आकृति से तेरे कुल को पहचान लिया है। अत: प्रार्थना का भंग करना उचित नहीं है।'' ऐसा सुनकर जयानंदकुमार मौन रहा। तब राजा ने शुभलग्न में रतिसुंदरी का उसके साथ विवाह किया । राजा गज-अश्व-रत्नादि देने लगा । पर उसने न लिये । तब राजा ने राज्य के लिए आग्रह किया । राजा के अत्याग्रह से आठ नगर ले लिये। वे भी अपनी पत्नी को दे दिये। पत्नी ने अपनी माता को दे दिये। अब जयानंदकुमार राजा के दिये हुए प्रासाद में नवोढ़ा के साथ पांच प्रकार के विषयों में आमोद प्रमोद पूर्वक वापी वनादि में क्रीड़ा करते हुए समय व्यतीत कर रहा था । प्रतिदिन पूजा पाठ करके ही भोजन करता था। अपनी पेटी में रही औषधि से पांचसौ रत्न प्रतिदिन प्राप्त करता था। पेटी की चाबी पत्नी को दे देता था । यथेष्ठ दानादि से वह पूरे नगर में प्रिय बन गया था। पत्नी भी पति पर पूर्ण भक्ति से रहती थी। रतिमाला कभी-कभी पुत्री के पास आती थी । और आठ नगर का आया द्रव्य पुत्री को दे देती थी । जामाता पर भी बहुत प्रमोद भाव रखती थी।

कुछ समय व्यतीत हुआ । रतिमाला सोचने लगी यह जामाता राजा का दिया धन नहीं लेता, स्वयं धनार्जन नहीं करता, अष्टनगर की आय भी नहीं लेता, और इतना दानादि में व्यय करता है तो धनार्जन का क्या मार्ग? एकबार रतिमाला के पूछने पर जयानंदकुमार ने कहा ''मेरे

पास पिता प्रदत्त और स्वार्जित प्रचुर धन हैं। परंतु वह जात की वेश्या थी। उस पर अश्रद्धा करके अपनी पुत्री से कहा "तू तेरे पति को धन कहाँ से आता है, पूछकर मुझे कहना । मुझे कौतुक है ?" पुत्री ने कहा माता! इस प्रश्न से हम को क्या लाभ ? क्योंकि वे सभी सुविधाएँ पूर्ण कर रहे हैं।" तब क्रूद्ध होकर उसने कहा "रे दुष्टा! कुक्षी में धारणकर तुझे बड़ी की और तू मेरा इतना सा कौतुक भी पूर्ण नहीं कर रही ?" तब सरल रतिसुंदरी ने दाक्षिण्यता से कहा "माते! मेरे पति गुप्तगृह में देवपूजा के समय जाते हैं। पूजाकर बहुत रत्न लाकर मुझे देते हैं। कुछ रत्न वे रखते हैं। उस गुप्तगृह की चाबी मुझे देते हैं। मैं उसे संभालकर रखती हूँ । इससे अधिक मैं नहीं जानती।" रतिमाला ने कहा "मुझे वह दिखा । पुत्री ने कहा" मैं जीवित हूँ तब तक तो यह नहीं होगा ।" "तो चाबी मुझे दे।" पुत्री ने कहा "मेरे जीते जी तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होगा । माँ तू नाराज हो या खुश, पति का विश्वास भंग मैं नहीं करूँगी क्योंकि मेरे प्राण पति को समर्पित हैं।" माया में प्रवीण रतिमाला उसका निश्चय जानकर गयी । फिर एकबार उसे भोजन में चन्द्रहास मदिरा पिलाकर बेहोश कर दिया, और चाबी लेकर औषधि ले ली । फिर चाबी जहां थी वहाँ लगा दी । रतिसुंदरी के जागने पर, शरीर पर चाबी को यथास्थान देखकर निःशंक रही । प्रातः जयानंदकुमार ने देवपूजा करके पूजने हेतु औषधि देखी, पर न मिली । पत्नी को पूछा उसने भी चकित होकर माता का सब वृत्तांत कहा और कहा कि मुझे भी माता पर शंका है । फिर जयानंदकुमार ने रतिमाला से पूछा तो उसने कहा "मैंने कभी चोरी की नहीं, और चोरी का नाम भी मैं नहीं जानती । हाँ अगर शंका है, तो तेरी पत्नी से पूछ! कुमार ने सोचा धिक्कार है इसको जो अपनी पुत्री पर सारा दोष डाल रही है । यह कुबुद्धि औषधि को उपाय के बिना नहीं देगी । अतः किसी उपाय से उस रत्नदा औषधि को लेकर इसे सजा दूंगा। ऐसा विचारकर कहा" "माता! अन्यत्र औषधि देखूंगा ।" जयानंदकुमार ने

दूसरे दिन देव पूजा के अवसर पर अपने संग्राहित रत्नों में से एक हजार उस पेटी में रखकर दूसरी औषधि की पूजाकर पांचसौ रत्न लेकर बाहर आया । रतिमाला ने औषधि से रत्न मांगे थे। पर विधि मालूम न होने से कुछ न मिला। वह छिपकर जयानंदकुमार की बात सुन रही थी । उसने सोचा 'मैं भूल से दूसरी औषधि ले आयी हूँ।' फिर कुमार ने अपनी पत्नी से कहा 'तू चाबी तेरी माँ की नजरों में आये वैसे रखना । फिर रतिमाला ने चाबी लेकर पहले की औषधि रखकर दूसरी ले ली। फिर उसके पास रत्नों की याचना की । परंतु साधना विधि के बिना वह न बोलती हैं न देती है। जयानंदकुमार ने सोचा यह औषधि आ गयी अब दूसरी तो सरलता से ले लूंगा । रतिमाला ने एकदिन जयानंदकुमार से पूछा "विज्ञान आदि कुछ जानते हो?" कुमार ने कहा "मैं अनेक औषधि जानता हूँ। सभी कला मंत्र-विज्ञान आदि जानता हूँ । उसमें एक मंत्र ऐसा है, जिसकी विधि वृद्धा और कुरूप स्त्री पूर्ण रूप से करे तो वह नवयौवना और सुरूपा हो जाती है। गणिका ने कहा" मुझे ऐसी बना दो । जिससे नृप द्वारा मान्य अन्य नारियों के गर्व को दूर कर दूं।" जयानंदकुमार ने कहा "तो प्रात: शिर मुंडवाकर, मुँह स्याही से पोतकर, उपवासकर के यह मंत्र जप।"रूड् बुडु बुडु बुडु बुडु स्वाहा" जब वह ऐसा कर शाम को उसके पास आयी तब जयानंदकुमार ने बाह्याडंबरकर औषधि के द्वारा उसे शूकरी बना दी । फिर सांकल द्वारा स्तंभ से बांधकर कहा "पापिनी! मेरी औषधि ग्रहणकर पुत्री पर दोष देती है। इसलिए चोरी का फल भोग।" उस प्रकार कहकर दंड से उसे पीटा। अब वह रोती है, और मूल स्वरूप में लाने की विनती करती है। दो दिन तक उसे उसी प्रकार रखी, फिर पत्नी के आग्रह से औषधि को वापस लेकर, पुन: चौर्य कर्म न करने की प्रतिज्ञा करवाकर, उसे मूल स्वरूप में ले आया । रतिमाला ने पुत्री और जामाता से क्षमायाचना की ।

एकबार कुमार ने कहा "माते! पूजनीय होने पर भी मैंने

तुम्हारी विड़ंबना की, इसलिए क्षमा करना । यह मैंने तुमको प्रतिबोध देने के लिए किया था । अदत्त ग्रहण का फल यहाँ ऐसा मिलता है। परभव में नरक, दौर्भाग्य, निर्धनता आदि फल प्राप्त होता हैं। और जो प्राण जाने पर भी अदत्त नहीं लेते, वे लक्ष्मीपूंज के समान लक्ष्मी और वैभव को पाते हैं।'' रतिमाला के पूछने पर लक्ष्मीपुंज की कथा कही ।

हस्तिपुर नगर में रूप, नाम और काम से पुरंदर राजा था और उसकी पौलोमी रानी थी। वहाँ दयालु, सद्गुरु सेवक, अर्हद् भक्त नाम जैसे गुणवाला सुधर्मासेठ रहता था । उसकी धन्या नामकी पत्नी थी। वह श्रेष्ठि लाभान्तराय कर्म के उदय से गरीब हो गया। फिर भी वह आवश्यक क्रिया व देवार्चन समय पर करता था। एकबार पत्नी ने स्वप्न में पद्म सरोवर देखा । पति से पूछने पर विचारकर पति ने कहा ''अति उत्तम पुन्य का धनी, अपार लक्ष्मीवान लावण्यनिधि पुत्र की तुम्हें प्राप्ति होगी। यह सुनकर वह भी खुश हुई। उसके पश्चात् गर्भ के प्रभाव से सौभाग्य और सद्बुद्धि में वृद्धि होने लगी। सेठ के घर से दारिद्र्य दूर होने लगा । व्यवसाय में लाभ होने लगा। गर्भ की वृद्धि के साथ सेठ का मान सन्मान भी बढ़ने लगा । समय पूर्ण होने पर शुभतिथि, शुभमुहूर्त में बालक का जन्म हुआ । माता को कोई पीड़ा न हुई। उस समय सेठ आंगन में गाय आदि पशुओं के स्थान पर था। दासी ने बधाई दी। उसे विपुलधन देने की इच्छावाला सेठ सोचने लगा। मेरे पास देने जितना धन नहीं है। तब वह भूमि खोदने लगा वहाँ नीचे एक बिल मिला। थोड़ा और खोदा तो पुत्र के पुन्यप्रभाव से नया सुवर्णद्रव्य देखा। सेठ ने दासी को यथेष्ट धन दिया। मेरा पुत्र उत्तम पुन्य का धनी है, ऐसा सोचा । फिर दस दिन तक पिता ने अनेक प्रकार से जन्मोत्सव मनाया । उस बिल में से धन निकालने लगा, पर उसमें कम तो होता ही नहीं था । दान देने में, खर्च करने में अपरिमित धन व्यय हो रहा था । सुधर्मा ने सोचा, पृथ्वी का द्रव्य

राजा का होता हैं। मैंने राजा को कुछ कहा नहीं है। कहीं कोई चुगली खोर राजा से कुछ कह दे, तो अनर्थ हो जाय। इससे अच्छा है, मैं ही राजा से सब कुछ कह दूँ।" इस प्रकार विचारकर सेठ ने राजा से सारी बातें बतायीं । राजा भी उसकी बातें सुनकर, उसे न्यायप्रिय और अदत्त परिहार व्रतयुक्त जानकर बोला "श्रेष्ठी! तेरे पुत्र के पुण्यप्रभाव से यह लक्ष्मी तुझे मिली है। अत: तू ही लक्ष्मी का स्वामी है। फिर भी तूने मुझे सारी बातें बतायीं हैं, यह तेरा विनय-विवेक है। अब मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तुम इस लक्ष्मी का उपभोग करो ।" सेठ अपने घर आया। शुभदिन पर स्वजन संबंधियों को एकत्रितकर भोजनादि करवाकर कहा कि "मेरे घर में इस बालक के जन्म के प्रभाव से लक्ष्मी अपार है। अत: इसका नाम लक्ष्मीपुंज हो। सबने स्वीकार किया । क्रमश: लक्ष्मीपुंजकुमार बड़ा हुआ। पढ़ने योग्य उम्र में पढ़ने भेजा । अल्पावधि में ७२ कलाओं में (पंडितों को साक्षी मात्र करके) प्रवीण हुआ । एकबार उद्यान में मुनि भगवंत के दर्शन वंदनकर उनसे विधिपूर्वक सम्यक्त्व ग्रहण किया । दृढ़ श्रावक हुआ। यौवनावस्था में लक्ष्मीपुंजकुमार के आने पर धनेश्वर आदि आठ श्रेष्ठियों ने रूपश्री आदि आठ कन्याओं का संबंध तय किया । शुभमुहूर्त में आठ कन्याओं से उसका पाणिग्रहण करवाया । पूर्व पुन्य के अनुभाव से चिन्तामुक्त होकर सेठ यथेष्ठ भोग सुख भोगने लगा। भोग भोगते हुए भी धर्माराधना में दत्त चित्त था ही। उसकी धर्मप्रियता के कारण उसका दास-दासी वर्ग भी धर्म प्रिय बन गया था। पूर्व पुन्यानुभाव से विपत्ति तो उसके घर से कोशों दूर थी। और संपत्ति स्वयं आकर विलास करती थी। दानादि में विपुल मात्रा में धनादि का व्यय करने पर भी, दिनोदिन लक्ष्मी वृद्धि को प्राप्त होती थी। उसकी पुन्यानुबंधी पुन्यवाली लक्ष्मी से अनेक वणिक् पुत्र सुखपूर्वक निर्वाह करनेवाले धनाढ्य बन गये थे । सुधर्मा श्रेष्ठि ने पुत्र के पुन्य को देखकर उसे गृह चिन्ता, व्यापार चिन्ता से दूर रखा । सुधर्मा व्यवसाय करते हुए भी धर्माराधना करता ही था । वह

आयुष्य पूर्णकर समाधिपूर्वक स्वर्गगामी हुआ । उसकी पत्नी भी कुछ दिनों बाद समाधिपूर्वक स्वर्गगामिनी हुई। लक्ष्मीपुंज अपने प्रधान पुरुषों पर संपूर्ण विश्वासकर भौतिक सुखों का उपभोग पूर्ववत् करता रहा ।''

एकबार प्रभात में धर्मजागरिका के समय विचार आया। 'मेरे जन्मदिन से लगाकर आज दिन तक लक्ष्मी अक्षय किस कारण से है। इतना विचार करते ही उसके सामने एक दिव्य देहधारी देव संशय मिटाने के लिए प्रकट हुआ । लक्ष्मीपुंज ने सोचा 'यह कोई दिव्य देहधारी है, देव है, दानव है, योगीन्द्र है या खेचरेन्द्र है? जो भी हो यह कोई गुणवान् है। अपने घर आये हुए शत्रु का भी स्वागत होना चाहिए, तो यह तो पूज्य है इस प्रकार विचारकर उसको हाथ जोड़कर बोला'' आप कौन है? किस कारण से और कहाँ से, आप यहाँ पधारें? इस प्रकार कुमार की विनयगर्भित वाणी सुनकर देव लक्ष्मीपुंजकुमार को नमस्कारकर बोला ''पूर्वजन्म के स्नेहतंतु से बंधा मैं सुरंग देव तेरी शंका का निवारण करने के लिए यहाँ आया हूँ । अब सावधान होकर सुन!''

''जंबूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में मध्यखंड में मणिपुर नामका नगर था । वहाँ श्रीपाल राजा राज्य करता था । धनाढ्य श्रेष्ठि धनपति नामका रहता था । उसकी प्रिया प्रीतिमती थी । उनका सुत्रामा नामक पुत्र कलाकुशल, यौवनास्था में आया। माता-पिता ने अनेक कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण करवाया । वह भौतिक भोगों का उपभोग एवं धनार्जन कर रहा था । एकबार मित्रों के साथ क्रीड़ा करते हुए उद्यान में गया, वहाँ चारण श्रमण मुनि को देखा । वंदना की । गुरु ने धर्माशीष देकर भद्रक प्रकृतिवाला जानकर विस्तार पूर्वक साधु धर्म और श्रावक धर्म अनेक उदाहरण पूर्वक समझाया । सुत्रामाकुमार ने भी उनकी वाणी से प्रतिबोधित होकर यथारुचि, सम्यक्त्व सहित व्रतों को ग्रहण किया । उसमें

विशेषकर अदत्तादान व्रत निरतिचार ग्रहण किया । उस समय गुरुदेव ने उसे उसका विशेष स्वरूप समझाया । दूसरे की स्वामित्व का पदार्थ तृण-मणि आदि न लेना । वह भी दोकरण, तीनयोग से, तीनकरण, तीनयोग से, लिया जाता है। जिसने जिस प्रकार नियम लिया, उसे उस प्रकार पूर्णरूप से पालन करना चाहिए । उसका पालन या न पालन शुभाशुभ फल दाता बनता है। गिरा हुआ, विस्मृत, लूटकर, खींचकर, रहा हुआ पदार्थ जो लेता है, वह नरकगामी बनता है, विविध वेदना भोगता है। जो विवेक चक्षुवाला है। वह तृणादि को भी ग्रहण नहीं करता । वह जगत में मान्य होता है, जो इस व्रत को निरतिचार पालन करता है, वह विश्व व्यापी यश प्राप्तकर क्रमशः मोक्ष को प्राप्त करता है। सुत्रामा ने उसी प्रकार व्रत पालन की दृढ़ता स्वीकारकर सभी मुनि भगवंतों को वंदनकर, अपने घर आया । निर्विघ्न रीति से धर्मादि तीनों वर्गो का परिपालन करता था। एकबार अपने भाग्य परीक्षा हेतु माता-पिता पत्नी आदि की अनुमति लेकर व्यापारार्थ क्रयाणकादि [बेचने जैसा माल-सामान] लेकर पृथ्वी प्रतिष्ठित नगर में आया । भेंट द्वारा राजा को संतुष्ट कर किराये का घर लेकर देव-गुरु की भक्तिपूर्वक व्यापार करने लगा। मीठी वाणी से अनेक वणिक् पुत्रों से मित्रताकर उन्हें धर्मोपदेश से पवित्र करने लगा। व्यवहार शुद्धि से अनेक लोग उससे आकर्षित हुए । व्यापार में लाभ भी बहुत हुआ । वह राजा का भी विश्वास पात्र हो गया । अदत्तादान के पांचों अतिचारों के वर्जन से वह लोगों का पूर्ण विश्वासभाजन हुआ था । पिता के बुलवाने पर, राजा की आज्ञा लेकर, सार्थ को आगे भेजकर, स्वयं घोड़े पर बैठकर चला । मित्रों को वापिस भेजकर वह अकेला आगे चला। थोड़ी दूर जाने पर, मार्ग में, उसे मणिमय कुंडल जोड़ी दिखायी दी। पर वह आगे चला । फिर कोस भर जाने के बाद मणिमय हार

भूमि पर किसी के गले में से टूटकर पड़ा हो, वैसा देखा । सुत्रामा उस पर से नजर हटाकर आगे बढ़ा। कोस भर और आगे गया तो वहाँ स्वर्ण महोरों से भरा हुआ, एक कलश भूमि में गड़ा हुआ, ऊपर से खुला दिखायी दिया । वह फिर भी नजरे हटाकर आगे बढ़ा और सोचा 'क्या बात हैं? आज ये चीजें किसकी गिरी हैं? यह कलश कैसे उपर तक आ गया है?' पुनः सोचा 'मुझे उससे क्या?' आगे बढ़ा। अश्व को थका देखकर नीचे उतरा तभी अश्व मूर्च्छित होकर गिरा और गिरते ही निश्चेष्ट हो गया । उसने सोचा यह अश्व मूर्च्छित हुआ या प्राण रहित हुआ। या किसी क्षुद्र देव ने अचेतन किया है?' इत्यादि क्षण भर विचारकर बोला "रे देव! मार्ग में उत्तम सहायक, स्वामीभक्त, चित्तप्रियकर, लक्षणवंत, तेजस्वी, जातिवान्, सर्वगुण संपन्न इस अश्व को अकाल में संहरणकर तूने क्या किया? फिर भी तूने जो किया, वह किया, मैं तो मेरे व्रतों को अक्षुण्ण रखूंगा । पुनः सोचा 'अश्व के बिना मार्गोल्लंघन विकट है। अतः कोई अश्व को जागृत कर दे, उसे प्रचुर धन दूंगा। ऐसा सोचकर इधर-उधर किसी वैद्य को खोज़ने लगा। पर उस घने जंगल में कौन मिले? फिर भी खोज़ने लगा। घूमने के कारण उसे प्यास लगी। वह पानी खोज़ने लगा। एकवृक्ष पर दृती (चमडे की थेली) जल से भरी हुई देखी। यह किसकी है? स्वामी कहाँ गया? वह दिखे, तो उससे याचना करूँ । ऐसा सोचकर इधर-उधर देख रहा था । तभी एक पक्षी ने आकर कहा (मानव भाषा में) "ए भाई! ऐसा लगता है कि तू प्यासा है। ऊपर यह दृति तुझे दीख रही है। तू मेरा अतिथि है, ऐसा पुण्यवान् अतिथि कभी-कभी ही मिलता है। अतः तू मेरी आज्ञा से यह जल ग्रहणकर, तृषा को शांतकर। तृषित व्यक्ति से धर्म-कर्म कुछ भी नहीं होता। सुत्रामा ने कहा "हे शुक! तू धर्मतत्त्व को नहीं जानता। तू इस जल का अधिपति नहीं

है। बिना स्वामी की अनुमति से लेना अदत्त है और अदत्त दुःख का कारण है। मैं द्वय लोक विरुद्ध यह कार्य कैसे करूँगा? अदत्त ग्राही के गुण, सुख, यश, लक्ष्मी, धर्म आदि कुछ नहीं होता। केवल दुर्गति होती है। यह जल तेरा नहीं है। अतः मैं प्राण जाने पर भी इस जल का उपयोग नहीं करूँगा । जल पान नहीं करने से एकबार मृत्यु होगी और व्रतभंग करने से अनेक भवों में मरण प्राप्त होगा।'' इस प्रकार सुत्रामा के वचन सुनकर वह पक्षी उड़ गया। थोड़ी देर में एक पुरुष, प्रकट हुआ । उसने सार्थवाह को नमस्कारकर कहा ''तू व्रत में दृढ़, सात्त्विक महापुरुष है, तुझे धन्य है।'' सार्थवाह ने कहा ''अन्य के गुण देखकर प्रमुदित होने वाले तुम भी गुणवान हो, आप कौन हो? किसलिए और कहाँ से यहाँ आये हो?''

उसने कहा 'सुनो ।'' इसी भरत के वैताढ्यपर्वत पर दक्षिण श्रेणि में विपुल पुरी नगरी है । उस नगरी में विशदाह्व, नामक विद्याधर और उसकी मणिमाला नामक प्रिया है उनका मैं सूर्य नामक पुत्र हूँ। उचित आयु में सभी कलाओं का और शास्त्रों का ज्ञाता हुआ । पिता प्रदत्त प्रज्ञप्ति प्रमुख विद्याओं को सिद्ध कर ली । उन विद्याओं के बल से मैं शैल वनादि में स्वेच्छा से विचरण करता विलास करने लगा। इधर मेरे पिता ने विमलाचार्य के पास धर्मोपदेश श्रवणकर चारित्र ले लिया । ग्रहण-आसेवन शिक्षा, तपश्चर्या, निरतिचार चारित्र पालन द्वारा गुरु की आराधना की । अनेक लब्धियों के स्वामी हुए । गुरु भगवंत ने उन्हें आचार्य पद दिया । चार ज्ञान के धारक हुए । पृथ्वी तल पर भव्यात्माओं को प्रतिबोध देते हुए विहार करने लगे । मैं घर में रहते हुआ पिता प्रदत्त राज्य का पालन करता हुआ किसी कुमित्र के संसर्ग से, चौर्यकर्म करने लगा । विद्या के बल से अनेक राजाओं के राजभंडार में से धन की चोरी करने लगा । क्रूरता भी आयी और अनेक दोष मुझ में निवास करने लगे । इस अवसर पर मेरे पिता विशदसूरि अनेक

साधुओं के साथ विपुलपुरी में आये । उद्यान पालक द्वारा प्राप्त समाचारों से मैं और अनेक लोग दर्शन-वंदन के लिए आये। त्रिप्रदक्षिणा देकर देशना श्रवणार्थ बैठे। देशना सुनी। बहुत सारे लोगों ने सम्यक्त्वादि व्रत नियम ग्रहण किये। सब के जाने के बाद उन्होंने मुझे धर्मोपदेश दिया । मैंने उनके पास अचौर्यव्रत को ग्रहण किया । व्रतपालन में दृढ़ता हेतु उन्होंने तेरा उदाहरण दिया । मैं सोचने लगा कि ऐसी उसकी कैसी दृढ़ता है। जिसकी ये साधु भी प्रशंसा करते हैं। इसी परीक्षा हेतु मैंने तुम्हारे मार्ग में मणि कुंडल, माला, कलश रखा। उससे पराङ्मुख देखकर, तुझे दुःखी करने के लिए मैंने तेरे अश्व को मृत बताया । जल पूर्ण दृति बतायी । पर तू दृढ़ रहा । गुरु ने जैसा कहा उससे तू अधिक दिखायी दिया। मैंने तुझे जो कष्ट दिया, इसके लिए क्षमायाचना करता हूँ। तेरी दृढ़ता से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ । तुम मुझ से कुछ लेकर मुझ पर कृपा करो। ऐसा कहकर पढ़ते ही सिद्ध हो जाय वैसी आकाशगामिनी विद्या एवं अन्य अनेक विद्याएँ-मंत्र-औषधि आदि देकर भक्तिपूर्वक बहुत धन देने लगा । तब सुत्रामा ने पूछा" यह धन किसका है ?" उसने कहा "पूर्व में तो मेरा और अन्यका था, अब तो मेरा ही है।" सुत्रामा ने कहा "हे खेचर! इस प्रकार एक ओर तो तू धर्मतत्त्व की बात करता है, और दूसरी ओर विपरीत बोलता है। चोरी से आये हुए धन से तेरा धन भी अशुद्ध हो गया, जैसे मद्य बिन्दु से सारा दूध । अगर चोरी से निवृत्त हुआ है, पिता से प्रतिबोधित हुआ है, धर्म प्राप्त किया है, स्वच्छधर्म में स्थित होने की इच्छा है, सद्गति में जाने के परिणाम है, तो यह सारा धन जिन-जिनका हो उनको लौटा दे। फिर पीछे रहा हुआ तेरा धन शुद्ध होगा । तेरी ख्याति भी बढ़ेगी । "इस प्रकार सार्थवाह की बात सुनकर परम प्रीति से देव ने उसके वचनानुसार कार्य किया । सार्थवाह की साक्षी से धर्म क्षेत्र में धन व्यय किया । दोनों स्वस्थान पर गये । सार्थवाह सुत्रामा आकाशगामिनी विद्या के

बल से शाश्वत चैत्यों की वंदना करते हुए, सप्त क्षेत्रों में धन व्यय करते हुए, सत्पात्रों का पोषण करते हुए, व्रतों का पूर्ण पालन करते हुए, अनेक प्रकार के धर्मकार्यकर आयुष्य पूर्णकर, हे लक्ष्मीपुंज तू यहाँ उत्पन्न हुआ है। और गुरु उपदेशित विशुद्ध धर्म का परिपालनकर मैं आयु पूर्णकर व्यंतरेन्द्र हुआ हूँ । तुम्हारे पूर्वभव के धर्म स्नेह से यहाँ आकर, तेरे घर में अक्षीण लक्ष्मी की निरन्तर वर्षा कर रहा हूँ । इस प्रकार व्यन्तरेन्द्र ने उसके संदेह को दूरकर दिव्य हार आदि देकर उसकी अनुमति लेकर अपने स्थान पर गया। इस प्रकार अपना पूर्वभव सुनकर सुत्रामा ने जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त किया । अर्हद् धर्म में दृढ़ धर्मश्रद्धा रखकर चारों प्रकार के धर्म में दत्तचित्त रहने लगा । फिर चारित्र ग्रहणकर एकादशांगी का अध्ययनकर, शुद्धचारित्र पालनकर अच्युत देवलोक में देव हुआ । बाईस सागरोपमका आयु पूर्णकर के राजा बनेगा । वहाँ चारित्र लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा । इस प्रकार लक्ष्मीपुंज का चरित्र श्रवणकर अदत्तादान की विरति ग्रहण करनी चाहिए । जयानंदकुमार के पास यह कथा सुनकर रतिमाला ने अदत्तादान की विरति ग्रहणकर ली । अन्य व्रत लेकर श्रावक धर्म ग्रहण किया । रतिसुंदरी के साथ कुमार सुखमय समय व्यतीत कर रहा था''

एकबार जयानंदकुमार ने प्रातःसमय स्वप्न में किसी पर्वत के पास किसी नगर के चौराहे पर अपने आप को काष्ट के बोझ सहित, कुरूपावस्था में भिल्ल सदृश देखा । जागृत हुआ और सोचा यह कैसा स्वप्न? इसका फल क्या? इतने में दक्षिण नेत्र स्फुरायमान हुआ। तब सोचा यह स्वप्न समीचीन और शुभ फल प्रद है।' ऐसा विचारकर एक बड़ा पट तैयारकर निपुणता से चित्रकार के पास जैसा देखा वैसा पर्वत, नगर, चतुष्पथ, आदि चित्रित करवाये । फिर उद्यान में ऋषभ देव के चैत्य के पास एक मनोहर दानशाला बनवायी और वहाँ वह 'पट' आने जानेवालों को बताने का अपने आदमियों को आदेश दिया।

और कहा "जो इस पट को स्थिर दृष्टि से निरीक्षण करे उसको मेरे पास भेजें।" सेवक उसकी आज्ञा अनुसार भोजनादि करवाते थे । आने जानेवाले मनोहर चित्रशाला, दानशाला, भोजनशाला की प्रशंसा करने लगे । एक बार दूर से आये हुए धूल सन्ने वस्त्रवाले पथिकों ने उस पट को देखकर कहा "हमारा नगर किसी विज्ञान वेत्ता ने पूर्ण रूप से चित्रित किया है।" पट के रक्षकों ने पूछा "आप कहाँ से आये हैं?" उन्होंने कहा "पद्मपुर से ।' उनको वे नौकर जयानंदकुमार के पास ले गये । कुमार ने उनको संतुष्टकर पूछा, तो उन्होंने कहा "हमारे नगर से पद्मपुर नगर सौ योजन है, उसके पास में पद्मकुट नगर है, जो इस चित्र में चित्रित है। वहाँ पद्मरथ राजा राज्य करता है । सभी उज्ज्वल गुण होते हुए भी कर्म के वश से उस पर नास्तिकता का कलंक है।" इत्यादि बातें सुनकर उनको उचित पुरस्कार देकर भेज दिया। एकबार उस नगर में जाने का विचारकर रतिसुंदरी से कहा "मैं तीर्थयात्रा कर लौटूँ, तब तक तुम माता के पास कलाभ्यास करते हुए समय पूर्ण करना, और अष्ट नगर से उत्पन्न आय से दानादि धर्म कार्य करना ।" उसे सुनकर रतिसुंदरी ने विषाद पूर्ण हृदय से पति आज्ञा को मान्य की। कुमार रात को पल्यंक पर बैठकर पद्मकूट पर्वत पर आया । वहाँ पल्यंक को छूपाकर, भिल्ल का रूप बनाकर, काष्ठका भारा उठाकर, पद्मपुर में प्रवेशकर, चतुष्पथ पर काष्ठ बेचने बैठा । तभी कुछ राजपुरुष वहाँ आये । उन्होंने उस कुरूप को कहा "अय, तुझे राजा बुला रहे है, राज सभा में आ। भिल्ल ने कहा "कहाँ राजा? कहाँ मैं? मेरा राज सभा में क्या काम है? आप को काष्ट से काम हो तो ले लो और मुझे जाने दो।" उन्होंने कहा-"भद्र! डर मत। तेरा ही प्रयोजन है? तू आ । राजा तुझ पर प्रसन्न होगा। वह उनके साथ गया। उन्होंने उसे वहाँ ले जाकर राजा के सामने खड़ा किया । वह भी काष्ठ का भारा राजा के सामने भेंट रूप में रखकर खड़ा रहा । राजा ने पूछा" "तू

कौन है? तेरा नाम क्या है? कहाँ रहता है?'' उसने कहा ''पिठर नामका भिल्ल घर के अभाव में पद्मकर पर्वत की गुफा में रहता हूँ। आपके नगर में काष्ठ बेचने के लिए रोजाना आ रहा हूँ। ''राजा ने कहा'' क्या मेरे नगर में भी तू दुःखी है? मेरे नगर निवासी का मैं दुःख सहन नहीं कर सकता।'' उसने कहा ''स्वर्ग के समान आप के नगर में मैं मेरे कर्मों से दुःखी हूँ। जल से भरे तालाब में भी चातक पक्षी तृषा से पीड़ित रहता है।'' राजा ने कहा ''जो इच्छा हो, सो मांग!'' वह बोला ''काष्ठ बेचकर उदर पूर्ति करता हूँ। भाग्य से अधिक पुरुषों के पास धन नहीं रहता, जैसे चातक के द्वारा पिया पानी भी गले के छिद्र से निकल जाता है। इसलिए हे राजन्! आपके तुष्ट होने पर भी मैं धनादि की याचना नहीं करता । परंतु धान्य रांधनेवाली नहीं है। इसलिए मुझ जैसी एक कन्या हो तो दो। राजा ने कहा देता हूँ। फिर विजयसुंदरी को बुलाकर कहा ''हे पुत्री! यदि तू जैनधर्म से सुख को मानती है और वही तेरा सर्वस्व है, तो इस भिल्ल को पति रूप में स्वीकार कर। अगर तू धर्म से ही सुख मानती है तो उस सुखद धर्म में स्थित रहने से हम को भी सुख मिलेगा ।'' ऐसा सुनकर कन्या बोली ''जो आदेश पिता दे उसी का मैं पालन करूँगी, और यही कुलीन कन्या का धर्म है। फिर उस कुरूप पुरुष को देखकर भी पूर्वभव के स्नेह के जागृत होने से उस पर वह स्नेहवाली हुई। वह भी उसी प्रकार स्नेहवान हुआ । कन्या ने शीघ्र उसका हाथ पकड़ा। उस समय तमासा देखने आये लोगों में से एक ज्योतिषी ने कुंडली बनायी तो वह आश्चर्य चकित हो गया। इस मुहूर्त का विवाहित वर चक्री और वधू राणी बनें ,पर यह विपरीत दीख रहा है। पुत्री के इस साहस से क्रोधित राजा ने सैनिकों को आदेश दिया कि 'इस वधू को वरराजा के अनुरूप वेष पहनाओ। कथीर के आभूषण पहनाओ ।' कन्या ने भी वैसा ही किया । भिल्ल ने कहा ''राजन्! आपकी पुत्री के योग्य मैं नहीं हूँ। गधे के

गले में मणि की माला नहीं शोभती। मुझे काणी-कुब्जी, काली कोई दासी दे दो क्योंकि काक की प्रिया काकी होती है, हंसी नहीं। यह संपूर्ण चंद्रमुखी, कमलनयना, सर्वांग सुंदर, लावण्य रस कूपिका, राजहंस गतिवाली, मधुरध्वनिवाली, ६४ कलाओं में प्रवीण, अपने रूप से रति-प्रीति रंभा आदि को भी मात करनेवाली आपकी कन्या कहाँ और मैं कहाँ? मैं दुर्भग, काष्टभारवाहक, निर्लक्षण-शिरोमणि, कुरूपवान् पुरुष? अत: आप पुन: विचारें ।'' इधर लोकों में भी हाहाकार हो रहा था । मंत्रियों ने भी कहा ''हे राजन्! दुर्विनीत पुत्री पर भी आपका इतना क्रोध उचित नहीं है। आप मालिक हैं। आपको यह धर्म विरुद्ध और लोक विरुद्ध कार्य हितकर नहीं होगा।'' राजा ने कहा ''इसमें स्वल्प भी मेरा दोष नहीं। इस भिल्ल को इस जैन धर्मिणी ने स्वयं वरा है। राजाओं में तो रीति है कन्या स्वयंवरा होती है। पिता साक्षी मात्र होता है।'' तब राजा ने भिल्ल से कहा ''हे भिल्ल! मेरा कहा अन्यथा नहीं होता। यह सर्वकलाओं की ज्ञाता भाग्य सुख को भोगे।'' पुत्री को भी राजा ने कहा-''हे पंड़ितमानिनी । इस स्वयं वरे हुए भिल्लपति की सेवा करती हुई, पिता की अवज्ञा, कुलाचार की अवज्ञा, अविनयादिका फल भोगना । अर्हत् धर्म के फल को भोगना।'' तब पुत्री ने कहा ''हे तात। इस कार्य में आपका दोष नहीं है। सुख दु:ख का कर्ता कर्म के अलावा कोई नहीं है। मैं पिता की आज्ञाकारिणी आपके कुल को उज्ज्वल ही करूँगी। कारण कि पिता का दिया हुआ कैसा भी कुरूप पति की देव समान सेवा करनी कुलीन स्त्री का कर्तव्य है।'' उसके ऐसे वचन से अग्नि में घी सदृश राजा का क्रोध और प्रज्ज्वलित हुआ । फिर दोनों को भोजन करवाया और भोजन के बाद अपनी पुत्री को नयन घातक विष मिश्रित ताम्बूल दिया। भिल्ल को शुद्ध तांबूल दिया । फिर भूपति ने कहा ''वधू सहित तू अपने स्थान पर जा।'' भिल्ल भी राजाज्ञा लेकर नृपपुत्री सहित स्वस्थान गया । वह राजपुत्री भी छाया के समान

उसके पीछे चल रही थी । फिर राजा ने आदेश जारी किया। 'जो कोई इन दोनों की सहायता करेगा वह मेरे द्वारा चौरवत् वध्य होगा ।' क्रोधित राजा के भय से मंत्री आदि दूर हो गये। भिल्ल देवकुल में जाकर ठहरा। वहाँ वह सती विजया पति के पैर अपने गोद में लेकर दबाने लगी। भूप के भय से उसको देखने के लिए आये लोगों ने दूर से उसकी इस क्रिया से अत्यंत प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करने लगे । वे राजा की निंदा करने लगे ।

भिल्ल ने पूछा "हे भद्रे! देवांगना समान रूप-गुण-शील युक्त तुझे सब से नीच ऐसे मुझको क्यों दी?" उसने कहा "स्वामिन्! यह कथा इस प्रकार है। आप सुनो ।"

"इस पद्मपुर नगर में पद्मरथ राजा राज्य करता है। उसकी दो पत्नियाँ हैं। एक पद्मा और दूसरी कमला। राजा कुलक्रमागत कौलधर्म (नास्तिक) मानता है। प्रथम पद्मा पति का धर्म करती है। पद्मा को पद्मदत्त विनयादि गुणयुक्त पुत्र और सुरूपा जयसुंदरी पुत्री है। कमला को विजयासुंदरी पुत्री है। अपने-अपने धर्म की भावनानुसार दोनों माताओं ने अपनी संतानों को अध्ययन करवाया। दो पुत्रियाँ चौसठ कलाओं में प्रवीण हूई। पंडितों ने और माताओं ने अपनी पुत्रियों की परीक्षा हेतु, एवं उत्तम पति हेतु पिता के पास भेजीं। राजा ने उनकी परीक्षा ली। सभी प्रकार से वे परीक्षा में सफल हुई फिर पिताजी ने एक समस्या पूछी।

"पिक्खइ सुक्खसयाइं" इसके तीन पाद की पूर्ति करो ।

तब जय सुंदरीबोली ।

त्वं शङ्करस्त्वं ब्रह्मेव त्वं पुरुषोत्तमस्तात!
प्रेक्षते सौख्यशतानि । तव प्रसादेन सर्वप्रजा,
हे राजन्! तू शंकर है, तू ही ब्रह्मा है, तू ही पुरुषोत्तम है ।
तेरी कृपा से सर्वप्रजा सौख्य को भोगती है ।"

इस प्रकार के प्रिय वचन सुनकर, राजा, सभासद और

पाठक सभी आनंदित हुए और कन्या की प्रशंसा की । उस समय विजया के चहेरे पर हास्य भर आया । उसके हास्य को देखकर राजा ने कारण पूछा उसने कहा "कुछ नहीं।" पिता के आग्रह करने पर उसने कहा "हे पिता! नीति आदि शास्त्रज्ञ और बुद्धि से देवों को भी जीतने वाले आप जैसे विद्वान मेरे बहिन के सुहाने वचनों से प्रमुदित हुए, तब मुझे क्या कहना है? तत्त्व से पराङ्मुख सभासद भी प्रशंसा करते हैं, ऐसा असंमंजस देखकर मुझे हंसी आ गयी । राजा ने कहा "तो तत्त्व उक्ति द्वारा समस्या पूर्ण करो।" उसने भी पितु आज्ञा को मानकर जैन पंडित से पाए हुए तत्त्व से बोली ।

"जिनवरो यस्य हृदये वसेत्, जिनमुनिर्जिन तत्त्वानि ।
स पंडित जन उभयभवे, प्रेक्षते सौख्यशतानि ।

जिसके हृदय में जिनवर, जिनमुनि, जिनधर्म का वास है वह पंडितजन इह-पर दोनों भवों में सैकड़ों सुखों को पाता हैं।।"

ऐसा सुनकर उसका पंडित और बुद्धिमान् सभासद खुश हुये, पर राजा के भय से मौन रहे । फिर राजा ने सभासदों से पूछा "समस्या पूर्ति किसने सुंदर की ।" तब राजा के अनुकूल होने के कारण उन्होंने कहा "जयसुंदरी ने समस्या की पूर्ति सुंदर की।" राजा ने विजया से कहा ए कुत्सित भाषिणी सभासदों के विरुद्ध क्यों बोल रही है? उसने कहा मैंने पहले ही कहा था कि प्राय: करके लोक तत्त्व से पराङ्मुख हैं, इस भव सुखार्थ वे सभी चाटुकर वचन बोलते हैं। फिर अपनी अवज्ञा और धर्मपक्षपात से क्रुद्ध हुआ राजा बोला "ए! तू किसकी कृपा से सुखी है?" वह बोली "हे तात! मैं और सभी लोग स्व-स्व कर्मानुसार सुख दु:ख को पाते हैं। अगर आपके प्रसाद से सुख पाते हो तो फिर कोई दु:खी क्यों?" इन वचनों से अधिक क्रोधित हुआ राजा बोला "तो तू पति कैसे करेगी?" उसने कहा "आप द्वारा दिया हुआ ।" राजा ने कहा "हे

अधम! यहाँ मेरा प्रभाव क्यों? उसने कहा "आप भी मेरे कर्मानुसार ही देंगे ।" क्रोधित राजा ने कहा । "जा अपने स्थान पर जा । योग्य वर मिलने पर तुझे बुलाऊँ, तब आ जाना ।" उस विनीत पुत्री ने कहा "जैसी आपकी आज्ञा ।" वह अपने स्थान पर गयी। फिर राजा ने अपने सेवको से कहा "नगर में घूमकर कोई गरीब से गरीब, कुरूप से कुरूप पुरुष को ले आओ ।" वे आपको ले आये। और मैं विजयासुंदरी आपको दी गयी। उसके आगे आप जानते ही हैं। ऐसा सुनकर भिल्ल विस्मित होकर बोला "अपनी ही पुत्री पर पिता का इतना क्रोध क्यों?" विश्वपावन जैनधर्म के बिना संपूर्ण विवेक कहाँ? भिल्ल ने सोचा । स्नेह और शील की परीक्षा कर फिर प्रीति करूँगा ।' यही विवेकी पुरुषों की रीति है।" इधर राजा द्वारा प्रदत्त तांबूल से विष का प्रभाव फैला और तीव्र वेदना होने लगी । उसने पति से कहा "स्वामिन्! राजा के पास ऐसा विष है, जो पान में खिलाने पर तीन प्रहर के बाद उसकी आँखे चली जाती हैं। राजा ने यह विष मुझे तांबूल में दिया है। उसकी उस समय की चेष्टा से ही मैं जान गयी थी। परंतु शुभाशुभ कर्म से शुभाशुभ बुद्धि उत्पन्न होती है। इसके प्रभाव से मेरी आँखों में वेदना हो रही हैं। मुझे लगता है । मेरी आंखे चली जायगी । धिक्कार है मेरे जीवन को। आपकी सेवा के मेरे मनोरथ कैसे पूर्ण होंगे? अब मुझे दिखायी नहीं देता । मैं तुम्हारे लिए भार रूप हो गयी हूँ। आँखों के बिना जीवन कैसा? वह जोर-जोर से रोने लगी।" पूर्वभव के मंत्री पत्नी के भव में 'इस अंध को भिल्ल को दे दिया जाय' ऐसा मुनिराज को सुनाया था । उस कर्म के पश्चात्ताप के बाद भी अल्पांशकर्म शेष था । वह उदय में आया और आँखे गयीं ।

उसकी हालत को जानने के लिए राजा ने गुप्तचर भेजे थे । उन्होंने राजा को सारे समाचार दिये। राजा खुश हुआ । क्योंकि पापियों

को पाप का पश्चाताप दुर्लभ हैं । इधर राजा के द्वारा कमला रानी को कहीं बाहर भेज दिया गया था? वह जब घर आयी और उसे अपनी पुत्री की कथा मालूम हुई तो वह मूर्छित हो गयी । दासी द्वारा उपाय करने पर वह होश में आयी । फिर दो दासियों को लेकर गुप्तरूप से जहाँ पुत्री थी वहाँ आयी । दूर से पुत्री की अवस्था देखकर क्रोधित हुई वह राजा के पास आयी । राजा से कहने लगी। "हे दुर्मति! सर्वविरुद्ध अकृत्य करनेवाले तुझे धिक्कार है। अपनी संतान को इस प्रकार की सजा चंडाल भी नहीं देगा । मेरी पुत्री को विडंबित क्यों की?" उसको अंधी क्यों बनायी? मैं तो तेरे सामने इस छुरी को पेट में मारकर मर जाऊँगी ।" उसने छुरी निकाली तभी राजा ने उसके हाथ में से शीघ्रता से छुरी छीन ली। राजा पश्चातापपूर्वक बोला "हे सुन्दरी! सुन, मैंने क्रोध में आकर यह कृत्य कर लिया है। अब मंत्री प्रजा, और तेरे द्वारा किये हुए धिक्कारी वचनरूपी ताड़ना से अधिक पश्चातापवाला हुआ हूँ अब प्रात: उसे खोज़कर आदरपूर्वक लाकर, दूसरी औषधि से आँखें ठीककर किसी राज पुत्र से उसका विवाह उत्तम रीति से करूँगा । क्योंकि क्रोध से किये हुए कार्य की कोई गिनती नहीं होती।" इस प्रकार राजा द्वारा आश्वस्त़ रानी ने कष्टपूर्वक रात बितायी ।

इधर विजया अनेक प्रकार से विलाप करती हुई अपने किए हुए कर्मों की निन्दा करने लगी।

क्या मैंने जिनेश्वर की विराधना की, जितेन्द्रिय गुरु की गर्हा की, संघ की अवहेलना की, जिससे अतिदु:खभाजन हुई? हे पिता! जन्म से मुझे क्यों पाला पोसा? हे माता! मैं शैशव काल में ही मर क्यों न गयी ? पूर्वकृत कुकर्मों के कारण सुख एवं धर्म से वर्जित इस दशा को मैं प्राप्त हुई। महा बलवान् ऐसे राजा महाराजाओं को दु:खी करके भी तू तृप्त न हुआ । जिससे मुझ जैसी अबला की हे देव! तूने इस प्रकार विडंबना की। इस प्रकार प्रिया को विलाप करती देखकर

कृपालु भिल्ल ने गिरिमालिनी, प्रदत्त औषधि से उसे सुंदर नयन वाली बना दी। दिव्य नेत्रवाली होने से वह बोली "हे प्रिय! इस कार्य से आप महाप्रभावशाली हो गये हैं । ऐसा कार्य देवताओं से भी दु:साध्य है। आपने मुझे आजन्म सेवा में समर्थ कर दी। भिल्ल बोला "हे मृगाक्षी! औषधि लक्षण ज्ञाता वृद्धशबरवैद्य से यथाविधि औषधि ग्रहण की थी। आज इसका सुंदर उपयोग हुआ । मैं दरिद्र, कुरूप-कुल-जाति, गुण हीन, मेरे साथ तेरा संयोग विपरीत है। मैं तुझे कैसे दु:खी करूँ? मैं तेरा जन्म व्यर्थ बिगाड़कर पापोपार्जन क्यों करूँ? हे सुकुमारी। तू सूर्य की किरणों से भी अस्पर्शित काष्ठभार को कैसे उठायगी। हे भद्र! तू पिता के पास जा । उनका रोष शांत हो गया होगा। अपनों पर पिता का रोष क्षण भर रहता है। वे तुझे क्षमाकर किसी राजकुमार से तेरी शादी कर देंगे । हस्त ग्रहण मात्र से परिणित मुझे मेरी आज्ञा से छोड़ने में कोई दोष नहीं है। अत: आ मैं तुझे गुप्त रूप से राजमहल में छोड़ आता हूँ। जन रहित मार्ग से किसी के न देखने से लज्जा का कोई प्रश्न नहीं? और मैं अपने स्थान पर जाऊँगा । कोई नहीं जानेगा ।" ऐसा सुनकर दु:खी होकर वह बोली । "प्राणनाथ! वज्राघात समान आप ऐसा क्यों बोलते हैं? कन्या एकबार दी जाती है। सती स्त्री असतीत्व सूचक वचन सुनत्री भी नहीं। और कुलीन कन्या पिता प्रदत्त पति को प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ती । जैसे भी हो वैसे इस जन्म में आप ही मेरे पति हैं। आप से बिछड़ने से यम या संयम ही शरण है।" इस प्रकार उसके शील और स्नेह की दृढ़ता देखकर बोला "हे भद्रे! यदि ऐसा है तो तेरे माता की आशीष और कुल देवता की कृपा फलवती हुई है। मैंने किसी कारण से भिल्ल का रूप किया हैं। अब मैं तुझे मेरा असली रूप बताता हूँ, उसे देख ।" फिर उसने अपना असली रूप किया। जिसे देखकर देवियाँ भी मोहित हो जाय, तो विजया का क्या कहना? उसे देखकर हर्ष से गद्‌गद् स्वर से वह बोली "हे प्रिय!

यह क्या नाटक है, जो आप मुझे अनेक रूप कर के मोहित कर रहे है?'' कुमार ने कहा ''हे प्रिये! मैं क्षत्रिय पुत्र हूँ । कला-विज्ञान विद्याएँ ग्रहण हेतु एवं कौतुक से विविध देशों में भ्रमण करते हुए कहीं कला समूह का अध्ययन किया और पृथ्वी पर घूमते हुए अनेक औषधियाँ भी प्राप्त की । आराधित देव-प्रदत्त आकाशगामिनी पल्यंक से पर्वत पुर आदि में घूमते हुए रत्नपुर में आया । वहाँ रतिसुंदरी से विवाह किया । वहाँ रहते हुए मैंने रात को एक स्वप्न देखा। उसको विफल करने और भाग्य की परीक्षा करने के लिए ऐसा रूप बनाकर यहाँ आया ।'' सारा विवरण सुनकर अत्यंत आनंदित वह बोली ''ज्ञानी के वचन सत्य सिद्ध हुए। एकबार मैं ज्ञान निधि गुरु की देशना सुनने माता के साथ गयी थी । देशनान्ते मेरी माता ने पूछा था ''हे भगवन्! किस कर्म के उदय से मुझे नास्तिक पति मिला। मैं और मेरी पुत्री जैन धर्म का पालन करते हैं। इस पुत्री पर इसके पिता का स्नेह कम है, तो इसका पति कौन होगा?'' मुनि ने कहा ''तेरी पुत्री धर्मशील है। सद्लक्षणवाली है। इसका पति अर्धभरत का स्वामी होगा । यह महारानी होगी। माता ने पूछा ''वह कैसे मिलेगा?'' मुनि ने कहा ''इस उद्यान में ऋषभ प्रभु का चैत्य है वहाँ चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमा है। तू उसकी अर्चना कर । उससे संतुष्ट देवी इसके लिए उचित वर चुनेगी ।'' ऐसे वचन सुनकर हर्षित माता मुनि भगवंत को नमस्कारकर घर आयी । उसदिन से मेरी माता ने देवी की उपासना की । मैं ऐसा मानती हूँ, कि मैंरे भाग्य से प्रेरित देवी ने ही आपको स्वप्न दिखाया हैं। और आप यहाँ पधारें। फिर कुमार बोला ''जैनधर्म के प्रभाव से अपना कार्य सफल हुआ । वैसे आगे भी सफल होगा। अब किसीको बिना सूचना दिये हम चले जायँ, क्योंकि तेरे पिता को सजा दिये बिना मेरा परिचय नहीं देना है। अपराध के बिना सजा भी उचित नहीं। अब स्पष्ट कोई अपराध भी नहीं दिखता । अत: अवसर पाकर अधिक सजा दूंगा,

और जैनधर्मी भी बनाऊँगा । सज्जनों के लिए उपकार करना ही परम कृत्य है। धर्मदान से अधिक परमोपकार अन्य नहीं है। हे प्रिये! "इस विघ्न निवारण औषधि को अपने पास रख, निर्भय होकर क्षण भर यहाँ ठहर। मैं छुपाया हुआ पल्यंक, आभरण, वस्त्रादि लेकर आता हूँ ।" उसके 'हाँ' कहने पर उसे वह औषधि देकर कुमार गया। पल्यंकादि सामग्री ले आया । स्वाभाविक रूप से नगर में जाकर एक श्रेष्ठि की दुकान खुलवाकर, दुगुना मूल्य देकर, नये वस्त्र अलंकार आदि मांगे। उसने भी अपनी पुत्रवधू के लिए बनाये नये अलंकारादि उसे दुगुने मूल्य लेकर दे दिये। वह सब लेकर कुमार देव मंदिर में आया । फिर प्रिया को वस्त्रालंकारादि पहनने को दिये । उसने हर्ष से पहने। शेष रात पल्यंक पर व्यतीत की । ब्राह्म मुहूर्त में उठ्कर पत्नि ने पूछा "अब कहाँ जायेंगे?" उसने कहा "जहाँ तेरी इच्छा हो। तू कहे तो रत्नपुर में मेरी पत्नी रतिसुंदरी है, उसके पास जायँ।" उसने कहा "प्रिय! परोपकार प्रवीण आप से मैं एक विनति करना चाहती हूँ । सुनो । कमलपुर में कमलप्रभ राजा है। वह मेरे मामा हैं। उसकी प्रीतिमति और भोगवती दो पत्नियाँ हैं। प्रथमा का पुत्र जयसूर रोगी, क्रूर, दुर्भागी और दुर्विनीत है। द्वितीया का पुत्र विजयसूर गुणी रूपवान् विनयवान, दाता और शूर है। द्वितीया की एक गुण, रूप शीलयुक्त कमलसुंदरी पुत्री है। राजा ने एकबार नैमित्तिक से पूछा राज्य योग्य कौनसा पुत्र है।" उसने विजयसूर का नाम बताया । राजा हर्षित हुआ। यह बात प्रीतिमति ने सुनी । अपने पुत्र को राज्य न मिले तो उसे भी न मिले ऐसे अनेक कुविकल्पकर, उसने एक कापालिनी के पास हाथ पैर स्तंभित करे, ऐसा चूर्ण, प्राप्त किया। भोगवती को विश्वास में लेकर उसे अपने घर पुत्र-पुत्री सहित भोजन के लिए निमंत्रित किया। विजयसूर को वह चूर्ण जयसुंदरी ने भोजन में दे दिया । उस चूर्ण के प्रभाव से धीरे-धीरे उसके हाथ पैर स्तंभित हो गये। अब वह हाथ पैर से कुछ

नहीं कर सकता है । वैद्यों ने अनेक उपचार किये, पर सब व्यर्थ। सब प्रीतिमति पर शंका करने लगे । उसके वहाँ भोजन के बाद ऐसा हुआ है। एक नैमित्तिक से पूछा । उसने कहा ''एक नारी के द्वारा यह दुष्ट चूर्ण प्रयोग किया गया है। दिव्य औषधि के प्रभाव से ही निरोग होगा । दूसरी औषधियाँ निष्फल हैं। दासी द्वारा प्रीतिमति और कपालिनी के संग का वर्णन जाना । कपालिनी को बुलायी। ताड़ना दी । उसने 'रानी के द्वारा कहने पर मैंने उसे चूर्ण दिया' ऐसा कहा । राजा ने रानी को तिरस्कृतकर निकाल दिया । वह अपने पिता के घर चली गयी, वहाँ भी लोकों के द्वारा तिरस्कृत होकर अपमान रूपी कटुफल भोग रही है। घोर पाप का इसलोक और परलोक में कटुफल भोगना ही पड़ता है। दुर्बुद्धि व्यक्ति धन-भोग, सामग्री आदि के लिए पापकार्य करता है। धनादि मिले या न मिले, पर इस लोक या परलोक में निश्चय से कटुफल तो मिलता ही है। राजा प्रजा सभी परस्पर कहते हैं-'धिक्कार है ऐसे कृत्य करनेवाली स्त्री को।' राजा अपने नगर में एक पटह बजा रहा है। कि जो कोई व्यक्ति मेरे पुत्र को रोग मुक्त करेगा उसे एक देश के साथ कमलसुंदरी पुत्री का विवाह करूँगा। एकबार प्रेम से मामा के बुलाने पर माँ के साथ मैं वहाँ गयी थी वहाँ मैंने यह सारी बांतें जानी थी। कमलसुंदरी मेरे साथ एक पति की इच्छा करती थी । पर अब वह भाई के दु:ख के कारण पिता से कुछ कह नहीं सकती । परंतु हे स्वामिन्! आपका आश्चर्यकारी प्रभाव देखकर मुझे लगता है, आप मेरे भाई को निरोग कर सकोगे । आप कल्पवृक्ष के समान इच्छित देने में समर्थ हैं। एक तो परोपकार होगा। दूसरा धर्मशील कुमार सुखी होगा । राजा प्रजा सुखी होगी। कमलसुंदरी की इच्छा भी पूर्ण होगी। अत: आप कमलपुर की ओर प्रयाण करें।'' पत्नी की बात सुनकर कुमार ने पत्नी सहित उस पल्यंक को कमलपुर जाने का आदेश दिया । कमलपुर के बाहर आये। पल्यंक को छुपा दिया। उसने स्वयं का शबर का रूप

बनाया, विजया को शबरी बनायी दोनों का रूप दर्शनीय बनाया। फिर औषधियों का थैला बनाकर नगर में चला । एक सेठ के पास का खाली मकान किराये पर माँगा । उसने अशुचि का कारण बताकर मना किया । तब शबर ने आधा लाख मूल्य का रत्न किराये का देने लगा। तब सेठ ने सोचा 'यह तो कुबेर जैसा धनी दीखता है।' उसने कहा "आप खुशी से रहो। शुचि-अशुचि गुणों से संबंधित हैं। इस मनोहर चित्रशाला सहित पूरा महल आपका है। वह प्रिया सहित उस चित्रशाला में रहा। सेठ ने गृहोपयोगी सारी व्यवस्था सुलभ करा दी। वह वहाँ पत्नी के साथ सुखोपभोग करता रहा, दिव्यौषधि के द्वारा अनेक लोगों को रोग मुक्त करने लगा । वह कुछ लेता नहीं था । कभी-कभी पत्नी सहित किसी नाटक मंडली का नाटक देखता, तो कभी नृत्यांगनाओं का नाच देखता, कभी गायकों के गायन सुनता, और उन्हें यथेष्ट पुरस्कार देता था । कृतज्ञ लोकों ने उसे 'शबर वैश्रवण। नाम से पुकारना प्रारंभ किया। एकबार नगर के बाहर जयानंदकुमार ने आर्यवेदों को पढ़ानेवाले एक पंडित को देखा । शबर के रूप में वेदाध्ययन नहीं करायेंगे, इस कारण उसने वणिक को किराये के अलावा और धनादि देकर खुश किया । वहाँ से नगर बाहर जाकर एक विप्र का रूप बनाकर पत्नी सहित नगर में आया । दूसरा घर किराये से लेकर रत्न दान से गृहपति को खुश करने लगा । दास-दासी की परीक्षाकर उनको भी अपने घर में रखा। फिर उपाध्याय के पास गया। उनको भी रत्न भेट में रखकर उनके पास अध्ययन करने लगा। अल्पावधि में सारे वेदों का अध्ययन कर लिया । फिर पुनः रत्नों से गुरु की पूजाकर अन्य छात्रों का आदरकर स्व स्थान पर आया। स्वयं को ब्रह्मवैद्य के रूप में बताता था। अब वह लोगों में 'ब्रह्मवैश्रवण' के नाम से प्रख्यात हो गया। राजकुमार का रोग मिटाने हेतु प्रतिदिन पटह बज रहा था। पर स्वंय मौन था । नगरजनों पर वह औषधि दान से

उपकार करता था । लोगों में चर्चा चलती थी । क्या यह देव है ? क्या विष्णु है ? कुबेर है ? अद्भुत भाग्यशाली यह कौन है ? औषधि, दान और सभी कलाओं में इसके समान अन्यत्र कहीं नहीं देखा। पहले इसके जैसे गुणवाला शबर वैश्रवण आया था। क्या यही रूप परावर्तन कर तो नहीं आया ? एकबार वह राज मार्ग पर क्रीड़ा करता हुआ वीणा बजा रहा था । गायन रसिक लोग इकट्ठे हो गये थे। एक कुब्जा दासी पानी भरने जा रही थी । वह गीत-गान से आकर्षित वहाँ आयी । विप्र ने उसे देखकर पूछा "तू कौन है ?" उसने कहा "भोगवती महारानी की दासी हूँ।" ब्रह्मवैश्रवण ने पूछा तू कुब्जा कैसे है ? उसने कहा 'वात व्याधि से' । वैश्रवण ने कहा "क्या इस नगर में तेरी चिकित्सा किसीने नहीं की ? उसने कहा" "बहुत वैद्यों ने इलाज किया पर मैं मंद भाग्यवाली होने से कोई फल न मिला।" तब उसने उसको अपने समीप बुलाकर मुष्टि से उस स्थान पर घात करके उसको सीधी कर दी। वह प्रमुदित होकर बोली।" तू अलक्ष्य स्वरूपवाला नगरजनों के भाग्य से यहाँ आया है। अतः राजा के घर आ और उनके पुत्र को निरोग कर दे। नगरजनों से तो तू पूज्य हो ही गया। अब राजकुल में भी पूजनीय हो जा ।" विप्र ने कहा "तू जा। मुझे राजकुल से कोई प्रयोजन नहीं है।" वह विस्मित हुई रानी के पास आयी। रानी ने पूछा "तू कौन है ?" उसने कहा "स्वामिनि मुझे नहीं पहचानी। मैं वही कुब्जा दासी हूँ।" रानी ने विस्मित होकर पूछा "तू सीधी कैसे हो गयी।" उसने कहा "ब्रह्मवैश्रवण ने औषधि से सीधी कर दी।" रानी ने कहा "वह कहाँ है ?" दासी ने कहा "राज मार्ग पर है।" रानी ने कहा "वह राजपुत्र को निरोग कर सकेगा या नहीं ?" दासी ने कहा "विश्व में ऐसा कोई कार्य नहीं जो करने का उसमें सामर्थ्य न हो।" तब रानी ने जाकर राजा से निवेदन किया। राजा ने अपने प्रधान पुरुषों को भेजकर उसे निमंत्रित किया। औषधि की ग्रंथि के साथ, यज्ञोपवीत

आदि .विप्र के पूर्ण वेश सहित राज सभा में आया। उन्हें आशीर्वाद दिया । राजा ने उसे कनकासन पर बैठाया । राजा ने पूछा'' आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? किस नगर को सुखी कर रहे हो?'' उसने कहा ''मैं गिरिपल्ली में रहता हूँ। पिता के उपदेश से विविध औषधियों का ज्ञाता हूँ। उसके लिए अनेक पर्वत वनादि में घूमकर उन औषधियों से अनेकों को निरोग करता हुआ आपके नगर में आया हूँ'' तब नृप ने कहा ''अच्छा है! तुमने अभी कहा कि मैं परोपकारी हूँ उसे सत्य सिद्ध करो। मेरे पुत्र के हाथ पैर स्तंभित हो गये हैं उसे स्वस्थ कर दो। हे महाशय! आकृति से आप में विश्वोपकार की शक्ति है ऐसा मैं मानता हूँ।'' विप्र ने कहा ''आप अपने पुत्र को बताओ। अगर संभव होगा, तो प्रयत्न करूँगा।'' राजा उसको अमात्यादि के साथ पुत्र के पास ले गया, वहाँ उसे देखकर मायाविप्र बोला ''विषम है यह रोग। केवल औषधि से असाध्य है। इसके लिए मंत्र का भी प्रयोग करना होगा। इसलिए मंत्रोपचार के लिए विविध पूजोपचार लाना होगा।'' उसके कथनानुसार सारा सामान लाया गया। उसने आडंबर के लिए परदा बंधवाया । लोगों को दूर किया । बड़ा मांडला बनाया । चन्दन की अग्नि सुलगायी । फिर ''ॐ नमोऽर्हते, ॐ ह्रीँ सिद्धेभ्यः नमो वषट्'' इत्यादि मंत्रोच्चार, ध्यान, मुद्रा, आसनादि सहित कर्पूर, अगरु पुष्पादि से होमकर, बली क्षेपकर मांडले में राजपुत्र को स्थापनकर, महौषधि के जल से अभिषेक किया। राजकुमार निरोग हो गया। फिर परदा दूर किया । राजा वहाँ आया। राजपुत्र ने उठकर पिता को प्रणाम किया । फिर स्नेहपूर्वक पुत्र एवं विप्र को गाढ़ आलिंगन देकर उसके साथ कनकासन पर बैठा। सचिवादि संपूर्ण परिवार हर्षित हुआ।

नगर में बधायी महोत्सव हुआ । चारों ओर मंगल गीत गाये जाने लगे । जन्मोत्सव जैसा उत्सव हुआ। राजा ने विप्र से कहा ''हे हमारे भाग्य के जगानेवाला हमारे प्रबल पुन्य के उदय से तुम मिले

हो। आपका मंत्रवादित्व, आपकी महान् औषधि और आपका परोपकार इतना आश्चर्यकारी है, जिसका हम प्रत्युपकार करने में असमर्थ हैं। परंतु हे नरोत्तम! आप की रूचि के अनुसार एक देश ग्रहण करके हम पर कृपा करो।'' इतना कहकर राजा ने और मंत्रियों ने उसके सामने रत्नालंकार वस्त्रादि रखे। उस माया विप्र ने कुछ भी न लेते हुए कहा ''हे राजेन्द्र! संत पुरुष पुन्य के लिए प्रवृत्ति करते हैं। वे पुन्य के अलावा बदले में कुछ भी नहीं चाहते। मेरे पास चिकित्सा से अर्जित धन निर्वाह जितना है। इसलिए अधिक की मुझे आवश्यकता नहीं। क्योंकि अधिक धन तो लोभ की वृद्धि करता है। लाभ से लोभ घटता नहीं, संतोष से ही मैं अपनी आत्मा को संतुष्ट करता हूँ। संतोष सुख से इन्द्र को भी जीता जा सकता है। विप्रधर्म की क्रिया में विघ्नकारी देश से मुझे क्या प्रयोजन? फिर भी इस पर आगे विचार करेंगे। इस प्रकार उसको अलंकारादि से निःस्पृह जानकर और अति संतोषी मानकर राजा ने पूछा। देश का स्वीकर पीछे करना परंतु अभी आप कहाँ रहे हुए हो। तब विप्र ने कहा। ''पत्निसहित वणिक् का घर किराये से लेकर रहा हुआ हूँ।'' राजा ने कहा ''अब आप मेरे महल में ही पत्नी सहित रहो। इस प्रस्ताव को उसने स्वीकार किया। फिर राजा ने दासीवृन्द के द्वारा उसकी पत्नी को सारे सामान सहित अपने महल में बुलाया। उनको अपने महल की चित्रशाला में ले गया । स्नान भोजनादि करवाया। दास-दासी सेवा में रखे। फिर राजा भोगवती एवं मंत्रियों के साथ विचार करने लगा । विप्र को कन्या कैसे दी जायँ? भिक्षाचर कुल में जन्में व्यक्ति को देश देना उचित है, कन्या देना उचित नहीं है।'' मंत्रियों ने कहा ''स्वामी! नृपोचित लक्षणों से शौर्य, प्रकृति और प्रवृत्ति से युक्त विप्र मात्र नहीं है। इसलिए इसे कन्या देनी चाहिए । राजा एकवचनी होते हैं। फिर तो कन्या का भाग्य प्रबल है।'' राजा और रानी ने न्याययुक्त वचनों का स्वीकार किया।

पद्मपुर में पद्मरथने भिल्ल को कन्या दी थी । रानी, मंत्री आदि के द्वारा निर्भत्सना से पश्चातापकर प्रात: राजा ने भिल्ल एवं कन्या की शोध की । पर वे कहीं न मिले । अनेक ग्राम, नगरों में भी खोज़ करवायी, परंतु कन्या न मिली। राजा शोकातुर हो गया । थोड़े दिनों के बाद शोक मुक्त हुआ। पुरंदरपुर के नरसिंह राजा का पुत्र नरकुंजर, पद्मरथ राजा की सेवा के लिए आया । जयसुंदरी का उस पर स्नेह राग देखकर उसका विवाह महोत्सव किया। कमला रानी को अपनी पुत्री की खोज़ खबर न मिलने से, जयसुंदरी के विवाह महोत्सव को देखकर, उसे अधिक दु:ख हुआ । वह राजा की अनुमति लेकर अपने पीयर कमलपुर में आ गयी । राजा उसको आती जानकर, सन्मुख जाकर, हर्षपूर्वक घर ले आया। भाई को मिलकर पुत्री का दु:ख याद आया । राजा उस घटना से अनभिज्ञ होने से उसे दु:ख का कारण पूछा। कमला ने विस्तारपूर्वक कमलसुंदरी का वृत्तांत कहा। सुनकर वह भी दु:खी हुआ। राजा आदि की निन्दा की। फिर धैर्य धारणकर कहा'' बहन! खेद मतकर। कर्म के आगे किसी की शक्ति काम नहीं करती। फिर भी अवसर देखकर राजा को सजा दूंगा । भानजी को चारों ओर खोजूंगा । ब्रह्मवैश्रवण के द्वारा उसको प्रकट करूँगा।'' उसने पूछा-''यह कौन है?'' राजा ने संपूर्ण वृत्तांत कहा । कमला भाई के पुत्र की निरोगता के समाचार से आनंदित हुई। पुत्री का दु:ख भी भूल गयी। भोगवती आदि रानियों ने ननन्द का स्वागत किया। विजयसूर भी आया। उसने नमस्कार किया। कमला ने स्नेहपूर्वक मस्तक पर हाथ फिराकर आशीर्वाद दिया । उसने ब्रह्मवैश्रवण की प्रशंसा की । कमला वहाँ कुछ दिन ठहरी। ब्रह्मवैश्रवण की पत्नी के साथ कमला का अति स्नेह हो गया। वह माता को माता रूप में जानती थी। परंतु कमला उसे पहचान न सकी । पर खून के रिश्ते ने स्नेहिल कर दी । वह कमलसुंदरी को अधिक समय अपने पास रखने लगी ।

राजा ने नैमित्तिक से भानजी के विषय में पूछा । उसने कहा "इसी नगर में मिलेगी । इससे अधिक मैं नहीं जानता।" राजा ने अपने आदमियों से चारों ओर खोज़ करवायी । पर खबर न मिली। मिले कहाँ से? पदार्थ घर में और ढूंढे बाहर। ब्रह्मवैश्रवण ने भी सोचा था कि राजा पद्मरथ को सजा के बिना प्रकट नहीं होना है। इससे उनको खोज़ने का निषेध भी नहीं किया ।

एकबार एक विदेशी नट वहाँ आया। उसने राज सभा में कहा "मुझे नाट्य कला में जो जीतेगा, उसका मैं दास बनूंगा।" ऐसी प्रतिज्ञा बताकर प्रख्यात हुआ। राजा ने कहा तेरी नृत्य कला बता। उसने अपनी कला बतायी। उस समय राजा ने उसे बहुत दान दिया। परंतु ब्रह्मवैश्रवणने उसके सूक्ष्म दोष बताये।

उसने कहा "मेरे सामने कोई है, जो मुझे जीते ।" तब राजा के दूसरे नटों ने तो मुख नीचा कर दिया, परंतु ब्रह्मवैश्रवण ने कहा "राजन्! इस नट में क्या कला है? मुझे थोड़ा परिवार दो मैं इसे जीत लूंगा।" राजा ने कहा "मेरे इस नटों के समूह में से जो तुझे चाहिए वे लोग ले ले। उसने सातवें दिन नाटक का प्रोग्राम रखा। कुमार ने अपने उपर्युक्त पुरुष, स्त्रियों को लेकर उनको उनके योग्य पार्ट दिया । कला का शिक्षण दिया । फिर सातवें दिन कार्य क्रम देखने सभी इकट्ठे हुए। यथायोग्य राजा-रानी परिवार एवं नगर जन बैठे । फिर अपनी पत्नी विजयासुंदरी को मुख्य नटी बनायी । अनेक प्रकार की कलाओं के साथ स्व वृत्तांत प्रारंभ किया । विजयपुर जय-विजय राजा, सिंहसार जयानंद क्रमशः पुत्र। रात में केवली प्ररूपित धर्म की प्राप्ति । देशांतर जाना, विशालपुर विद्याध्ययन, राजकन्या से शादी, गिरि मालिनी देवी को प्रतिबोध, कनकपुर में द्युत खेलना, राजकन्या से विवाह, रेल्लणी देवी को प्रतिबोध, सूअर से युद्ध, तापसों को प्रतिबोध, तापस सुंदरी से

विवाह, मलयमाल देव पर विजय, महौषधी की प्राप्ति, रत्नपुर आना, रतिसुंदरी का नाटक, उससे शादी, भिल्लरूप करना। भिल्ल रूप से विजयसुंदरी से शादी अंधता और नयनदान आदि यथास्थिति सारा वृत्तांत नाटक के रूप में बताया । यहाँ उसने नाम परिवर्तन किया । भोगपुर, भोगदत्त राजा, नास्तिक नृप सुजया-विजया पत्नी, सुदामा-सुभगा पुत्री । आद्या नरेन्द्र भावानुकूल, द्वितीया प्रतिकूल, क्रोध से भिल्ल को दी । सब कुछ परिवर्तन होने पर भी कमला ने विजयासुंदरी को अपनी पुत्री मानकर मिलने हेतु स्टेज पर आ गयी। मायावी विप्र ने कहा "माते! कौनसी भ्रमणा हुई है। मेरी पत्नी ने सुभगा का पार्ट अदा किया है। नाटक में सत्य नहीं होता । फिर उसने लज्जा से उसे छोड़ दी। फिर उसने (कमला ने) सोचा, 'क्या यह मेरी पुत्री है? या दूसरी। मुझे इस पर स्नेह तो आता है। ठीक है समय पर सब प्रकट हो जायगा।' इधर मायाविप्र ने उस नाटक को पूर्ण कर भाले के अग्रभाग पर सुई रखकर, उस पर पुष्प रखकर, नृत्य किया । उस नृत्य से सारे दर्शक अत्यंत प्रमुदित हुए। इस नट की कला के आगे उस नट की कला निरस रही। वह नट मायावी विप्र के पैरों में प्रणामकर बोला "मैं आप का दास हूँ।" ब्रह्मवैश्रवण ने कहा 'भाई! इस पृथ्वी पर मुझ से भी अधिक कलावान हो सकते हैं। अत: किसी भी बात का गर्व नहीं करना चाहिए। वह नट क्षमापनाकर स्व स्थान गया। राजा ने मायावी विप्र को इनाम देना चाहा पर उसने न लिया। दूसरे स्त्री पुरूषों को आशातीत धन राशि देकर बिदा किया । सारी सभा विसर्जित हुई।"

राजा ने ब्रह्मवैश्रवण से पूछा "वह राजपुत्र कौन जिसका तूने अभिनय किया? वह भिल्ल देव कुल से कहाँ गया? उसने कहा "मैं प्रिया सहित विचित्र नाट्यादि करता हुआ 'भोगपुर गया। वहाँ मैं रात में देवकुल में ठहरा था । तब उस भिल्ल को स्वरूपवान्

पत्नी सहित आया देखकर उससे पूछा। उसने अपनी सारी कथा कही। रात को उस कन्या की आँखे गयीं । भिल्ल ने आँखे ठीक की । यह सब मैंने देखा। रात को हम सो गये। वे प्रात: वहाँ नहीं थे। कहाँ गये, यह मुझे मालूम नहीं । उसका विस्मयकारी चरित्र याद रह गया, इसलिए यहाँ यह चरित्र बताया।'' राजा और कमला ने सोचा कही यह भिल्ल ही तो विप्ररूप में नहीं हैं? इसकी चेष्टा गहन है। इसकी पत्नी विजयासुंदरी है या दूसरी? कलावानों का चरित्र कौन जान सकता है? जो भी हो, इतना तो खयाल आ गया, संतोष हो गया कि विजयासुंदरी का पति भिल्ल नहीं है, राजकुमार है। वह सुखी है। और यहाँ मिलेगी यह यहाँ रहेगा तो सब जान लिया जायगा । इसे ही कमलसुंदरी देनी है। ऐसा निर्णय पुन: मनोमन कर लिया ।

राजा ने विप्र से कहा ''तेरी कला अपूर्व है, कहीं न देखी, न सुनी। तुमने अपनी नाट्यकला से मेरे राज्य को उन्नति के शिखर पर ला दिया है। आपको मेरे पास ही रहना है। अन्यस्थान पर नहीं जाना है। उसने भी 'हाँ' कही। कमलसुंदरी उस नाटक से रंजित होकर उसे ही पति रूप में चाहने लगी थी। एक दिन उसने धाव माता से कहा ''माते! प्रतिज्ञानुसार मेरे पिता वर्तन क्यों नहीं कर रहे हैं?'' धावमाता समझ गयी। उसने राजा से कहा । राजा ने पुत्री की इच्छा देखकर उसी दिन ब्रह्मवैश्रवण को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में सहायता करने को कहा । तब उसने पूछा ''किस प्रकार सहायता करूँ?'' राजा ने कहा ''मेरी पुत्री से पाणिग्रहण करके।'' उसने कहा ''राजन्! मेरे तो पहले भी धान्य रांधनेवाली ब्राह्मणी है। सामान्य व्यक्ति को एक से अधिक पत्नियों से दु:ख होता है । क्योंकि मदन पत्नियों के कारण कितना दु:खी हुआ?'' राजा के पूछने पर उसने मदन की कथा सुनायी।

"मदन धनदेव की कथा"

स्त्रियों के दुश्चरित्र को देखकर, जो भोगों से विरक्त होता है, वह कल्याण का पात्र होता है।

भरतक्षेत्र के कुशस्थल सन्निवेश में नाम और रूप से समान मदन नाम का सेठ था। उसकी रति-प्रीति समान चण्डा-प्रचण्डा नाम समान गुणवाली बचपन से विद्याबल को प्राप्त की हुई दो पत्नियाँ थी । वे दोनों किसी भी निमित्त को लेकर आपस में कलह करती थी। एकबार मदन ने प्रचण्डा को पास के दूसरे गाँव में मकान लेकर रख दी। और एक-एक दिन दोनों के वहाँ रहने का निर्णय किया । एकबार किसी कारण से प्रचण्डा के घर एक दिन अधिक रहा और चण्डा के घर आया । चण्डा उस समय मूशल से अनाज खांडती थी। उसने कहा 'तूझे, चण्डा प्रिय है, तो चला जा वहाँ, यहाँ क्या काम है? उस पर मूशल फेंका । वह प्रचण्डा के घर की ओर भागा । थोड़ी देर के बाद पीछे देखा तो सर्प आ रहा था। अति शीघ्र भागकर पुनः प्रचण्डा के घर आया । उसके पूछने पर उसने सारा वृत्तांत कहा । प्रचंडा बोली-"देखो मेरी शक्ति ।" उस सर्प के सामने शरीर के मैल को फेंका तो वह नकुल बन गया । उसने सर्प के कई टुकड़े कर दिये । मदन ने सोचा चंडा से बचकर तो यहाँ आ गया, पर यह कुपित हो जाय तो कहाँ जाना? इससे अच्छा है, इन दोनों को छोड़कर कहीं दूर चला जाऊँ। ये दोनों राक्षसियाँ है। कहा है=अपने हित के लिए राज्य भी छोड़ देना श्रेयस्कर है।' ऐसा निश्चयकर गुप्त रूप से बहुत सा धन लेकर मदन देशान्तर के लिए चला। स्वेच्छापूर्वक एक गाम से दूसरे गाम जाता है। एक दिन संकाशपुर के उद्यान में अशोकवृक्ष के नीचे आकर बैठा । तभी भानुदत्त नामके सेठ ने आकर कहा "हे मदन! तेरा

स्वागत है। आओ अपने घर जायँ। स्वयं को नाम पूर्वक बुलाने से चमत्कृत वह उसके महल में आया। श्रेष्ठि ने गौरवपूर्वक स्नान भोजनादि सत्कारकर अपनी कन्या से शादी करने के लिए आग्रह किया । मदन ने कहा "अज्ञात-कुलवाले को कन्या कैसे दे रहे हो?" तब सेठ ने कहा "मेरे चार पुत्रों पर यह पुत्री यौवनास्था में आयी। मैंने सोचा मैं इसका वियोग सहन नहीं कर सकता । इसे लोक रीति के अनुसार किसीको देनी होगी। क्यां करूँ? ऐसी चिन्ता में सोया था । तब रात को कुलदेवी ने कहा 'वत्स! चिंता क्यों करता है? प्रात: उद्यान में अशोकवृक्ष के नीचे मदन नामका कन्या के योग्य वर मिल जायगा । उसे कन्या दे देना । उसे अपने घर रखना। इस देवी के कथनानुसार तुमको ले आया हूँ। उसने भी सोचा 'प्रिया के बिना कितना काल जा सकता है? और देवी के कथनानुसार इससे शादी कर यहाँ रहना ठीक है।' सेठ ने विवाह सानंद संपन्न किया। वह वहाँ भोग भोगता रहा । "पुन्य के प्रभाव से भोगों की प्राप्ति होती है। अत: पुण्यार्जन करना चाहिए।" एकबार वर्षाकाल में किसी पति विरहणी स्त्री के रूदन को सुनकर उसे अपनी पूर्व पत्नियों की याद आ गयी। वे कितनी दु:खी होगी, ऐसा वह सोचने लगा । उसकी आँखों को अश्रुभीगी देखकर विद्युल्लता पत्नि ने पूछा 'क्या बात है? उसने कहा 'कुछ नहीं, पर अत्याग्रह होने पर उसने अपनी पूर्व की दोनों पत्नियों की बात कही । उसने सोचा' 'मैं इतनी सेवा करती हूँ फिर भी ये उनको याद करते हैं तो अब समय में विलम्ब करवा दूँ।' ऐसा सोचकर कहा "अब तो नदी नाले जल से भरे हुए होंगे। मार्ग विषम हो गया है। शरत्काल में प्रवास का सोचना।" उसने स्वीकार किया । शरत्काल आया, तब उसने पुन: कहा "*अब मैं उनको मिलकर आऊँ!* उसने कहा "हाँ जाओ। उसने भाते में 'करम्ब' (मगद नामक मिष्टान्न) (प्रचुर मात्रा

में) दिया । उसे लेकर मदन चला। मार्ग में मध्याह्न के समय में सरोवर के किनारे स्नानकर देव गुरु का स्मरणकर अतिथि की राह देखने लगा। थोड़ी देर में वहाँ कोई जटाधारी भिक्षा के लिए आया उसे बुलाकर करम्ब उसे खाने को दिया। वह वहाँ खाने बैठा । मदन ने भी खाने के लिए कोलियाँ उठाया। इतने में किसीने छींक की। अपशुकन मानकर वह रूका। थोड़ी देर में वह जटाधारी बकरा बन गया और संकाशपुर चला। यह कहाँ जाता है देखने के लिए मदन भी पीछे चला । वह बकरा विद्युल्लता के घर गया । मदन पास में कहीं छिपकर पत्नी की चेष्टा देखने लगा । उस बकरे को विद्युल्लता घर में.ले गयी। द्वार बंधकर दंड से उसे पीटना शुरू किया। वह बोली "रे, रे, निरपराधी ऐसी मुझे छोड़कर सापराधी उन दोनों को मिलने दौड़ रहा था । क्या मेरे पास मूशल नहीं है? मैं पति के प्राण लेना नहीं चाहती।" इस प्रकार बोल-बोलकर बकरे को मारती थी उसके रोने से लोग इकट्ठे हुए। लोगों के उपालंभ से उसने मंत्रित जल छिड़का। वह जटाधारी पुरुष हो गया। लोगों ने पूछा "आप कैसे? उसने करंब खाने की बात कही । लोक विस्मित होकर घर को गये। जटाधारी भी गया। उस स्त्री ने सोचा 'धिक्कार है मुझे, बिचारा यह निरपराधी भिक्षुक मारा गया। भर्तार कहाँ गया? पुनः मिलेगा या नहीं? मैंने सोचा था थोड़ी सजाकर, उसे समझा बुझाकर अपना बना लूंगी। पर मेरे मनोरथ व्यर्थ गये। लोगों में निंदा हुई, और पति का वियोग हुआ । इधर मदन ने इस प्रकरण को देखकर सोचा यह अपने चरित्र से मेरी पूर्व प्रियाओं से भी आगे बढ़ गयी। इन स्त्रियों के चरित्र को योगी भी नहीं जान सकते । धिक्कार है मुझ जैसे रागान्धों को, जो स्त्री में रंजित होते हैं। मैं तो कष्ट से मुक्त हो गया। चंडा-प्रचंडा और विद्युल्लता से मुक्त हो गया। अब स्वहित करूँगा।' वहाँ से गुप्त रूप से

निकलकर, भ्रमण करता हुआ हसंतीपुरी में आया। वहाँ उद्यान में उसने एक जिन चैत्य देखा। वहाँ रत्न प्रतिमा युक्त (स्वर्ग विमान को जीते ऐसे) मंदिर को देखकर अत्यंत आनंदित होकर पूजा अर्चना की। वहाँ एक व्यक्ति आया । उत्तम वेषाभूषण युक्त उसे निःश्वास छोड़ते देखा। मदन ने पूछा "तुम कौन हो? निःस्वास क्यों छोड़ते हो? कौनसा दुःख है?" उसने कहा "मै धनदेव वणिक् हूँ। यही रहता हूँ। मेरा दुःख तो कहूँगा? परंतु क्या तू भी दुःखी है?" मदन ने कहा "मेरा दुःख कहने में लज्जा आती है फिर भी प्रथम मिलन में साधर्मिक के नाते स्नेह हो आया है। अतः कहता हूँ।" उसने अपनी पूरी कथा कही। धनदेव ने कहा "यह कुछ नहीं। मेरा वृत्तांत जानेगा तो आश्चर्यचकित हो जायगा। मदन ने कहा मुझे सुनने की तीव्रेच्छा है। सुनाओ।" उसने कहा-

इस महानगरी में धनपति श्रेष्ठी था। उस की लक्ष्मी प्रिया थी। उसके दो पुत्र धनसार और धनदेव! माता-पिता स्वर्गवासी हुए। मुनिचंद्र महर्षि से बोधित होकर शोक मुक्त हुए। फिर पत्नियों के कारण कलह होने लगा । दोनों विभक्त हो गये। धनदेव अपनी पत्नी के कारण उद्विग्न रहता था। वह स्वेच्छाचारिणी थी। बड़े भाई के पूछने पर उसने सत्य बात कही। धनसार ने दूसरी कन्या से उसकी शादी करवायी। अब वह उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। परंतु अल्पावधि में वह भी स्वेच्छारीणी हो गयी। एक दिन उसका चरित्र देखने के लिए वह बोला "आज मुझे शीत ज्वर आया है अतः मैं शीघ्र सो जाना चाहता हूँ।" ऐसा कहकर वह सो गया। थोड़ी देर के बाद उसने नींद का ढोंग कर दिया। घोर शब्द भी किया। इतने में बड़ी ने आकर कहा-'चल सामग्री तैयार कर । दोनों वहाँ से गृहोद्यान के आम्रवृक्ष पर चढ़ी। धनदेव भी चुपके से वहाँ आया और उस वृक्ष के कोटर में बैठ गया। वृक्ष आकाश में उड़ा।

रत्नद्वीप में रत्नपुर में ठहरा । स्त्रियाँ उतरकर घूमने चली । धनदेव भी उनके पीछे चला। उस नगर में श्रीपुंज सेठ की (चार पुत्रों पर उत्पन्न) पुत्री का विवाह वसुदत्त् सार्थवाह के पुत्र के साथ उस रात को था। वरराजा तोरण पर आया अचानक-एकतीर आया और उसका शिर कट गया । हर्ष के स्थान पर शोकमय वातावरण हो गया । श्रीपुंज शेठ ने सोचा "इसी मुहूर्त में इसकी शादी न की तो इससे कोई विवाह नहीं करेगा । इसलिए जिस किसी के भी साथ इसका विवाह कर देना है। अपने पुरुषों को किसी योग्य पुरुष को लाने भेजा । वे भी घूमते हुए धनदेव को ले आए। प्रार्थना पूर्वक सेठ ने उसे शादी के लिए तैयार कर दिया। उसने भी पूर्व पत्नियों को छोड़ने की इच्छा से शादी कर ली। शादी के समय वे दोनों वर-वधू को देखने आयी। तब एकने कहा "यह तो अपना पति है। दूसरीने कहा "वह यहाँ कैसे आ सकता है?" एक जैसे चेहरेवाले दो व्यक्ति हो सकते हैं। फिर वे घूमने गयी इधर शादी के बाद पत्नी के साथ धनदेव उसके आवास में गया । वहाँ उसने अपनी पत्नी के वस्त्र पर एक श्लोक लिखा ।"

कहाँ हसन्ती, कहाँ रत्नपुर कहाँ आकाश से आम्रवृक्ष का आना, धनपति का पुत्र धनदेव भाग्य से यहाँ लक्ष्मी को पाया।

इतना लिखकर बहाना बनाकर वृक्ष तक आया । वे भी आयी वह कोटर में रहा । वृक्ष उड़ा। उद्यान में आया । वह शीघ्र अपनी शय्या पर आकर सो गया। वे भी आकर अपने-अपने कमरे में सो गयी। प्रात: वे कार्य में लग गयी वह सोया हुआ था । उसका एक हाथ कंकणवाला वस्त्र से बाहर आ गया । उसे देखकर छोटी ने बड़ी से कहा । बड़ी ने कहा "तू भयभीत न हो।" उसने एक धागा मंत्रीतकर उसके पैर में बांध-दिया । वह उठा तो अपने आपको शुकरूप में देखा । उसने सोचा 'कंकण न खोलने की भूल

ने शुक पना प्राप्त करवाया है।' उसने सोचा ''धिक्कार है मुझे! मैं मनुष्यभव हार गया, और पक्षी बना । क्या करूँ? उनके डर से वह उड़ने लगा, तो स्त्रियों ने उसे पकड़कर कहा ''अय! छल से हमारें छिद्र देखने का फल भोग।'' फिर उसे पिंजरे में डाल दिया। दोनों एक दूसरे की प्रशंसा करने लगी । धनदेव परिजनों को देख देख कर शोक करता था। वह वहाँ दुःख से समय व्यतीतकर रहा था । उन दोनों ने उसे शाक छौंकते हुए कहा, कि हम तुझे इस प्रकार छौंक देंगी । अब वह उनसे नित्य भयभीत रहने लगा ।

इधर रत्नपुर में श्रीपुंज सेठ ने वरराजा का गमन जानकर खोजा पर न मिला । उसने वस्त्र पर श्लोक देखा । उसे पढ़ा। और पुत्री से कहा 'मैं उसे बुलाऊंगा ।' सागरदत्त सार्थवाह हसंती नगरी जा रहा था । उसे बुलाकर आभूषण धनदेव को देने के लिए देकर कहा कि ''वहाँ जाकर कहना कि आप अपनी पत्नी को लेने के लिए शीघ्र पधारो । सागरदत्त समुद्र मार्ग से वहाँ जाकर धनदेव के घर गया। पूछा तो उसकी स्त्रियों ने कहा कि'' वह परदेश गया है। सागरदत्त ने आभूषण दिये । उन्होंने ले लिये, और कहा कि वह कहकर गया है कि रत्नपुर से कोई आ जाय तो उसे यह पोपट (शुक) देकर कहना कि यह मेरी पत्नी को दे दे। आप ले जायँ। उसे दे दें।'' वह ले गया। व्यापार कार्यको कुछ दिनों में पूर्णकर वह रत्नपुर में आया । श्रीपुंज सेठ से सब विवरण कहा। शुक दे दिया। उसने अपनी पुत्री को शुक दे दिया । वह उसे देखकर पति का प्रसाद मानकर उसको सदा खुश रखती थी। एक बार उसके पैर के धागे को खेल-खेल में तोड़ दिया । वह असली रूप में धनदेव हो गया। उसके पूछने पर उसने कहा ''जो हुआ वह देखा । अब अधिक न पूछ।'' उसने अपने पिता से कहा। पूरा परिवार धनदेव को देखकर खुश हो गया। अब वह वहाँ व्यवसाय के द्वारा धनार्जन करता हुआ समय व्यतीत करता

था। थोड़े समय के पश्चात् श्रीपुंज का स्वर्गवास हो गया। भाईयों के स्नेह को कम हुआ जानकर पत्नि ने सोचा 'पति का पूर्व का घर कैसा है? पहले की पत्नियाँ कैसी हैं।' आदि जानने हेतु पति से पूछा तो उसने कहा ''समय पर ज्ञात हो जायगा।'' कुछ समय बीतने के बाद- बात-बात में पत्नि ने कहा कि ''इस जगत में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। अपने गुणों से प्रख्यात हो वह उत्तम, बाप के गुण से पहचाना जाय वह मध्यम और ससुर के नाम से पहचाना जाय वह अधम।'' ''आपको यहाँ के लोग मेरे पिता के नाम से पहचानते हैं। यह क्या आपके लिए उचित है?'' मेरा निवेदन है कि हम आपके पितृ घर पर जावें।'' ''धनदेव ने कहा'' में अभीतक उनकी बात से भयभीत हूँ। पत्नि के पूछने पर उसने अपना पूरा जीवन वृत्तांत सुना दिया। तब श्रीमती हास्यकर बोली ''स्वामिन्! आप भय न रखें। मैं उनको सीधी कर दूंगी। आप निःशंक होकर चलें।'' पत्नि के वचनों से स्वजनों से विदा लेकर अपने घर आया। उन दोनों ने उसे देखकर चकित होकर सोचा ''यह मनुष्य रूप में कैसे आ गया।'' फिर भी बाहर से हर्षित होकर उन दोनों का स्वागत किया। फिर भक्ति से पति के चरण प्रक्षालन करने लगी। फिर थोड़े से जल को भूमि पर छांटा। वह जल बढ़ने लगा। धनदेव के घुटनों तक आया, धनदेव ने श्रीमती के सामने देखा। उसने कहा ''मत डर'' पानी कंठ तक आया। तब उसने उस पानी को धेनु(गाय) के समान मुँह से पीना शुरू किया, और पूरा जल शोष लिया। तब पूर्व की पत्नियों ने उसके चरण छूये। तुमने हमें जीत ली। अब वे तीनों साथ-साथ रहने लगी। उनकी संगत से वह भी स्वेच्छाचारिणी हो गयी। उसे देखकर धनदेव ने सोचा ''पूर्व की दोनों की स्थिति देखी। तीसरी ओर भी भयंकर है। ये तीनों मिलकर कुछ कर दे। तो मेरी क्या दशा हो। इसलिए इन राक्षसियों को छोड़कर शीघ्र आत्महित कर लूं। जिससे पुनः भय

न हो। धनदेव कुछ कार्य लेकर घर से निकलकर यहाँ आया । वह धनदेव मैं हूँ। मेरा दुःख तुझे कहा । तुझसे अधिक मैंने (पक्षी बनकर) दुःख भोगा है। तू तो भाग्यवान है कि शीघ्र उनसे दूर हो गया ।''

इस प्रकार सुनकर मदन ने विस्मित होकर कहा ''हे मित्र! इस दुःखमय संसार को छोड़कर आत्महित कर लें। दोनों समान वृत्तिवाले और प्रीतिवाले हो गये । विमल बाहु गुरु मिले। उनके पास धर्मोपदेश सुनकर प्रतिबोधित होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली । गुरु के साथ विहार करने लगे । द्वादशांगी के धारक अनेक प्रकार के तप तपते हुए विधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण करके पंच पल्योपम आयुवाले सौधर्म देव हुए । देव सुख भोगकर, मदन का जीव विजय पुर के समरसेन राजा की विजयावली रानी की कुक्षी से मणिप्रभ नामक पुत्र हुआ । वह राज्य सुख भोगकर, कमलवन को म्लान देखकर, प्रतिबुद्ध होकर, पुत्र को राज्य देकर, जिनेश्वरसूरिके पास दीक्षित हुआ । तप से अवधिज्ञानी और आकाशगामिनी शक्तिवाला हुआ । धनदेव का जीव स्वर्ग से च्यव कर रथनुपुर चक्रवाल नगर में महेन्द्रसिंह नामसे राजा हुआ । उसकी पत्नी रत्नमाला, पुत्र रत्न चूड-मणिचूड नामके थे। एकदिन रत्नमाला महारोग से मर गयी। उस पर मोह वश राजा शोकार्त होकर, विलाप करने लगा । मणिप्रभ मुनि अवधिज्ञान से धनदेव के जीव को जानकर, प्रतिबोध देने के लिए आकाशमार्ग से आये । उसे पूर्वभव सुनाकर स्त्रियों का चरित्र सुनाकर प्रतिबोधितकर, दीक्षा दी । सर्व आगमों का अध्ययनकर, दोनों राजर्षि कर्ममल को खपाकर मोक्ष को प्राप्त हुए । इस प्रकार बुद्ध व्यक्ति मदन और धनदेव के समान विषयसुख को दुःख का कारण जानकर चारित्र ग्रहण करते हैं । वे मुक्ति सुख के भोक्ता बनते हैं ।''

इस प्रकार सुनकर सभी सभ्य विस्मित होकर ब्रह्मवैष्णव के

चातुर्य की प्रशंसा करने लगे । मंत्रियों के साथ विचारकर राजा स्वइष्ट सिद्धि के लिए बोला "स्त्रियों का यह वृत्तांत सम्यक् प्रकार से कहा । परंतु सभी ऐसी नहीं होती, और गृहस्थ के लिए उनका त्याग दुर्लभ है । वे भी मुक्ति की अधिकारिणी हैं। जीवों में गुण-दोष अपने कर्मोदय से होते हैं। कर्मों का हेतु मिथ्यात्वादि आश्रव है। उसमें लिंग की कोई मुख्यता नहीं है। किसी एक आकार की निंदा क्यों? और तुमने कहा कि सामान्य जन को अधिक प्रिया योग्य नहीं । परंतु तुम सामान्य जन तो हो नहीं, इसलिए हमारी पुत्री से शादी कर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। संत पुरुष किसी की प्रार्थना का भंग नहीं करते । तब मायावी विप्र बोला 'राजेन्द्र! यदि आपकी यह आज्ञा है, तो कुछ समय प्रतिक्षा करो। मेरी कोई प्रतिज्ञा है। वह जब तक पूर्ण न हो, तब तक आप कुछ न कहें । उस प्रतिज्ञा को समय पर जानोगे । इस प्रकार के विप्र के वचन सुनकर राजा मंत्री कन्या आदि सभी हर्षित हुए ।'

एकबार राजा राज्य सिंहासन पर बिराजमान था । सभा का कार्य सुचारू रूप से चल रहा था। उस समय प्रतिहार ने आकर कहा "राजन्! पद्मरथ राजा का दूत आया है।" राजा ने उसे भेजने का आदेश दिया । उसने आकर राजा को प्रणाम किया । राजा दर्शित आसन पर बैठा । राजा ने कुशल समाचार पूछे । आने का कारण पूछा। उसने कहा "पद्मरथ राजा ने कहा है कि "मैंने क्रोधावेश में पुत्री भिल्ल को दे दी। पश्चातापकर उसकी खोज़ की पर वह न मिली। अब आप भी खोज़ करवाये। विशेष में कहा है आप की पुत्री कमलसुंदरी मेरे पुत्र पद्मदत्त को देकर अपने संबंध को और दृढ़ करे। दोनों का मिलन कंदर्परति समान होगा ।" राजा ने सोचा 'पूर्व में बहन कौल को देकर दुःख देखा। अब पुत्री तो ब्रह्मवैष्णव को दे दी है, अब इसे कैसे दी जाय?' 'ऐसा सोचकर

कहा "हे भद्र! पूर्व में बहन देकर तो परिणाम भोग लिया । कन्या प्रतिज्ञानुसार परमोपकारी ब्रह्मवैष्णव को दे दी है। कन्या भी उस से प्रमुदित है।" यह सुनकर दूत बोला "राजकन्या भिक्षाचर को कैसे दी जाय? "राजा ने कहा "तेरे राजा ने भिल्ल को कैसे कन्या दे दी?" दूत ने कहा "वह तो क्रोधान्ध पने में दी है।" राजा ने कहा "मैंने भी प्रतिज्ञा पालनार्थ दी है।" दूत ने कहा "राजन्! अंतर के परिणामों में बाह्य कारण मुख्य नहीं होता । राजकुमार और विप्र में तो महदन्तर है। राजकन्या के स्थान पर उसे दूसरी कन्या दे सकते है। आपकी पुत्री के लिए कंदर्प रूपधर राजकुमार कहाँ? और नटविद्याधारक ब्राह्मण कहाँ? बहुत उपकारी ऐसे ब्राह्मण को गाय, धन, ग्राम नगर आदि दिया जा सकता है, न कि राजकन्या। अधिकभार वहन करनेवाले गधे के गले में रस्सी हो शोभा देती है न कि मोतियन की माला।" राजा ने कहा "तूने जो कहा, वह कार्य करने के पहले सोचने जैसा है। करने के बाद कोई विचार नहीं करना है। सत्पुरुष तो प्रतिपन्न कार्य को पूर्ण करते हैं। इसलिए पंडितो को सम्मत इस कार्य में विचारान्तर करना असंभव है। अत: हे दूत! दूसरा कोई कार्य हो तो कह।" दूत ने कहा 'राजन्! स्वहित का विचार करो । शक्तिशाली के साथ संबंध हितकर होगा । अगर आप कन्या नहीं दोगे तो वह बल से ले लेगा । उसे रोकनेवाला कौन है? पद्मरथ राजा स्वयंवीर हैं। उसके सामने अन्य राजा तृण तुल्य हैं। उसके सैन्य रूपी समुद्र के सामने तू और तेरा सैन्य नहीं टिक सकेगा। फिर तुझे कहीं शरण नहीं मिलेगा । अत: हे राजन्! अगर राज्य और जीवितव्य की इच्छा हो तो राजकन्या पद्मदत्त को देकर सुखपूर्वक रहो। ऐसे वचन सुनकर उत्पन्न हुआ है क्रोध जिसको, ऐसा वह राजा बोला "दूत! तू बोलने में तो अग्रसर है, जो मेरे सामने भी ऐसे शब्द बोल रहा है। तूने मुझे जो उपदेश दिया

है, वैसा उपदेश तेरे राजा को देना था । जिससे वह क्षत्रिय कुल को कलंकित न करता । उसको तो क्षत्रियों की पंक्ति में से बहिष्कृत कर दिया है। उसके साथ स्वजनता दुःखदायक है। ऐसे पापी की सुख संपदा भी दीर्घकाल नहीं रहती। और इसका पराक्रम तो घर में होता है, संग्राम में नहीं। वह स्वयं तृणतुल्य है। उसके सैन्य को तूने समुद्र की उपमा दी, तो मैं वड़वानल हूँ। उसके सैन्य को पी लूंगा । कौन तेरे कौल राजा से भयभीत होगा। वह यदि राज्य और जीवितव्य से उद्विग्न हो तो युद्ध के लिए तैयार हो। मैं तो ब्रहन और भानजी के अपमान से सजा देने की भावनावाला था ही। तूने भूखे को भोजन के समान निमंत्रण दे दिया है। अब शीघ्र तू जा । मेरे ये वचन कह देना कि कौल कुल में मैं कन्या नहीं दूंगा। यथारूचि करना ।'' राजा के ये वचन सुनकर ब्रह्मवैश्रवण बोला ''अहो, यहाँ राजा और सैनिकों की क्षमा अद्भुत है, जो ऐसे वचन बोलने वाले दूत को भी गला पकड़कर सभा से बाहर नहीं निकाला जाता है।'' इतना सुनते ही एक सैनिक ने उसे गले से पकड़कर सभा से बाहर निकाल दिया । वह अपमानित होकर चला गया । पद्मपुर में जाकर राजा को नमक मीर्च मिलाकर सारी बातें की। राजा का क्रोध बढ़ा । उसने युद्ध की घोषणा कर दी। पद्मपुर नगर से प्रयाण किया। उस समय उसके साथ तीस हजार हाथी, तीस हजार रथ, तीस लाख घोड़े और तीस क्रोड़ पदाति सैनिक थे। उसको विशाल सेना के साथ आता हुआ सुनकर कमलप्रभ राजा मंत्रियों के साथ विचार करने लगा। राजा ने कहा ''हमने, क्रोध और मान में इस बलवान से वैर तो बांध लिया है, पर उसके साथ युद्ध कैसे करे ?'' मंत्रियों ने कहा ''किया वह अकिया नहीं होता, क्षत्रिय पराभव भी सहन नहीं कर सकता, दृष्ट दोषवाले इसे कन्या भी कैसे दे? इसलिए दुर्ग सज्ज किया जायँ, धान्य का संग्रह किया

जायँ, दुर्ग में रहकर युद्ध किया जायँ । राजा ने कहा 'यह अयोग्य है। युद्ध मैदान में करेंगे । वीर पुरुष देश का अपमान सहन नहीं करते।'' ब्रह्मवैश्रवण ने कहा ''राजन्! यह सत्य है। शत्रु भय को दूर कर दो। दुर्ग सज्ज करने का कोई काम नहीं, शत्रु को जीत ने के लिए शीघ्र चले। अकेला मैं उसे जीत लूंगा । आप सभी साक्षी रूप में रहना। जैसे आपने मेरा विस्मयकारी नाटक देखा, वैसे युद्ध भी देखें।'' राजा उसके वचनों से अत्यंत प्रमुदित हुआ । राजा ने मंगलाचारकर देव-गुरु की स्तवनाकर, सर्वविघ्न हर परमेष्ठि मंत्र का स्मरणकर, हस्ति पर आरूढ होकर शुभ शकुनों से प्रेरित सर्व सैन्य सहित नगर से प्रयाण किया । ब्रह्मवैश्रवण भी आयुधों से सज्ज होकर रथ में बैठकर राजा के साथ चला । तब कमला ने मंगल कर के विप्र से कहा ''तुम कोई अलौकिक पुरूष हो, पर युद्ध में मेरे पति का वध मत करना ।'' विजया ने भी कहा ''मेरे पिता को सुरक्षित रखना।'' उसने दोनों को आश्वासन दिया । पद्मरथ की सेना से अर्द्धसेना भी जिसके पास में नहीं, ऐसा कमलप्रभ उत्साहपूर्वक अपने देश की सीमा तक पहूँच गया । पद्मरथ भी मार्ग में आनेवाले सरोवर आदि का जल शोषित करता हुआ, सामने आ गया। शाम हो गयी थी । रात को सभीने शस्त्र सज्ज कर नींद ली । प्रातः रणकौतुकी सूर्य उदय हुआ । दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। पद्मरथ की सेनाने कमल प्रभ की सेना को पीछे हठ करने के लिए मजबूर कर दिया । अपनी सेना की हार होते देख कमलप्रभ राजा स्वयं युद्ध के मैदान में जाने की तैयारी करने लगा । ब्रह्मवैश्रवण ने उसे रोककर स्वयं युद्ध के लिए गया । इधर पद्मरथ भी सामने आया ।

पद्मरथ ने ब्रह्मवैश्रवण से कहा 'रे भिक्षुक, तेरे शरीर पर गिरते मेरे बाणों को लज्जा आ रही है। तू भिक्षा के लिए जा। दूसरों के लिए स्वयं क्यों मर रहा है? यह ताम्रपात्र ले जा । राजाओं के लिए

निन्दा जन्य ब्रह्म हत्या का पाप क्यों लूं? इस प्रकार तिरस्कार युक्त वचन सुनकर क्रोधित मायावी विप्र बोला "हे राजन्! पराक्रम में क्षात्रत्व या ब्राह्मणत्व हेतु नहीं है। मैं जो हूँ सो हूँ। तुझे कुल से क्या? तेरे पास में निन्दा है, मेरे पास पराक्रम है। तेरे राज्य में दुर्भिक्ष होगा तो मैं सुभिक्ष कर दूंगा। तेरा राज्य लेनेवाले मुझे ताम्र पात्र की क्या आवश्यकता? तेरे प्राण जाते ही विधि(भाग्य) सर्वभिक्षा दे देगी। पुत्री का वध करनेवाले अय कौल, तुझे ब्रह्महत्या का भय कहाँ से? अहो पुत्री को अन्धत्व देकर तूने तेरा सर्व इच्छित पूर्ण कर लिया है। ऐसा विवेक हीन तू श्राद्धपुत्री की इच्छा करता है। तू क्षत्रिय है, तो युद्ध में पराक्रम बता । उत्तम पुरुष अपने गुण फल से बताते हैं, वाणी से नहीं। इस प्रकार के वचनों को आग में घृत की आहुति मानता हुआ पद्मरथ बाणों की वर्षा करने लगा। ब्रह्मवैश्रवण और पद्मरथ का युद्ध भयंकर रूप से चला। ब्रह्मवैश्रवण के निषेध को अस्वीकारकर कमलप्रभ की सेना युद्ध में भाग लेने लगी। ब्रह्मवैश्रवण ने पद्मरथ को थका दिया। उसके पास शस्त्र न रहा तब विप्र ने उसे मल्ल युद्ध के लिए निमंत्रण दिया। दोनों मल्ल युद्ध करने लगे । ब्रह्मवैश्रवण ने उसे मूष्टि का प्रहारकर मूर्च्छित कर दिया। कमलप्रभ राजा के सैनिकों ने उसे बांध दिया। ब्रह्मवैश्रवण ने पद्मरथ की सेना को आश्वस्त की । ब्रह्मवैश्रवण ने सासू और बहू के वचन यादकर पद्मरथ के मस्तक पर औषधि रखकर शीघ्र स्वस्थ कर दिया । उसे पिंजरे में डलवा दिया। स्व-पर दोनों सेनाओं के सैनिकों को वह औषधि के प्रभाव से स्वस्थ कर देता था। सभी विस्मित होकर ब्रह्मवैश्रवण की प्रशंसा करने लगे। कमलप्रभ राजा हर्षित होकर मायावी विप्र का दृढ़ आलिंगनकर उसकी प्रशंसा करने लगा "अहो शौर्य! अहो धैर्य! अहो परोपकार, अहो गंभीरता! तेरे समान इस विश्व में अन्य कोई नहीं है। मैं मानता हूँ कि विधाता ने इस जगत में एक तुझे ही बनाया है। पूर्व पुन्य के

प्रभाव से और तेरी कृपा से हम कृतार्थ हो गये।'' उसे हाथी पर बिठाकर स्वयं उसके पास बैठ़कर बाजे गाजे के साथ एवं जय-जयकार पूर्वक युद्ध के मैदान से चले । पद्मरथ के मंत्री आदि सेना को उचित स्थान पर अपने-अपने शिबिरों में भेज दिया । पद्मरथ का पिंजरा नगर में ले गये । राजमह़ल में जाकर राजा ने सब को भेज दिया । सभी-अपने-अपने स्थान पर गये। स्नान भोजनादि से निवृत्त होकर सभी ने उस दिन विश्राम किया । चारों ओर ब्रह्मवैश्रवण के गुणों की और पराक्रम की चर्चा हो रही थी । मायावी विप्र के आदेश से पिंजरे में बंध पद्मरथ को भोजन करवाया गया । वह उसके पराक्रम को और अपने अशुभ कर्मों का विचार करता हुआ पिंजरे में रहा ।

प्रात: समय पर राजा राजसभा में आया । ब्रह्मवैश्रवण को अपने पास अर्द्ध सिंहासन पर बिठाया। उसके आदेश से पद्मरथ को पिंजरे सहित वहाँ लाया गया । विप्र ने उसे बाहर निकलवाकर कहा ''रे! बेटी की विडंबना का फल देख। रे अधम! इससे भी तेरे दु:ख का अंत नहीं होगा । उसके पास आकर निपुणता पूर्वक उसके मस्तक पर हाथ रखकर औषधि द्वारा उसे (मर्कट) बंदर बना दिया। लोहे की सांकल लगा दी। सभा आश्चर्यचकित हो गयी । ब्रह्मवैश्रवण ने आदेश दिया 'कि इस मर्कट को नगर में प्रति दुकान, घर, तीन मार्ग, चार मार्ग आदि पर चाबुक से मारते हुए घूमाओ । तब इसकी बुद्धि ठिकाने आयगी ।' जब सैनिक उसे पकड़ कर ले जाने लगे तब कमला पति की ऐसी विडंबना देखकर दु:खी होकर, (अपने भाई) से विनति करने लगी कि ''हे भाई! इस कार्य को मत करवा । इससे मेरी, और तेरी इज्जत को दाग लगेगा । क्योंकि किये हुए अपराधवाला पति भी प्रतिव्रता के लिए आराध्य ही है। फिर ब्रह्मवैश्रवण से कहा ''वत्स! मुझ पर कृपा करके मेरे पति को छोड़ । माता के वचन व्यर्थ मत जाने देना

। राजा ने भी कहा ''इस दीन, कृपण और प्रणाम करनेवाले पर क्रोध करना उचित नहीं है। क्योंकि सत्पुरुषों का क्रोध प्रणाम तक रहता है। इसको छोड़ और स्वरूपस्थ कर । तेरी कोप शक्ति देखी । अब कृपा शक्ति भी बताओ ।'' विप्र ने कहा ''अगर यह नास्तिकता छोड़कर जैनधर्म स्वीकार करे, तो छोड़ता हूँ । नहीं तो नहीं।'' राजा ने उस मर्कट बने राजा को पूछा ''यह कहता है, वैसा करोगे'' उसने चेष्टा से कहा ''यह जैसा कहेगा वैसा सब करूँगा ।'' फिर मायावी विप्र ने औषधि के प्रयोग से उसे रूपस्थ कर दीया । बेड़ियाँ भी तोड़ दी। आदरपूर्वक आसन पर बिठाया । इस प्रकार देखकर कमलप्रभ, कमला आदि सभी हर्षित होकर पद्मरथ को प्रणाम करने लगे । तब लज्जा से नम्र होकर पद्मरथ आँखों से अश्रु गिराता हुआ बोला ''मैं प्रणाम योग्य नहीं हूँ। मैं महापाप युक्त कलंकी हूँ। नहीं देखा और नहीं सुना ऐसे निंदित कार्य मैंने किये हैं । उसका फल मैंने यहाँ ही भोग लिया। कहा है। ''उग्रपाप-उग्रपुण्य का फल शीघ्र मिलता है।'' पुत्री को भिल्ल को देने और उसे अंधी करने रूप पाप का फल मुझे मिल गया । वह जीवंत है या नहीं यह भी मुझे मालुम नहीं । पुत्री हत्या का पाप मुझे खा रहा है और साथ में इस सामान्य विप्र ने मेरे करोड़ों सुभट पास में होते हुए मुझे बंधी बना दिया, बंदर बना दिया। इस पराभव के दुःख को भी मैं सहन नहीं कर सकता। अपने सैनिकों को उसने आदेश दिया 'मेरे लिये चिता सुलगा दो जिसमें प्रवेशकर मैं अपनी जीवन लीला समाप्त कर दूं। तब कमलाप्रभ राजा ने कहा 'हे नरोत्तम! खेद मत करो । यह सामान्य निप्र नहीं है, यह कोई दिव्य पुरूष है, इसको तो समय आने पर जानोगे ।' फिर विप्र ने कहा 'यह पाप का फल कुछ नहीं, पाप का फल तो नरकादि में भोगना पड़ेगा । इस पाप से मुक्त

होना हो तो जैनधर्म स्वीकार करो। अपना राज्य भोगो । रूष्ट प्रिया को मनाओ । पद्मरथ ने कहा 'आप के कहने अनुसार करूंगा। इतने में विजया आयी और कहा "'तूं हि शंकर' इत्यादि समस्या किसकी सत्य हुई? पद्मरथ ने सोचा इसने कैसे जाना? शायद कमला के पास रहने से जाना होगा ।' फिर उसने कहा 'अगर मैं शंकर होता तो मेरी यह स्थिति न बनती । यह सब स्व-स्वकर्म से ही होता है । विजया ने कहा 'तो फिर पुन्य क्यों नहीं करते ? पुत्री का हाल मेरे पति से पूछ' ये सब बता देंगे। राजा ने पूछा, उसने लग्नादि का आडंबर कर कहा । शीघ्र मिलेगी। फिर कहा । इसको और मुझको जानते हो! फिर अपना भिल्लरूप किया । विजया का स्वाभाविक रूप किया । सभा आश्चर्य में गिरि । तब पद्मरथ ने सोचा 'इन कार्यो से यह विप्र कैसे हो सकता है?' पद्मरथ ने कहा "भद्र! जैसे भिल्लरूप किया वैसे स्वाभाविक रूप करो । कितने काल तक हमें मोहित करोगे । माया विप्र ने कहा "जब तुमने अपनी पुत्री को चूर्ण से अंधी की थी । उसे मैंने सज्ज की । उस समय कोप से प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इस राजा को भयंकर सजा देकर प्रतिबोधित न करूँ, तब तक कहीं पर भी स्वस्वरूप में नहीं रहूँगा । विमोह से आपको दुःखी किये । अतः क्षमा करना । अब मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हूई ।" औषधि के प्रयोग से वह स्वरूपस्थ हो गया। हस्तलाघवता के कारण औषधि प्रयोग को कोई देख न सका । उसके अलौकिकरूप को देखकर सभी रोमांचित हुए और सोचा 'जो नाटक इसने किया था, वही यह जयानंदकुमार है।' कमलसुंदरी ने यह बात सुनकर, आकर उसके गले में वरमाला पहनायी। उस समय सभी ने हर्षध्वनि की। हर्ष कोलाहल सुनकर कमला भी वहाँ आयी। विजयसुंदरी माता के चरणों में गिरी। वह भी उसको

गले लगाकर रोने लगी। "हे पुत्री! स्नेहोल्लास से किंचित् जाना था । पर रूपांतर से नहीं जान सकी। आज हमारा जन्म सफल हो गया। हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। तेरे मिलन सुख से विपत्तियाँ दूर भाग गयी। कुमार ने भी सासू को प्रणाम किया। उसने आशीष दी। चारों और हर्षका वातावरण फैल गया । फिर कमला, विजया को लेकर अपने महल में गयी। स्वजन सब विजया को पाकर प्रफुल्लित हुए । कमलप्रभ राजा ने अनेक प्रकार से महोत्सव मनाया । कुमार ने पद्मरथ राजा को अनेक प्रकार से धर्मोपदेश दिया और कहा । "तुमको साक्षात् पुण्य का फल तुमारी पुत्री ने बताया । क्योंकि आपत्ति में फैंकी हुई वह संपत्ति के शिखर पर चढ़ गयी है।" दृष्ट धर्म फल में कौन आदर नहीं करेगा? पद्मरथ राजा ने कहा "कुमार मैं प्रबुद्ध हो गया हूँ। गुरु भगवंत के पास विधिवत् धर्म ग्रहण करूँगा । इस में संशय मत रखना ।" कुमार ने कहा स्वल्प कथन से प्रतिबुद्ध होनेवाले आपको धन्य हैं। दुर्बुद्धि तो अत्यंत उद्यम से भी प्रतिबुद्ध नहीं होता।" कमलप्रभ राजा ने पद्मरथ राजा को वस्त्रालंकार आदि से सन्मानित किया । शुभमुहूर्त में कमलसुंदरी की शादी जयानंदकुमार से कर दी । अनिच्छा होते हुए भी एक देश जबरदस्ती दिया । वह देश उसने कमलसुंदरी को दे दिया । वह पूर्व की रीति अनुसार दानादि देता हुआ समय पसार करता था । पद्मरथ ने अपने जामाता एवं पुत्री को वस्त्रालंकार एवं देश दिया । वह उसने विजयासुंदरी के आधीन कर दिया । थोड़े दिनों के बाद पद्मरथ राजा ने अपने नगर में जाने हेतु आज्ञा मांगी । तब कमलप्रभ राजा एवं कुमार के द्वारा पुनः सत्कार कराया हुआ वह राजा अपनी पत्नी कमला, मंत्री आदि परिवार के साथ अपने नगर को गया । वहाँ सद्गुरु से धर्म समझकर शुद्धभाव से श्राद्धधर्म को स्वीकारकर, उसका

पालन सम्यक् प्रकार से करने लगा। इधर कमलप्रभ राजा ने कुमार की दान शक्ति, वीर्यशक्ति, क्षमा शक्ति आदि से आकर्षित होकर उसका नाम ''क्षेत्रवैश्रवण'' रख दिया। कुमार के प्रभाव से राजा की राज्य लक्ष्मी बढ़ने लगी ।

एकबार जयानंदकुमार चैत्र मास में मित्रों के साथ यथारूचि क्रीड़ा कर रहा था । वहाँ उसने आकाश मार्ग से अनेक विद्याधरों को (देवों के समान) जाते देखा । उसने सोचा 'ये कहाँ जा रहे हैं? तभी एक विद्याधर अपनी पत्नी के साथ वापी के पास उतरा। वह अपनी पत्नी को जलपान करवाना चाहता था। कुमार ने जाकर पूछा । उसने कहा 'नंदीश्वरद्वीप पर शाश्वत अर्हत् चैत्यों को वंदन करने हेतु (अष्टाह्निका महोत्सव करने हेतु) जा रहे हैं। कुमार ने सोचा 'धन्य है इनको जो शाश्वत तीर्थ की यात्रा करने का लाभ प्राप्त कर रहे हैं।' मैं यहाँ क्रीड़ा में व्यर्थ समय बरबाद कर रहा हूँ। फिर महल में जाकर अपनी पत्नियों से कहा ''मैं नन्दीश्वरद्वीप पर जाकर जिन चैत्यों को वंदनकर न लौटूं तब तक तुम दोनों कुलवृद्धाओं के साथ समय बिताना । उन दोनों ने पति की इच्छा को विनयपूर्वक स्वीकार किया। वह पल्यंक पर बैठकर नंदीश्वरद्वीप की ओर चला। जंबूद्वीप की जगती के आगे उसका पल्यंक जाने में असमर्थ रहा। खेचर आगे बढ़ गये। कुमार धर्मान्तराय से खिन्न होकर वापिस लौटा और सोचा 'कहीं गगन गामिनी विद्या की साधना करूँ। इतने में पल्यंक पर से नीचे स्वर्णमय चैत्य देखा तो नीचे उतरा। चैत्य में विधिपूर्वक स्तवना कर बाहर आया । आगे एक नगर देखा । वहाँ उसने हाथ में वीणा, वंशी आदि वाद्य लेकर रूप-यौवन युक्त राजकुमारों को देखा। गीत-नृत्यकला का अध्ययन करते अनेक राजपुत्रों को देखा। उसने नगर में एक पुरूष को पूछा उसने कहा ''यह लक्ष्मीपुर

नगर है। श्रीपति नामक राजा राज्य करता है। उसकी अलग-अलग रानियों की तीन कन्याँ हैं। उन तीनों का विधाता ने उत्तम परमाणुओं को लेकर निर्माण किया है। उन्होंने जैन पंडितों के पास अध्ययनकर चौसठ कलाओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली है। पिता और पाठक के आर्हतत्वपने से वे तीनों धर्म पर पूर्ण प्रीतिवाली हैं। उसमें प्रथमा **नाट्यसुंदरी** ने प्रतिज्ञा की है कि जो जैनधर्म की क्रिया रूचिवाला मुझे नाट्यकला में जीतेगा, उसे ही पति रूप में स्वीकारूँगी। दूसरी **गीतसुंदरी** ने गीतकला में, तीसरी **नादसुंदरी** ने नादकला में मुझे जो जीते उसी के गले में वरमाला पहनाऊँगी, ऐसी प्रतिज्ञा की है। अनेक राजकुमारों ने और श्रेष्ठिपुत्रों ने तथा अनेक अन्य लोगों ने नृत्य, गीत और वीणा वादन का अध्ययनकर महिने महिने में परीक्षा दी, पर तीनों राजकुमारीयों की कला के आगे उनकी कला फीकी ही रही। फिर भी सभी ने प्रयत्न चालू रखा। यह बात सुनकर कुमार ने सोचा भाग्य की परीक्षा यहाँ भी कर ले।' उसने पल्यंक को कहीं छुपाकर वामन का रूप बनाया। नगर में जहाँ अध्यापक अध्ययन करवाता था, वहाँ आया। राजकुमार आदि अध्येताओं ने उसकी हंसी मज़ाक उड़ाते हुए पूछा ''आप कौन हैं? कहाँ से पधारे हैं? आने का प्रयोजन क्या है? तब उसने कहा ''मैं क्षत्रिय हूँ। आप जिस कार्य के लिए आये हैं, उसी प्रयोजन से मैं भी आया हूँ। भाग्य साथ देगा, तो सफलता मिलेगी। अध्येताओंने उसकी मज़ाक उड़ाते हुए कहा ''हे भाग्यशाली! राजकुमारीयाँ आपकी ही राह देख रही थीं।'' पंडितजी से कहा ''पढ़ाओ इसे, जिससे आपको यश-कीर्ति प्राप्त होगी। ऐसा वर कन्याओं को बड़े भाग्योदय से ही मिलता है।'' इस प्रकार अध्येताओं के हास्य वचनों से लज्जित गुरु ने कुमार से कहा ''भाई! तू इन कलाओं के लिए योग्य नहीं है। कुमार ने

एक लक्ष मूल्यवाला एक कंकण गुरु को दे दिया। "धन से संसार में सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।" गुरु ने उसे नाट्यकला सिखानी प्रारंभ की । पर वह पदन्यास भी नहीं जान सका । उछलने कूदने के अलावा वह कुछ न कर सका । विद्यार्थी गण हास्य करने लगे। फिर गुरु ने गीत के लिए कहा तब उसने कहा "यह तो मुझे आता है।" उसने गुरु के कहने पर गर्दभ स्वर में एक गीत की दो कड़ी गायी । सभी छात्र हँसने लगे। "गीत तो अतीव मनोहर है। राजकुमारी इसे ही वरेगी!" दान से संतुष्ट गुरु ने उसे गीत के लिए प्रयत्न करवाया। पर वह निष्फल रहा। फिर वीणा के लिए प्रयत्न करवाया, पर उसमें भी उसने निष्फलता का प्रदर्शन किया। तब गुरु ने उसे कहा "भाई! तू पाठ के योग्य नहीं है।" उसे पढ़ाना बंदकर दिया। तब कौतुकी वामन गुरु पत्नी के पास गया, और लक्ष मूल्यवाला कंकण दिया। उसने पूछा "मेरी भक्ति का कारण क्या? कुमार ने कहा "पाठक मुझे पढ़ाते नहीं हैं। आप उन्हें कहें, कि वे मुझे पढ़ाये। गुरु पत्नि उसकी दान शक्ति से प्रसन्न होकर बोली "मैं अवश्य कहूँगी । वे तुझे पढ़ायेंगे।" गुरु घर आये। पत्नि ने कहा कि "आप उस दानेश्वरी वामन को क्यों नहीं पढ़ाते? देखो, उसने मुझे यह कंकण दिया है।" पंडित ने कहा "मुझे भी उसने ऐसा ही कंकण दिया था। उसके समान दानी एक भी छात्र नहीं है। मैं इसे पढ़ाता हूँ पर उसे कुछ नहीं आता। मैंने अनेक प्रयत्न किये, पर सभी विफल रहे।" पत्नि ने कहा "जैसे भी हो, वैसे उसे पढ़ाओ। इससे गुरु दक्षिणा अधिक प्राप्त होगी।" फिर उपाध्याय ने छात्रों के हास्य से बचने के लिए उसे गुप्त रूप से पढ़ाना प्रारंभ किया। परंतु जिसे पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं थी, वह क्या पढ़ेगा? उसे तो कौतुक करना था । उसने कौतुक के द्वारा समय पूर्ण किया।

परीक्षा का दिन आया । सभी छात्र सज धजकर पाठक से साथ परीक्षा खंड में जाने लगे। वामन भी तैयार होकर आया। गुरु को क्रोड़ मूल्य का हार भेट में देकर बोला "गुरुजी जब सब छात्रों की परीक्षा हो जाय, तब मुझे नाट्यकला के लिए आदेश दें।" गुरु ने उसकी दान कला से खुश होकर "हाँ" कही। सब परीक्षा खंड में आये। प्रथम राजकुमारों ने नाट्यदर्शाया फिर राजकुमारी ने नाट्यकला बतायी। तब वामन ने उसकी नाट्यकला में भूलें बतायी। नाट्यसुंदरी ने कहा "ये भाव भरत शास्त्र में हैं।" वामन ने कहा "ऐसा मत बोल भरतशास्त्र मुझे कंठस्थ है। भरत मुनि ने ऐसे भाव कहीं नहीं कहे।" वामन उस अधिकार के श्लोक बोलने लगा । नाट्यसुंदरी बोली "मुझे विस्मृति हुई होगी।" वामन ने कहा "ऐसे ज्ञानवाली तुझमें विस्मृति संभव नहीं है, परंतु सब की परीक्षा के लिए तुमने ऐसा किया होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। परंतु इस सभा में ऐसे सूक्ष्मज्ञाता कोई नहीं है? इस कथन से कन्या अपनी स्खलना की व्याख्या से प्रसन्न हुई। कन्या के नृत्य से सभा प्रसन्न थी। राजकुमारों की कला से नाट्यसुंदरी की कला अच्छी रही। राजा ने उपाध्याय से पूछा अब कोई छात्र शेष है। तब गुरु ने वामन को बताया। राजा ने सोचा 'यह कुरूप क्या कला बतायेगा?' फिर भी राजा ने कहा "रे वामन! नाट्यकला जानता हो तो बता। यह सभा तुम्हारी कला देखने हेतु उत्सुक है। वह उठा। छात्र हास्य करने लगे। दर्शकों में भी हास्य फैला। पर वामन तो निर्भय होकर उठा, और पंच परमेष्ठि का स्मरणकर नृत्य करने लगा । वादक बाजे बजाने लगे। उसका नृत्य देखकर वादक भी उत्साहित होकर बाजे बजाने लगे। ईष्यालु व्यक्ति भी उसके हाव भाव में कहीं भी दोष निकाल न सके। पंडितजी तो आश्चर्य चकित हो गये । फिर उसने भाले के अग्र भाग पर पुष्प,

पुष्प पर सुई, उस पर पुष्प रखकर नाचा। दर्शक चकित हो गये। नाट्यसुंदरी ने उसके गले में वरमाला पहना दी । उस समय जयध्वनी करने वाले बाजे बजे, गौत्रदेवी ने आकाश से पुष्प वृष्टि की राजा ने भाग्य को धिक्कारा । 'एक को वामन वर मिला। अब दो को तो राजकुमार मिले, तो ठीक।' ऐसा सोचा । फिर गीत एवं वीणा की भी परीक्षा हुई । उन सब में राजकुमार असफल हुए। राजकुमारी जीती। वही वामन दोनों परीक्षाओं में राजकुमारीयों से अधिक रहा । क्रमश: दोनों ने वरमाला पहनायी। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। चारण लोगों ने स्तुति की। तब वामन ने उनको अपरिमित दान दिया । दर्शक और परीक्षक उसकी कला कौविदता, और दान से प्रभावित होकर सोचने लगे। 'ऐसी कलाओं के ज्ञाता को विधाता ने वामन बनाया । धिक्कार है विधाता को।' राजा ने सोचा धिक्कार है इन कन्याओं के भाग्य को। दैव को कौन उल्लंघन कर सकता है?' इस प्रकार चिंता से व्याकुल राजा ने कलागुरु से पूछा "यह वामन कौन है? किस देशका है? कुल कौन सा है?" गुरु ने कहा "राजन्! इसको पूछने पर इसने बताया कि मैं नेपाल देश के विजयपुर नगर का क्षत्रियकुमार हूँ। कला सीखने आया हूँ। इससे अधिक इसका स्वरूप बुद्धिशाली भी नहीं जानता । दिव्यालंकारी और दिव्यदानी यह कला प्रयत्नपूर्वक पढ़ाने पर भी अपने आपको मूर्ख के समान प्रदर्शित करता रहा। परंतु आज तो इसने मुझसे भी अधिक कला प्रदर्शित की है। यह अलक्ष्यस्वरूपवान् महापुरुष दिखाई देता है।" गुरु की वाणी से राजा की शंका शांत नहीं हुई ।

राजकुमार अपनी बेइज्जती से चिढ़कर, वामन के साथ युद्ध कर तीनों कन्याओं को स्वाधीन करने की सोचकर युद्ध का आह्वाहन किया । वामन ने युद्ध में उसके साथ पढ़नेवाले पांचों राजकुमारों

को बांध लिया । तब कन्याओं का पिता भी वामन को पुत्री देना उचित न लगने से युद्ध करने के लिए उद्यत हुआ। तब मंत्रीयों ने कहा "राजन्! ऐसी कला, ऐसा दान, और ऐसा पराक्रमवाला जामाता आपको मिला है। आप हर्ष के स्थान पर खेद क्यों कर रहे हैं। यह वामन रूप स्वाभाविक नहीं हो सकता। किसी कारण से इसने वामन रूप किया है। आपकी कुलदेवी ने पुष्पवृष्टि तीनों बार की है। इससे भी आपको समझना चाहिए कि यह कोई महान् पुरुष है।" इधर चारण लोगों ने विजयी होने पर पुनः उसके गुण गाये। तब उनको दान देता हुआ वह रथ से उतरा । श्वसुर के चरण स्पर्श किये। राजा ने उसे आशीर्वाद दिये। राजा उसे सिंहासन की ओर ले गया। उसे सिंहासन पर बिठाया। सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे। राजा ने कहा "आप कुशल हैं।" तब उसने कहा "राजन्! आपकी कृपा से कुशल हूँ। और यह कला और युद्ध की जीत मेरी नहीं है, परंतु मेरे हृदय में पंच परमेष्ठि मंत्र का सदा वास है। उसी से इनको मैंने जीता हैं।" यह सुनकर जैन धर्म और परमेष्ठि मंत्र के प्रभाव से सभी प्रभावित हुए। फिर बंधियों को वहाँ लाया गया । उनको मुक्त कर दिया । अन्य सैनिक, पशु आदि घात से जर्जरों को, औषधिजल के सींचन से स्वस्थ कर दिये। उसके इस कार्य से अधिक हर्षित राजा ने कहा "वत्स! तूने अपनी कला, दान, पराक्रम, कृपालुता आदि बतायी है। वैसे ही अब तेरा उत्तम रूप भी बताकर हमें आनंदरूपी सागर में स्नान कराओ। फिर उसने अपना अकृत्रिम रूप प्रकट किया । उसे देखकर दूर से आया एक चारण जोर से बोला" "हे क्षत्रवैश्रवण । स्वर्ण की वर्षा करनेवाले भूमि पर मेघवत् सदा जय पाओ ।" तब राजा ने पूछा यह क्षत्रवैश्रवण कौन है? तब पद्मरथराजा की पुत्री के पाणिग्रहण से क्षत्रवैश्रवण नाम तक का वृत्तांत उसने सुना दिया । सभा आश्चर्य चकित हो गयी।

जो हारे थे, वे कुमार भी आनंदित हुए । सभीने मिलकर कहा "हे अलक्ष्य स्वरूपवाले महाभाग! हमको क्षमा करो। कुमार ने अपने द्वारा उत्पन्न दु:ख की क्षमा याचना की । कन्याएँ भी यह वृत्तांत जानकर ज्यादा खुश हुईं । राजा ने कुमार को रहने के लिए महल दिया। एकदिन कन्याओं के पाणिग्रहण की बात की । तब कुमार ने कहा "मुझे कन्याओं की आवश्यकता नहीं है। आप किसी भी कलाविद से इनकी शादी कर सकते हो!" फिर राजा के अत्याग्रह के कारण मौन रहा। शुभमुहूर्त में विवाह संपन्न हुआ । फिर नवोढ़ा के साथ भौतिक भोग भोगते हुए समय व्यतीत करता था । उसके प्रभाव से राजा की राज्यलक्ष्मी भी बढ़ रही थी । पुण्य के प्रभाव से अकेला भी जयश्री को प्राप्त करता हुआ रह रहा था ।

एकबार कुमार क्रीड़ार्थ जा रहा था । वहाँ कुमार ने गर्दभ पर बैठे हुए (बार-बार ताड़ना कराता हुआ) एक पुरुष को वध्यस्थान पर ले जाते हुए देखा । कुमार ने सैनिकों से पूछा । सैनिकों ने कहा "ईश्वर श्रेष्ठि के घर चोरी करते हुए पकड़ा गया है। इसे राजादेश के कारण वध्य के लिए ले जाया जा रहा है।" कृपालु कुमार ने दया कर राजा से उसे छुड़वा दिया । अपने घर ले जाकर उसे स्नान भोजनादि से भक्तिकर पूछा "तुम कौन हो? चोरी क्यों करते हो?" उसने कुमार को पहचान लिया था । डर के मारे नहीं बोल रहा था। कुमार ने अभय दिया तब गद्-गद् वाणी से बोला "मेरा चरित्र अश्राव्य है। मैं क्यां कहूँ?" कुमार ने स्वर से और चेहरे से पहचान लिया कि यह सिंहकुमार है । कुमार ने कहा "भाई! तेरी ऐसी हालत कैसे? तेरा पल्ली राज्य कहाँ गया? तेरे शरीर पर ये घाव कैसे?" वह भी पक्का मायावी था । अपने अपराध को छुपाकर बोला "देवी के मंदिर में तुम्हारे सोने के बाद, मैंने सिंह को देखा । तेरी रक्षा के लिए उसे भगाकर दूर चला गया।

पुनः लौटते हुए मार्ग भूल गया । प्रातः आया तो तू नहीं मिला । मैंने बहुत ढूंढा, पर तू कहीं न मिला । फिर मैं पल्ली में रहने लगा। परंतु महासेन ने मुझसे युद्ध करके मेरी पल्ली ले ली । मुझे बंधिकर पर्वत की गुफा में डाल दिया कर्मयोग से जीवित रहा । रात को वर्षा हुई। चमड़े की गंध से पक्षियों ने आकर चमड़े को काटा । मैं उस बंधन से छूटा । पूरा शरीर घावो से जर्जर हो गया था । फिर भी वहाँ का पर्वत उल्लंघन कर ग्राम, पुर आदि में भिक्षा द्वारा जीवन यापन करता हुआ यहाँ आया । यहाँ भिक्षा भी न मिली। तो चोरी करने लगा। पकड़ा गया । तूने छुड़ाया । तेरा दास हूँ। मैं उऋण कैसे होऊंगा? मैंने ऐसे पाप किये हैं, जिसका फल मैं भोग रहा हूँ।'' कुमार ने उसे सान्त्वना दी। अपने पास रखा । वस्त्रालंकारों से सज्ज किया । यह मेरा बड़ा भाई हैं। ऐसा सब से कहता था । सिंहकुमार मन में उसकी संपत्ति और अपनी विपत्ति से दुःखी था । उसने सोचा 'अब यह दुःखी हो, तो मुझे आराम मिले।' वह वहाँ भी उसे दुःखी करने का उपाय खोज़ने लगा । उसने सोचा 'राजा का विश्वासपात्र बनूं, तो मेरा कार्य सिद्ध हो सकता है।' उसने राजा से परिचय बढ़ाया ।

कुमार की पत्नियों ने उसके लक्षणों से-उसे पहचानकर पति से कहा ''पतिदेव! यह व्यक्ति विश्वसनीय नहीं है।'' कुमार ने उस ओर लक्ष्य न दिया । लोकों में भी आश्चर्य था, कि इस चोर को कुमार इतना महत्त्व क्यों दे रहा है? ऐसे लक्षणोंवाला इसका भाई नहीं हो सकता ।

एक बार राजा ने सिंहासर से पूछा ''कुमार आपको इतना मान क्यों देता है? तब उसने अवसर पाकर कहा ''यह मेरे राज्य में चंडाल का पुत्र है। मैंने उस पर बहुत उपकार किये हैं । मैं बहुत

दानी हूँ, इसलिए राजा ने मुझे निकाल दिया । दान के व्यसन को पूर्ण करने के लिए मुझे चोरी करनी पड़ी है। यह पुण्य के बल से सभी कलाओं में प्रवीण हो गया, ये सारी कलाएँ मैंने ही इसे पढ़ायी हैं। फिर यह मुझसे दूर हो गया । कहीं औधषि को प्राप्तकर यहाँ आया । यह कलाओं में आपकी पुत्रियों को जीतकर मौजकर रहा है। इसने और भी राजकुमारियों से शादी की है।'' उसने संक्षेप में अपने पल्ली राज्य की कथा कही । ''इसने मुझे पहचानकर छुड़ाया । और मुझसे कहा ''मेरी वास्तविकता कहीं प्रकाशित न करना । परंतु आप पर की भक्ति के वश गुप्त बात भी आप को करनी पड़ी। अब आप सोचें विचारें कि क्या करना चाहिए।'' इतना सुनकर क्रोध, विस्मय, खेद से व्याकुल हुए राजा ने उसे जाने को कहा। फिर सोचा 'जगत में मेरी मजाक हो, उसके पूर्व इसे खत्म कर दूं। जिससे मेरी कीर्ति में दाग न लगे । इस प्रकार निर्णयकर अपने विश्वस्त दो सैनिकों को बुलाकर आदेश दिया 'आज रात को इतने बजे राजमार्ग पर अश्व पर जो व्यक्ति आता हो उसे खत्मकर देना। किसी से न कहना। उसको विदाकर, दूसरे आदमी को कुमार के पास रात को तीसरे प्रहर में बुलाने भेजा। आदमी ने आकर कहा ''राज्य की गहन विचारणा के लिए आपको अभी इसी समय आने हेतु कहा है। परराष्ट्र की सेना आनेवाली है, ऐसे समाचार आये हैं।'' ''कुमार उस समय जाने हेतु तैयार हुआ । तब दोनों पत्नियों ने कहा ''ऐसे समय में आपको जाना हमें उचित नहीं लगता । इस समय आप आपके बड़े भाई को भेजो । वे भी आपके ही भाई हैं। तब उसे भी उचित लगा। उसने सिंहसार को जाने के लिए कहा । वह यह सोचते हुए चला कि! आज दोपहर में हुई चर्चा के विषय में और विचारणा करने के लिए मुझे बुलाया है।' मार्ग में सैनिक उस पर टूट पड़े। कोलाहल सुनकर कुमार के सैनिक वहाँ गये।

कुमार से कहा । पत्नियों ने कहा "देखा, विश्वास किया होता तो आज हमारा क्या होता?" कुमार ने आदमियों से उसे लाने को कहा-वे ले आये। अभी वह जीवित था । औषधि जल से कुमार ने उसे स्वस्थ कर दिया । इधर राजा ने अपने आदमियों को खोज़ के लिए भेजा उन्होंने आकर घटना सुनायी तो राजा स्तब्ध रह गया । उसने सोचा 'कुमार को आज ही खत्म करना है। ऐसा निर्णयकर, उसने अपने सैनिकों को कुमार को बांधकर लाने के लिए कहा । सैनिक आये। कुमार के सैनिकों ने उन सैनिकों को मार भगाया । कोलाहल सुनकर कुमार की पत्नियों ने कहा "यह कोलाहल कैसा है?" पहरेदार ने आकर समाचार दिये, कि राजाजी ने आपको पकड़कर लाने के लिए सैनिक भेजे थे। उनको हमारे सैनिकों ने भगा दिये । अब राजा स्वयं आप से युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं। सेनापति आदि, सेना की युद्ध की तैयारी देख मंत्रियों ने राजा के पास आकर पूछा "यह क्या है?" तब राजा ने सिंह के द्वारा कहा हुआ वृत्तांत मंत्रियों से कहा । मंत्रियों ने कहा "खल पुरुषों पर विश्वास आपने कैसे किया? वामन रूप में राजकुमारों को बंधन में डालनेवाला क्या चंडाल हो सकता है? आप विचारें। यह आपके लिए भी राजकुमारों जैसी स्थिति बनायगा तब आपकी इज्जत रहेगी या जायगी? इस पर भी आप सोचें । आप हमारा और प्रजा का हित चाहते हैं तो इस संदर्भ से दूर हो जाय" "तब राजा ने कहा" "तो आप उसके पास जाकर कुलादिकी पृच्छा करके आओ ।" मंत्रियों ने कुमार के पास आकर पूछा, तो कुमार ने कहा "मेरा कुल संग्राम में जाना जा सकता है । राजा, राजा का सैन्य और सामने मैं अकेला । मेरी दो भुजाएँ मेरे शस्त्र ।" मंत्रियों ने राजा को कहा । राजा दुविधा में पड़ा । 'क्या करूं? यह तैयारी रोक दूं, तो इज्जत जाती है। युद्ध में विजय की कोई संभावना नहीं।' मंत्रियों ने कहा

'आप कहो तो हम कुमार को समझाकर आपके पास ले आयें। वह सरल है। तभी तीनों पुत्रियाँ आयीं । पुत्रियों ने पिता से पूछा यह क्या है? तब पिता ने सिंहसार का कहा हुआ विवरण कहा। तब पुत्रियों ने कहा "पिताजी! आपके जामाता दिव्य प्रकृति, उत्तम सत्य, शौर्य, धैयादिगुणवाले, चक्री लक्षण युक्त, अगर अकुलीन होंगे, तो कुलीन कौन होगा? आप दुष्ट पुरुषों की वाणी से भ्रमित न हों। सर्वार्थ साधक चिंतामणि समान प्राप्त जामाता को अविवेक से क्यों प्रतिकूल कर रहे हो?" राजा ने कहा "तो तुम किसी भी प्रकार से अपने पति के कुल, वंश आदि ज्ञातकर आओ । पुत्रियों ने आकर अपने पति से स्नेह, विनय एवं भक्तिपूर्वक कुल पूछा, तब उसने कहा मेरे भाई सिंहसार से पूछ लो । तब तीनों ने कहा "पतिदेव! इस दुष्ट ने ही तो आप पर चंडाल पने का आरोप लगाया है।" पत्नियों ने पिता द्वारा कथित सारा वृत्तांत सुनाया । कुमार ने सोचा यह इतना दुष्ट है? इतने सत्कार का यह परिणाम? मैंने तो इस पर कोई द्वेष नहीं किया ।' कुमार ने कहा-यह औषधि ले जाकर किसी पुतली के मस्तक पर रखना। उससे जो पूछना हो, वह पूछना । वह सब सही सही कह देगी। तब पत्नियाँ पति से औषधि लेकर राजा के पास आयी। सभी लोगों के सामने एक पुतली के मस्तक पर औषधि रखी। उसने कहा-विजयपुर का राजा विजय उसका यह जयानंद नामका पुत्र है। सबने जय-जयकार की। राजा ने कुमार से और पुत्रियों से क्षमा याचना की। राजा ने एकबार मंत्री से कहा "यह इंद्रजाल तो नहीं है। कहीं पंचालिका बोलती सुनी है?" मंत्री ने कहा "राजन्! "मणि-मंत्र औषधि का प्रभाव अचिन्त्य है। फिर भी आप शतबुद्धि मंत्री के पुत्र चंद्रबुद्धि को वहाँ भेजकर निर्णयकर लीजिएगा । वह वहाँ ज्योतिषी बनकर गया । राजा ने पूछा "आप कौन है?" उसने कहा "मैं सुरंगपुरवासी अष्टांग निमित्त का ज्ञाता

हूँ तीनों काल की बातें बता सकता हूँ तब राजा ने जयानंदकुमार के विषय में पूछा, तब उसने जयानंद के विषय में सारी बातें कहीं। अब वह सिंहसार के साथ लक्ष्मीपुर नगर में हैं।'' राजा ने उसे अधिकाधिक पारितोषिक देकर विदा किया। फिर प्रधान पुरुषों को जयानंदकुमार को बुलाने हेतु पत्र लिखकर भेजा। पत्र में लिखा था॥

''हे राजन्! हमारे जीवन समान हमारा पुत्र जयानंदकुमार आप के वहाँ सुखपूर्वक है ऐसा निमित्तज्ञ से जाना । आपका हम पर महान् उपकार है, कि आपने हमारे पुत्र को महान् उन्नत्ति करवायी है। आज से आप हमारे तीसरे भाई हो । अब हमारा निवेदन है कि जयानंदकुमार को शीघ्र भेजकर, हमारे चक्षु युगल को तृप्त करने का पुण्योपार्जन करें ।''

उन्होंने कुमार का पत्र उसे दिया । कुमार ने पत्र पढ़ा । पत्र में लिखा था । ''हे वत्स! हमारे और इस राज्य के जीवितव्य तुम ही हो। तू खल सिंहसार के साथ किसी को कहें बिना चला गया। नीच का संग ठीक नहीं । उन्नति के शिखर पर चढ़ा तू हमें भी भूल गया है। हम तेरे वियोग में दिन वर्ष के समान व्यतीत कर रहे हैं। अब हमें संतुष्ट करने के लिए हमे देखकर पानी पीना ।''

इस प्रकार लेख का भावार्थ ज्ञातकर उसने सोचा 'धिक्कार है मुझे । मैं माता-पिता के लिए दुःखदायक बना । वृक्ष, पत्र पुष्प से पल्लवित होकर पथिक को विश्राम देता है, और मैं संपत्तिवान बनकर भी माता-पिता को सुख के स्थान पर दुःखकर हुआ हूँ। अब मैं जाकर माता-पितादि परिवार को सुखी करूँ। यह निर्णयकर उसने अपनी पत्नियों से कहा । पत्नियोंने पति की बात का समर्थन किया ।'

पहरेदार ने राजा को ये समाचार दिये । श्रीपति राजा ने

सोचा कुमार तो स्वजनों को मिलने के लिए चला जायगा । मैंने इसके साथ कैसा व्यवहार किया? मैं इस चिंतामणी रत्न समान पुरुष को पहचान न सका । इसको मारने के लिए तत्पर हुआ । मुझ जैसा पापी कौन? मुझे जीने का अधिकार भी नहीं हैं। ऐसा सोचकर स्वयं की जीवन लीला समाप्त क़रने के लिए तलवार उठायी । मंत्री की चतुर नजर ने उसकी मानसिक स्थिति जान ली। शीघ्र ही गर्दन पर उठायी हुई तलवार पकड़ ली। मंत्री ने कहा "क्या कर रहे हो?" राजा ने कहा "मुझ जैसे पापी के लिए मृत्यु के बिना कोई शुद्धि नहीं है ।" मंत्री ने कहा-"राजन्! पाप की शुद्धि मृत्यु से नहीं होती । शुद्धि तो तप से होती है । सद्गुरु दर्शित प्रायश्चित्त से आत्मशुद्धि कीजिए।" फिर भी राजा का मन शांत न हुआ । उसने भोजन करने को भी मनाकर दिया। राजा पलंग पर पड़ा रहा । रानियाँ भी उदास हो गयी। ये समाचार पुत्रियों को मिले । वे भी वहाँ आयी। राजा को कहा "इस में आपका दोष नहीं है। दोष उस नीच का है। पिता ने कहा पुत्री! मैं तुम्हें मुँह दिखाने लायक नहीं रहा हूँ। मैंने मेरी पुत्रियों के वैधव्य का भी विचार नहीं किया । मैं तुमको और जामाता को मुख दिखाने लायक नहीं रहा ।" पुत्रियों ने कहा "पिताजी! आपका तो हम पर अत्यंत उपकार है आपने हमें पाला, पोसा, पढ़ाया, प्रतिज्ञा पूर्ण करवायी, यह सब आपकी कृपा का फल है और भ्रांति में तो कई विद्वान भी भूल जाते हैं।" पुत्रियों ने अपने पति को भेजा। जयानंदकुमार ने भी आकर श्वसुर राजा को मधुर शब्दों से समझाया। और स्वकार्य में प्रवृत्त होने का अनुरोध किया । राजा ने कहा "कुमार! इस जगत में तुमारे समान विवेकी और मुझ समान अविवेकी कोई नहीं होगा। अब तुम्हारे कथन से मैं सब कार्य व्यवस्थित करूँगा । आप खल संसर्ग मत करना । कुमार "ओम्" कहकर राजा को नमस्कारकर अपने स्थान

पर आया। राजा भी स्नान, भोजन और राज्यकार्य में प्रवृत हुआ । राजा की नजर सतत् गुर्वागमन की ओर रही ।

राजा ने सिंहसार को गर्दभ पर आरोहण करवाकर वध का आदेश दिया । कुमार ने करूणाकर सिंह को छुड़वाया । पिता को मिलने की उत्कंठा होते हुए भी राजा के आग्रह से रूका और सिहंसार को वहाँ भेजा । साथ में पत्र लिखा कि "यहाँ के राजा के अत्यनुरोध से मैं कुछ दिनों पश्चात् आ सकूंगा । उस समय तक राज्य योग्य सिंहसार को भेजा है। आप मेरा अपराध क्षमा करें । मेरा शत-शतवंदन स्वीकार करें ।" जय राजा ने सोचा मुझे तपश्चर्या करनी है, भाई राज्य लेता नहीं। योग्य कुमार आया नहीं । अब इसे ही राज्य देकर आत्महित कर लूं । वैसा ही किया । विजय पुत्र के मिलने की आशा से संसार में रहा । जय महाजट तापस के पास रत्नजट नाम से तापस हुआ ।

इधर श्रीपति राजा ने राज्य चिंता से मुक्त होकर काफी समय धर्मकार्य में व्यतीत किया । एक दिन उद्यान पालक ने आकर कहा कि आपके उद्यान में धर्मप्रभसूरीजी पधारें हैं। राजा गुर्वागमन से आनंदित होकर उसे पारितोषिक देकर विदा किया । स्वयं कुमार, मंत्रीगण, श्रेष्ठिगण और प्रजा सहित देशना सुनने गया । गुरु भगवंत ने भव भयवारक देशना दी। देशना श्रवणकर अनेक भव्यात्माओं ने प्रतिबोध पाकर जैनधर्म स्वीकार किया । किसीने, सम्यक्त्व किसीने देशविरति आदि व्रत यथा शक्ति ग्रहण किये । राजा ने सोचा मैं बाह्य शत्रु और मित्र को पहचान न सका, तो अंतरंग को कैसे पहचानूं अब इनको जानने के लिए मुझे जैनी दीक्षा ही लेनी है, जिससे सभी शत्रुओं से मुक्त हो सकूंगा । ऐसा निर्णयकर गुरु भगवंत से कहा "मैं राज्य की व्यवस्थाकर के आपके पास दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। आप यहाँ ठहरने की कृपा करावें।

गुरु ने कहा'' ''अपनी इच्छा पूर्ण करने में किसी का प्रतिबंध स्वीकार मत करना ।'' राजा ने महल में आकर, राजवर्ग को समझाकर, पुत्र के अभाव से कुमारेन्द्र का राज्याभिषेककर, कुमार द्वारा किये गये निष्क्रमणोत्सव पूर्वक चारित्र ग्रहण किया । जयानंद राजा और प्रजा गुरु भगवंत और नये साधु-साध्वियों को वंदनकर यथास्थान आये। श्रीपतिमुनि सिद्धान्त का अध्ययनकर गीतार्थ हुये। बारह प्रकार के तप द्वारा कर्मक्षय करते हुए गुरु ने आचार्यपद दिया। उनके साथ प्रव्रजित मुनियों का परिवार उन्हें सोंपा । वे श्रीपति आचार्य पृथ्वीतल पर अनेक भव्यात्माओंका कल्याणकर केवल पाकर मोक्ष गये ।

जयानंद राजा विविध देशों को जीतकर राज्य संपत्ति और धर्म संपत्ति की वृद्धि करता रहा । अनेक लोगों को जैनधर्म प्रति श्रद्धावान बनाता हुआ समय व्यतीत कर रहा था। उद्यानपालक ने आकर एकदिन कहा ''आपके पिताजी अल्प परिवार सहित उद्यान में पधारे हैं। सुनते ही उसे दान देकर पैदल ही पिताजी को लेने चला । उद्यान में जाकर हर्षाश्रु द्वारा उनके चरण प्रक्षालन किये । उन्होंने उसे गाढ़ आलिंगन देकर मस्तक सूंघा । जननी ने भी सतशः आशीर्वाद दिये । परस्पर कुशल प्रश्न किये गये । यह सुनकर तीनों पुत्र वधू भी वहाँ आयी । सास-ससुर के चरणों में नमस्कार किया। दोनों ने उनको भी आशीर्वाद दिये । फिर महोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करवाया । पिता का छत्रधर पुत्र हुआ । राजसभा में बिठ़ाकर स्वयं पादपीठ पर बैठ़कर चरणों में प्रणाम किया । राजसभा भी अपने राजा के विनयगुण से अत्यंत खुश हुई । प्रजा ने प्राभृत रखा। फिर अर्हत् पूजा, भोजनादि से निवृत्त हुए । अवसर पाकर कुमार ने पिता से पूछा ''आपका आकस्मिक आना कैसे हुआ!'' पिता ने अश्रुपूर्वक कहा ''मेरा भाई सिंह को राज्य देकर तापस हुआ । उसके साथ

जाने की इच्छा करने पर मुझे सिंह को हितशिक्षा देने और राज्य की रक्षा के लिए आग्रहपूर्वक रखा और तापस होने न दिया । मैं भी तुझे मिलने की इच्छा से रहा । सिंह मुझ पर माया पूर्ण विनय भक्ति बताता था । मैं मायावी की माया जान न सका । एकदिन उसने गुप्त मंत्रणा के लिए बुलाकर मुझे कैद किया । तेरी माता को, मेरे विश्वसनीय सैनिकों को भी कैद कर दिया। हम दोनों को एकस्थान पर रखे । सुरदत्त वीरदत्त किसी प्रकार भागकर धीरराज के घर रहे। वहाँ रहकर उन्होंने सुरंग खुदवाने का कार्यकर उस कारागृह से हमें मुक्त किया । वहाँ से हम यहाँ आये । मार्ग में सभी मेरे भक्त थे, अत: हमें कोई कष्ट नहीं हुआ । कुमार ने सोचा 'उपकारी पर भी कैसी दुर्जनता!' उन तीनों को बुलाकर वस्त्रालंकार और पृथक्-पृथक् ग्राम नगर आदि देकर सम्मान किया । फिर सोचा ''सिंह को मैंने राजा बनाया अब मैं ही उसको कैसे राज्य भ्रष्ट करूँ?'' इसलिए लेख लिखकर मेरे स्वजनों को छोड़ने के लिए लिखूं । न माने, तो फिर उसका निग्रह करने में कोई दोष नहीं । क्योंकि दूध बिगाड़नेवाले स्वयं के श्वान को क्या ताड़ा नहीं जाता? ऐसा विचारकर दूत के साथ लेख भेजा । लिखा कि मेरे स्वजनों को शीघ्र सम्मान पूर्वक छोड़ दे, मेरे पिता का लूटा हुआ सर्वस्व दे दे, नहीं तो मुझे तेरा निग्रह करने के लिए आना पड़ेगा। पत्र पढ़कर उसने विजय के देश, विजय की संपत्ति और उसके स्वजन सब को मुक्त कर दिये। विजय ने अपने देश और संपत्ति स्वजनों को दे दी। एकदिन पिता के पूछने पर उसने घर से निकलने से प्रारंभकर आज दिन तक जो जो घटनाएँ जैसी हुई थी पिता के सामने वर्णित की । उस समय कई लोगों ने बातों को सुनी । सुनने-वालों ने आश्चर्यकर वे बातें अनेकों को सुनायी । इस प्रकार जगत् मैं जयानन्दकुमार का चरित्र वर्णित होने लगा ।

एकबार कुमार ने विजयराजा का आग्रहपूर्वक राज्याभिषेक करवाया । राजा ने कुमार को युवराज बनाया । अपने पिता की आज्ञा लेकर कुमार देश जीतने चला और आस-पास के जो राज्य उसके आधीन नहीं थे, उन सब को जीतकर पिता के चरणों में आया । फिर श्रीविशालपुर आदि देशों के राजा अपने जामाता की प्रख्याती सुनकर अपनी-अपनी पुत्रीयों को ले आये। सभी का सत्कार किया गया । एकबार पिता श्वसुर आदि राजाओं के साथ जयानंदकुमार परदेश से आयी एक नाटक मंडली का नाटक देख रहा था । उसमें एक नटी जब पद्मरथ भूपाल की दो कन्या एक भिल्ल को दी दूसरी राजकुमार को दी । वह गानेवाली है, ऐसे भावार्थ के गीत गाने लगी । और उसे रोना आ गया। सुकंठ नामके मुख्य स्वामी ने कहा "यह क्या कर रही है। यह समय तो इनाम पाने का है।" उसने रोना रोककर एक दोहा कहा "कहाँ पद्मपुर, कहाँ पद्मरथ, विजया आज्ञाभंगकरी भिल्लको दी, और जयसुंदरी गायन गा रही है।" इस आशय का एक दोहा बोली! पद्मारानी उसे पहचान गयी। माँ बेटी मिली । पूछा तब उसने कहा "हे पिताजी! मैं पुंदरपुर नरकुंजर पति के साथ ससुराल गयी । वहाँ एकदिन हम क्रीड़ा के लिए उद्यान में गये। वहाँ महासेन पल्लीपति ने हमला किया । नरकुंजर युद्ध में हार गया और भागा । पल्लीपति केलिगृह में से मुझे पकड़कर ले गया । उसने मुझे पत्नी बनाने हेतु प्रयत्न किया। मैं तीन दिन उपवास में रही । उसकी पूर्व पत्नि ने मुझे औषधि रूप में भोजन में चूर्ण दिया, जिससे मुझे जलोदर हो गया । पल्लीपति ने एक दिन आये हुए सुकण्ठ के गीत से रंजित होकर उसे मुझे दे दी। वह रूप लुब्ध नीरोग होनेकी आशा से ले गया। पद्मखंड पत्तन में सुमति वैद्य के द्वारा मेरा शरीर नीरोग हुआ । उसने मुझे

प्रेमिका करके गीत सिखाये। मैं पहले भी पति के साथ गीत गाया करती थी। अब मेरे गीत गान द्वारा सुकण्ठ धनवान हो गया । यहाँ भी हम इसीलिए आये थे । पिता को देखकर मैंने मेरी कथा गीत के माध्यम से कही । फिर उसने पिता से पूछा "विजयसुंदरी कहाँ है?" पिता ने कहा "वह भिल्ल नहीं था। उसने अपने भाग्य की परीक्षा के लिए वैसा रूप बनाया था । वही यह जगज्जयी जयानंद राजा है। इसके पास में बैठी सर्व सतियों में उत्तम विजयासुंदरी तेरी बहन है।" पद्मरथ ने अंगुली से निर्देश किया । जयसुंदरी उसके पास जाने लगी । विजयसुंदरी अपने स्थान से उठ्कर बड़ी बहन को गले से लगाकर रोने लगी तब जयसुंदरी ने कहा 'तुझे धन्य है। शुद्धशील के प्रभाव से, देवगुरु धर्म के महात्म्य से तुझने ही तात्त्विकी समस्या पूर्ण की और उसका फल भी प्राप्त किया । मैंने तो नास्तिकता से पिता को खुश करने के लिए समस्या पूर्ण की, तो उसका फल मुझे मिला । पुण्य-पाप के लिए तो हम दोनों का उदाहरण उत्तम है। यह सुनकर जय राजा ने सभी राजाओं को धर्म-अधर्म के स्वरूप को समझाया । सभीने आर्हत् धर्म की प्रशंसा की।'

जय राजा ने सुकंठ को मन चाहा धन देकर, जयसुंदरी को उससे छुड़वाकर, नरसुंदर को उसके नगर से बुलाकर, उपालंभ पूर्वक उसे दी । वह भी लज्जा के कारण" वहाँ से शीघ्र अपने घर गया। थोड़े दिन सभी राजा वहाँ रहकर अपने-अपने नगर में गये । जयानंदकुमार राज्यचिंता पिताजी को सौंपकर स्वयं धर्म क्रिया के साथ केलिक्रीड़ा भी करता था । वसंतऋतु में क्रीड़ा करने गये कुमार को एक भिल्ल व्याघ्र चर्म के वस्त्र पहने हुए, श्वान को रस्सी से बंधा हुआ लेकर, वहाँ आकर, प्रणाम किया । जयानंद *राजा ने पूछा "तू कौन है?" उसने कहा "यमदुर्गनामक पल्ली*

में चण्डसिंह पल्लीपति के दो पुत्र सिंह और व्याघ्र हैं। पिता की मृत्यु के पश्चात् दोनों भाई राज्य का विभाजन करके रहने लगे। सिंह ने छोटे भाई का राज्य और पत्नी बलात्कार से ले ली । मैं व्याघ्र दुःख से घूमता हुआ यहाँ आया हूँ। मेरा भाई सिंह यहाँ आकर वन में क्रीड़ा कर रहा है। हे राजन्! दुर्बलों की शक्ति राजा है, ऐसा सोचकर मैं तेरे पास आया हूँ। सेना का कोलाहल सुनकर वह भाग जायगा । अतः आप अकेले आकर उसे हराकर, मेरी पत्नी को छुड़वाकर, मेरा राज्य मुझे दिला दो । ऐसा सुनकर किसी को कहे बिना उस भिल्ल के साथ कुमार तलवार लेकर चला गया ।'' भिल्ल ने कहा ''मैं आगे चलने मैं ड़रता हूँ आप आगे चलिये, वह यहाँ है ।'' कुमार ने सिंह को खोज़ा पर न मिला । पीछे देखा तो भी वह भी न मिला । तब उसने सोचा 'इंद्र जाल होगी।' तभी आकाश से एक विद्याधर उतरा। राजा को प्रणामकर बोला ''राजेन्द्र! विकल्प न करें । भिल्लरूपादि माया मैंने की है। कारण सुनो ''वैताढ्य की दक्षिणश्रेणि के पचास नगरों में रथनुपुर चक्रवाल पुर है। वहाँ दक्षिण श्रेणि के विद्याधरों को मान्य पवनवेग नामक मैं राजा हूँ । मेरा वज्रवेग नामक पुत्र है। वज्रवेग ने अनेक विद्याएँ सिद्ध की हैं। वह हेमगिरिशृंग पर हेमपुर में सपरिवार क्रीड़ा करता है। वहाँ योगिनियों के रहने का स्थान जालंधरा नामक पत्तन है? उनकी स्वामिनी कामाक्षा है। वह उसके आराधकों पर प्रसन्न हो जाय तो वे ६४ उसकी सेवा में रहती है। उनमें अनेक शक्तियाँ है। क्रोधित हो जायँ, तो कष्ट भी दें । उन योगिनियों का हेमगिरिपर्वत क्रीड़ा स्थान है। वज्रवेग उनको वश करने के लिए ज्वालामालिनी विद्या साधने हेतु महाज्वालादेवी की होम हवन से पूजाकर मंत्र जाप करने लगा । योगिनियों ने यह जानकर सातवें दिन आकर प्रतिकूल उपसर्ग किये। वह क्षोभित

नहीं हुआ । फिर अनुकूल उपसर्ग में हावभाव मधुरवचन, नाट्य आदि से वह परवश हो गया ध्यान से चलित होते ही उसे बांधकर, वे अपने महल में ले गयी । उसको विड़ंबित करती हैं। लोगों के मुख से जानकर, उनकी पूजादि से अनेक प्रकार की भक्ति की, पर वे नहीं मानती । इधर उत्तरश्रेणि में सर्वविद्याधरों का राजा चक्रायुध है। उसे समर्थ जानकर उससे प्रार्थना की कि मेरे पुत्र को छुड़वाओ ।" वह भी छुड़वाऊँगा, छुड़वाऊँगा ऐसा कहता है। परंतु कार्य करता नहीं मेरी एक पुत्री है 'वज्रसुंदरी' । वह जैनधर्म पर रूचिवाली है। वह नाट्यकला में भी रूचीवाली है। इसके गुणों को श्रवणकर चक्रायुध ने मेरी पुत्री की याचना की। मैंने तीन गुना अधिक वयवाला और बहु पत्नित्ववाला जानकर पुत्र विरह के दुःख में उसे समाचार भेजे कि मेरे पुत्र को योगिनी के बंधन से छुड़वाने के पूर्व मैं विवाहादि कोई कृत्य करना नहीं चाहता । आप उसको छुड़वाने का प्रयत्न कीजिए ।" कुछ दिनों के बाद मेरी सभा में एक निमित्तज्ञ आया । उसको पूछने पर उसने कहा कि, जो पद्मरथ भूप को बांधकर धर्मी बनायगा, श्रीपति राजा की तीनों पुत्रीयों को शर्त में जीतकर उनसे पाणिग्रहण करेगा, वही तेरे पुत्र को छुड़वाएगा । तेरी पुत्री की शादी भी उससे होगी। ऐसा सुनकर मैं आपको खोज़ता-खोज़ता यहाँ आया हूँ। शायद आपको पिता अनुमति न दे। इस कारण भिल्ल का रूप बनाकर मैं आपके यहाँ ले आया। हे राजन्! मेरे पुत्र को छुड़वाओं। संत पुरुष सदा उपकार ही करते हैं। आपके जैसे महामानव जगत पर उपकार के लिए ही रहते हैं।" जयानंद राजा ने सोचा 'परोपकार का अवसर परम भाग्य से प्राप्त हुआ हैं।' "एक ओर परोपकार का पुण्य, दूसरी ओर सभी पुण्य" उसने कहा "मैं आपके साथ आ रहा हूँ। वे वैताढ्यपर्वत पर आये । जय राजा को एक व्यक्ति

के साथ समाचार भेज दिये। पवनवेग ने जयानंद से कहा "हे राजन्! योगिनी को वश करने के लिए 'ज्वालामालिनी' विद्या को साधनी आवश्यक है।" उसे विधि बतायी । तब उसने कहा "लाखों बिल्वादिका होम सावद्य क्रिया है। उसकी कोई आवश्यकता नहीं । मैं धूप दीपादि की पूजाकर साधना करूँगा। फिर शुभ समय में देवी के सामने निरवद्य सामग्री से पूजाकर पूर्वाभिमुख दर्भासन पर बैठकर पंचपरमेष्ठि के द्वारा जाप प्रारंभ किये ।

योगिनियाँ दूसरे दिन से उपसर्ग करने लगी । सर्पोद्वारा दंश, हस्तियों द्वारा दांतो से, व्याघ्रों के नखों से पीड़ा पहुँचायी, पर ध्यान से चलित न हुआ । धूम, अग्नि आदि, तर्जना, ताड़ना आदि से भी चलायमान न हुआ । फिर अनुकूल उपसर्ग किये । स्त्रियाँ बनकर हाव भाव बताकर आकर्षित करना चाहा । आलिंगन आदि से, नृत्यादि से भी वह चलायमान न हुआ । सातवें दिन उस पर पुष्प वर्षा करती महाज्वालादेवी प्रकट हुई । उसे देखकर योगिनियाँ भाग गयी । देवी ने कहा मैं तेरे शील, ध्यान से प्रसन्न हूँ। पर पूजा के बिना वरदान नहीं दे सकूंगी । उसने कहा "कौन सी विधि?।" देवी ने कहा एक "प्राणिका मांस ।" उसने कहा "निरपराधी प्राणी को मैं नहीं मारता । आप कहे तो मेरा मांस दे दूं । तब उसने कहा "दो" । कुमार ने तलवार उठायी । जंघा छेदने लगा । देवी ने तलवार छीन ली। कहा "मैं तेरे सत्त्व और दयाभाव से संतुष्ट हूँ। यह पाठ सिद्ध विद्या ले ।!" योगिनियों को आकर्षित करने के लिए आकर्षिणी विद्या, सूर्य हास असि, चक्र, शक्ति और त्रिधा उपद्रव नाशक अंगद, (एक प्रकार की शक्ति) आदि दिये और कहा "हे वत्स! लाखो बिल्व फलों से पूजा, प्राणि मांस से पूजा, होम हवन से भी मैं बड़ी कठिनता से सिद्ध होती हूँ । परंतु तेरे सत्त्व, शील और पुण्य से अल्प प्रयास से सिद्ध हो गयी हूँ । फिर उसने

उसके शरीर में प्रवेश किया, जो स्मरण करने पर सर्व इच्छित देती है। फिर जयानंद देवी की मूर्ति की पूजाकर देवगृह से बाहर आया। पवनवेग ने जयानंद राजा का स्वागत किया । जयानंद राजा ने जिनदेव गुरु की सेवा पूजाकर उत्तम आहार से पारणा किया । फिर पवनवेग ने आकाशगामिनी आदि अनेक विद्यायें दी । कुमार ने भी उन विद्याओं को अल्प प्रयास से सिद्ध कर ली । जयानंद राजा जालंधर पत्तन में आया । योगिनियों को बुलाकर कहा ''पवनवेग के पुत्र को छोड़ दो । नहीं तो मैं तुमको नहीं छोड़ूंगा ।'' उसके अंगद के प्रभाव से उन्होंने कहा ''हमें छोड़ो हम उसको छोड़ देंगी।'' फिर उन्होंने उसे लाकर जयानंद के सामने रखा । पिता के कहने से उसने कुमार को प्रणाम किया ।

योगिनियों ने जयानंद से अतिथि होने के लिए प्रार्थना की। वह उनका अतिथि रहा । वह वाराह्य भवन की दिव्यशय्या में निःशंक सोया । योगिनियों ने अपनी स्वामिनी 'कामाक्षा' को सब वृत्तांत कहा । उसने कहा ''मैं अभी उसे मोहित करती हूँ।'' वह वहाँ आयी । उसने अनुकूल उपसर्गकर अनेक प्रयत्न किये । पर वह शीलवान् दृढ रहा। उसने प्रसन्न होकर उसे वज्रसमान लोहमुद्गर, अक्षय तूणीर, वज्रपृष्ठ धनुष्य, आग्नेयशस्त्र, नागपाश आदि अनेक दिव्यशस्त्र दिये । किसी भी प्रकार का रोग न हो ऐसा नैपथ्य दिया, मरकी आदि उपद्रव निवारक मुकुट, ज्वरनाशक कुंडल, कुष्ठादिनाशक कंठाभरण, वशीकर हार, कटीसूत्र आदि अलंकार दिये। विषहर मुद्रा, शाकिनी आदि दोषनाशक केयूर घातादिव्रणनाशक माणिक्य' तुष्ट देव क्या न दे? राजा ने उसे प्रणाम किया । जाकर योगिनियों से कहा ''ऐसा सत्पुरुप सभी प्रकार से आराध्य है। ऐसों का सत्कार शीघ्र फलदायक होता है। योगिनियों ने आकर पुनः पुनः क्षमायाचना कर दिव्य वस्त्राभरण आदि दिये । फिर वज्रवेग ने भी उन योगिनियों की

भक्ति की। उन्होंने तुष्ट होकर उसे 'हेमकूटगिरि' दिया। फिर जयानंद, पवनवेग वज्रवेग आदि विद्याधर सभी हेमपुर में आये । इधर योगिनियाँ जयानंद के शीलधर्म से आकर्षित होकर उसके गुणगान गर्भित गीत, रास आदि बनाकर गाती रहती थी ।''

एकदिन जयानंदकुमार ने पवनवेग से जाने के लिए आज्ञा मांगी । पवनवेग ने सोचा 'यह कन्या के पाणिग्रहण की इच्छा नहीं करेगा । परंतु मुझे कन्या देनी है इसे ही। अब मैं इसे जिनदर्शन पूजन के निमित्त से रोक लूं ।' पवनवेग ने कहा ''इस वैताढ्यपर्वत पर अनेक शाश्वत जिनबिंब है। उनकी पूजा भक्ति तो कर लीजिए। वह भी इसके लिए तैयार हो गया, तभी एक विमान आया। उसमें से एक विद्याधर उतरा । उसने जयानंद को प्रणाम किया। उसने पूछा 'तुम कौन हो? यहाँ आने का कारण क्या? वह उत्तर देना प्रारंभ करे उसके पूर्व पवनवेग ने कहा ''ओ! खेचर राज! चंद्रगति! तुझे बहुत समय के बाद देखा है। शोक मय क्यों है? हे दक्ष! इस राजा को कह दे । यह वीर है । सभी के दुःख हरण करनेवाला है । ऐसा सुनकर उस विद्याधर ने कहा''

''हे प्रभु! मेरा वृत्तांत सुनो । इस वैताढ्य की दक्षिण श्रेणि में चंद्रपुर का मैं चंद्रगति नामका राजा हूँ। मेरी प्रिया चंद्रमौलि गौरी रंभा के समान स्वरूपवान है। एक पुत्री चंद्रसुंदरी है। उसके योग्य विद्याधर कुमार देखे, परंतु कोई न मिला । एकबार मैं मेरी पत्नि के साथ मान सरोवर पर क्रीड़ा करता था । उस समय उसका अपहरण हो गया । मैं युद्ध करने पीछे दौड़ा । उसने मेरे मस्तक पर वज्राघात सम मुष्टि प्रहार किया। मैं नीचे गिर गया। फिर उस को खोजा, पर न मिला। फिर चक्रायुध विद्या के बल से उसे खोजेगा, इस आशा से उसे कहा, परंतु उसने भी कोई प्रयत्न न किया । पुरुषों के भाग्य फलते हैं, स्वामी की सेवा आदि नहीं । एकबार मैंने मेरे नगर के

उद्यान में एक चारण श्रमण मुनि को मेरी पत्नी मुझे मिलेगी या नहीं?'' एसा पूछा तब उन्होंने कहा ''हे भद्र! हमारे पूर्वभव सुन।''

''भरतक्षेत्र में, सिद्धपुरनगर में, जिनधर्मी पूर्णभद्र श्रेष्ठि था। उसके कोशल-देशल दो पुत्र थे। वहाँ श्रावक गुणदत्त की गुणमाला पत्नी से गुणसुंदरी पुत्री थी। वह भी धर्मानुष्ठान में रूचिवाली थी। उसके गुण से आकर्षित होकर, राजा के मंत्री सागर ने याचना की। गुणदत्त ने 'मेरी पुत्री मिथ्यात्वी को नहीं दूंगा।' ऐसा कहा। वह क्रोधित होकर गया । इधर कोशल की शादी गुणवती नामक कन्या से हुई। उसका पिता पूर्णभद्र परलोक जाने के बाद, कोशल ने अपने भाई देशल के लिए गुणसुंदरी की याचना की। गुणदत्त ने दे दी। अब वे दोनों धर्मध्यानपूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे।

उस नगर में वैश्रमण नामक धनवान् श्रावक था । उसके चार पुत्र थे । धन, धनपति, धवल और सुयश!। एकबार उसने अपने पुत्रों को हितशिक्षा देकर कहा ''प्रेम से रहना, अगर प्रेम न रहे, तो इस घर के चारों कोने में तुम्हारें नामांकित कलश डाले हुए हैं। उसमें समभाग किया हुआ है। वह ले लेना। धन के लिए कलह मत करना। पिता विधिपूर्वक व्रताराधनाकर स्वर्ग गया । फिर बहुत काल बाद पृथक् होने के लिए स्त्रियों से प्रेरित वे कलश निकालकर ले आये बड़े के भाग्य में धूलि, दूसरे के भाग्य में अस्थी, तृतीय के भाग्य में कागज और छोटे के भाग्य में स्वर्ण निकला । फिर चारों में कलह होने लगा । छोटा कुछ देने को तैयार नहीं । तीनों बटवारा चाहते थे । न्याय के लिए राजा के पास गये। राजा ने अपने ४९९ मंत्रियों को न्याय करने को कहा। परंतु वे न्याय कर न सके । नगर में उद्घोषणा हुई । कोशल ने पटह स्वीकारा । राजसभा में आकर उसने चारों को बुलाकर पूछा

''पिता की उपस्थिति में आप कौन-कौन से व्यापार में विशेष रूचिवाले थे । उन्होंने अपनी-अपनी रूचि कही, तब कोशल ने कहा ''मिट्टी निकली, इसका अर्थ खेत का मालिक वह, अस्थि निकली सो गाय, बैल आदि का मालिक वह, कागज निकले सो साहुकारों में और व्यापार में धन है, उसका मालिक वह, स्वर्ण निकला वह रोकड़ रकम का मालिक । देख लेना, हिसाब लगा लेना सभी के भाग्य में समान धन होगा । तुम्हारे पिता ने तुम्हारी रूचि, शक्ति के अनुसार विभाजन किया है।'' चारों ने अंगुलियों पर हिसाब लगाकर कहा ''हमारे पिता ने जो किया वह सही है।'' चारों भाई कोशल की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए घर जाकर प्रीतिपूर्वक रहने लगे । राजा ने कोशल को मुख्य मंत्री की मुद्रा के लिए आग्रह किया । परंतु उसने कहा ''मैंने श्रावक व्रत स्वीकार करते समय नियोगादिका प्रत्याख्यान लिया हुआ है।'' तब राजा ने उसे राजसभा में प्रतिदिन आनेका और मंत्रीयों से उसकी सलाह लेने का आग्रह किया । इससे अन्य मंत्री उस पर ईर्ष्या करने लगे । उसमें सागर तो अधिक ईर्ष्या करने लगा । एकबार सागर ने राजा से कहा कि ''देवगिरि का रिपुमर्दन आप की अवगणना करता है, उधर कौशल को भेजा जाय । संधि कर लेगा । इससे इसकी बुद्धि की परीक्षा होगी । तब राजा ने उस मंत्री को प्राभृत के लिए कहा । उसने प्राभृत तैयार करते समय एक पेटी में मिट्टी भरा कलश रखकर उसको ताला देकर दिया । सभी प्राभृत ले जाकर राजा के सामने धरा । खोलने पर मिट्टी को देखकर रिपुमर्दन क्रोधित हुआ । कोशल ने कहा ''राजन्! आप इसे सामान्य मिट्टी न समझें । मेरे राज्य में मरकी का उपद्रव हुआ, तब मेरे राजा ने 'अंधलरेली' नामक देवी की आराधना की तब उसने चतुष्पथ से धूलि लेकर अभिमंत्रितकर के दी, और कहा इसका तिलक करने

पर मरकी,. शाकिनी आदि की पीड़ा शांत हो जायगी। मेरे नगर में शांति हो गयी। उसी धूलि को आपके राज्य में शांति हो, इसलिए भेजी है। व्यर्थ में कोई स्वर्ण कलश में धूलि क्यों भरेगा?" राजा ने उस मिट्टी से तिलक किया और मंत्री, राजसेवक, अंत:पुर आदि में सभी को तिलक हेतु मिट्टी दी । कोशल से कहा "तेरे स्वामी को कहना" "सदा ही, अपनी अखंड मैत्री रहेगी । आपका जो भी कार्य हो वह नि:संकोच हमें कहना।" पूछा-"तेरे राजा की आज्ञा शक्ति कैसी है?" कोशल ने कहा "राजन्! मेरे राजा की आज्ञा शक्ति से मानव तो क्या पशु भी स्तंभित हो जाय। इतने में कोलाहल सुनकर राजा ने पूछा । प्रतिहार ने कहा "मदांध हाथी स्तंभ उखाड़कर उपद्रव कर रहा है। लोग भयभीत होकर इधर-उधर भाग रहे हैं। इसका यह कोलाहल है। तब राजा ने कोशल से कहा "तेरे राजा की आज्ञा की परीक्षा करवा दे ।" तब कोशल ने राजा के साथ जाकर गज स्तंभिनी विद्या का गुप्त रूप से स्मरणकर प्रकट में अपने राजा की आज्ञा देकर, गज को स्तंभितकर दिखा दिया । उससे चमत्कृत हुआ राजा बोला "तेरे राजा के पास है वैसी दिव्य धूलि तो मेरे पास नहीं है। मैं अमूल्य पदार्थ क्या दूं? फिर भी ये हाथी अश्व अलंकारादि दे रहा हूँ, वे राजा को देना।" राजा ने कोशल का भी वस्त्रालंकारादि से सम्मान किया।

इधर गुप्तचरों से सागर मंत्री ने कोशल का वृत्तांत ज्ञातकर, उसके सम्मुख आकर क्षमायाचना की अपना अपराध राजा से निवेदन न करने की विनति की। उसने स्वीकार किया । फिर राजा के पास आकर कोशल ने भेट राजा के सामने रख रिपुमर्दन का संदेश सुनाया । राजा ने प्रसन्न होकर उसे एक देश देना चाहा, पर परिग्रह परिमाण में राज्य न होने से उसने ग्रहण नहीं किया। राजा ने सोचा, इसने जो किया है, वह राज्य भंडार दे दूं तो भी

प्रत्युपकार नहीं हो सकता । यह कुछ लेता भी नहीं है । राजा ने उसके घर दशहजार घृत के घड़े और दशहजार धान्य के मूढ़े भेजे । उनको अपने व्रत से अधिक जानकर व्रतभंग भीरू कोशल ने कहीं जाने की आवश्यकता से देशल से कहा । पांच-पांच हजार लेकर बाकी लौटा देना । अपना व्रत मत तोड़ना । वह इतना कहकर चला गया। देशल ने धन लुब्ध और धर्म में शिथिल होने से पांच-पांच हजार घर में रखें और पांच-पांच हजार दुसरे सेठ के वहाँ अपने नाम से रखवा दिये । इस प्रकार उसने व्रत को मलीन किया । देशल आयु पूर्णकर स्वल्प ऋद्धिवाला व्यंतर हुआ, वहाँ से दरिद्र विप्र और वहाँ से तू वणिक हुआ । व्रत भंग के फलरूप में प्रयत्न करने पर भी तुझे इच्छित धन नहीं मिला । कोशल निरतिचार श्रावकधर्म का पालनकर, धर्मगुप्त गुरु के पास में प्रव्रज्या ग्रहणकर, निरतिचार पालनकर, सत्रह सागरोपम आयुवाला (सप्तम देवलोक में) देव हुआ । इस प्रकार पंचम-अणुव्रतकी आराधना-विराधना के फल को सुनकर सबको सम्यक् प्रकार से उसका पालन करना चाहिए। फिर उस देव ने अवधिज्ञान से अपने भाई को दुःखी जानकर देव ऋद्धिका दर्शन करवाकर, उसे प्रतिबोधित कर दीक्षा ग्रहण करवायी । फिर वह देवलोक में गया । दोनों ने प्रीतिपूर्वक जिनार्चन किया और तीर्थयात्रादि से पुण्यार्जन किया। कोशल देव पूर्ण सुख भोगकर वैताढ्यपर्वत पर मणिमंदिर पुर में मणिधर राजा की पत्नी मणिमाला की कुक्षी से मणिशेखर नाम से पुत्र रूप में जन्मा । यौवन वय में बत्तीस कन्याओं से पाणिग्रहण करवाया । वह विद्यावान् भोग सुख में रमण करता था। इधर देशल का जीव तू चंद्रगति हुआ । जो तेरी पूर्वभव की पत्नी गुणसुंदरी थी वह चारित्र लेकर चौथे देवलोक में गयी । वहाँ से किसी सेठ के घर चंद्रमुख पुत्र हुआ। वह चारित्र लेकर पांचवें देवलोक में देव हुआ। वहाँ से यह तेरी पत्नी

चंद्रमाला हुई है। पूर्वाभ्यास से परस्पर अधिक स्नेह है। इधर सागर, राजा के द्वारा देश से निकाला हुआ, देशल पर द्वेष रखता हुआ, प्रथम नरक में गया । वहाँ से दरिद्र विप्र हुआ । वह विप्र परिव्राट् हुआ । तपकर वहाँ से वैताढ्यपर्वत में देवों को क्रीड़ा का स्थान वज्रकूट है, वहाँ एक कोस की लंबाई चौड़ाईवाले भवन में मंत्री का जीव वज्रमुख नाम से देव हुआ। वह देव तेरी प्रिया को देखकर पूर्वराग के कारण उसका अपहरणकर ले गया है। उसने उससे प्रार्थना की, तब उसने कहा एक महिने का ब्रह्मचर्यव्रत है। अगर इस बीच में तूने बलात्कार की चेष्टा की तो मैं जीह्वा छेदकर आयुष्य पूर्ण कर लूंगी । इसलिए वह महिना पूर्ण होने की राह देख रहा है। मणिशेखर विद्याधर ने धर्मरूचि सद्गुरू से (प्रतिबुद्ध होकर) चारित्र लिया । क्रमशः चार ज्ञान का धनी होकर पूर्वभव के स्नेह से तुझे मैं प्रतिबोधित करने यहाँ आया हूँ। बोध पाकर चारित्र ग्रहण करना चाहिए । देवभोग को भोगे। अब इन अशुचिमयभोगों में क्यों आनंद मान रहा है? ऐसा सुनकर मैंने उनसे कहा "हे मुनिभगवंत! आपने मुझे कल्पवृक्ष के समान दर्शन देकर उपकृत किया है। मैं प्रतिबोधित हुआ हूँ। पर दूसरे के द्वारा हरण की हुई प्रिया का प्रेम मैं शीघ्र छोड़ने में असमर्थ हूँ। उसको प्राप्त करवाने में कौन समर्थ है, मेरी कन्या के योग्य वर कौन है? फिर मैं अल्पावधि में ही व्रत ग्रहण करूँगा।" मुनि भगवंत ने कहा "जिसने पवनवेग के पुत्र को छुड़वाया है, वही तेरे दोनों कार्य करेगा । मुझे ज्ञात है कि तेरे अभी तक भोगावली कर्मशेष हैं। उनको भोगने के बाद तेरी दीक्षा होगी । हम दोनों साथ में मोक्ष में जायेंगे।" इस प्रकार मुनि की वाणी सुनकर जाति स्मरणवाला, अनासक्त हुआ मैं, प्रिया का स्मरण करता हुआ घर गया । मुनि विहार कर गये । पवनवेग के पुत्र को छुड़वाने वाले की खोज़ करता हुआ आज आपके पास आया हूँ ।" तब कुमार

प्रार्थना के भय से पहले ही बोला "हे भ्रातः! तुमने तो दो उत्सव के लिए निमंत्रण दिया है एक परोपकार, दूसरा दुष्टनिग्रह । मुझे तो इसमें आनंद है । मैं उस देव को जीतकर तेरी प्रिया को शीघ्र छुड़वाऊंगा।"

फिर वे सभी वज्रकूट के शिखर पर आये । कुमार उच्च आवाज से बोला 'रे देवाधम! परस्त्री का अपहरणकर सर्प के समान बिल में क्यों घुसा है? यदि शक्तिवान् है तो मेरे साथ युद्ध के लिए सज्ज हो जा, स्त्री को अर्पण कर। नहीं तो इस पर्वत, भवन आदि को चूर्णकर, तेरा निग्रहकर, उस स्त्री को ले जाऊँगा । ऐसा तीन बार कहने पर भी कोई देव न आया, तब उसने कामाक्ष प्रदत्त वज्राभ मुद्गर से उस शिला को चूर्णकर दी। वह उस पर्वत पर घूम-घूमकर कम्पायमान करने लगा । घूमता-घूमता वह सुरालय के समीप आया । और उसके नीचे जाकर उसने घोर नाद किया। उस भयंकर नाद को सुनकर भवन को कम्पायमान देखकर सोचा- 'यह कौन है?' विभंगज्ञान से कुमार को देखकर सोचा 'यह क्या है? मानव और मेरे सामने?' क्रोधित होकर उसे ललकारा और कहा "मरने के लिए यहाँ क्यों आया है? कुमार ने कहा "रे मूर्ख! मूषक के समान परस्त्री हरणकर बिल में क्यों घूस गया है? अब तू कहाँ जायगा? या तो चंद्रगति की पत्नी को दे दे, या युद्ध के लिए तैयार हो जा । पर्वत के समान इस मुद्गर से तुझे भी चूर्ण करने में मैं समर्थ हूँ । देव ने कहा "रे! नरड़िंभ! सिंह के पास से मृग के समान तू मेरे पास से उस स्त्री को छुड़वाना चाहता है । निष्कारण क्यों मरता है? चला जा ।" दोनों में भयंकर युद्ध छिड़ा । भयंकर शस्त्रों से दोनों ने युद्ध किया । मुद्गर, गदा, त्रिशूल, असि, आदि अनेक शस्त्रों के प्रयोग में कुमार

की जीत और देव की हार हुई। देव ने थककर मल्लयुद्ध के लिए ललकारा, और दोनों का मल्लयुद्ध प्रारंभ हुआ। कुमार ने उसे थकाकर नीचे गिराकर, उस पर चढ़कर, बोला "बोल, अब भी लड़ना है? तब देव ने पराजय स्वीकार कीया । देव ने स्त्री को लाकर उसे सौंप दी । देव ने कहा "तेरे समान विक्रमी, न्यायी और दयालु इस विश्व में कोई नहीं है। मैं आपको क्या दूं? ऐसे देव के कहने पर जयानंद ने कहा "अनंतभव दुःखनिबंधन रूपी मिथ्यात्व का त्याग कर।" फिर उसे उसका पूर्वभव सुनाया। सुनते ही उसने अपने पूर्वभवों को देखा। फिर उसने शुद्ध धर्म की व्याख्या पूछी । जयानंद ने उसे देव-गुरु धर्म का विशुद्धस्वरूप समझाया । उसने शुद्धधर्म को स्वीकारा । देव ने कहा "मैं अब तेरे उपकार से उऋण कैसे होउँ? फिर भी मैं तेरे अनुरूप यह चिंतामणि रत्न, बहुरूपिणी विद्या, कामित विद्या दे रहा हूँ।" प्रार्थना भंग भीरू राजा ने उसके द्वारा प्रदत्त विद्यादि ग्रहण किये । देव से कहा "हे सुरराज! तुझे धन्य है, जो अल्प प्रयास से प्रतिबोधित हो गया । चंद्रगति से मैत्री करवायी । राजा ने उसकी पूजा की। देव अन्तर्धान हो गया । राजा ने चंद्रमाला चंद्रगति को दी। फिर वह अपनी कन्या से पाणिग्रहण करने की प्रार्थनाकर अपने स्थान पर गया । तब पवनवेग ने उसके कान में कहा "मेरी कन्या का पाणिग्रहण करवाऊँ, तब तू तेरी कन्या लेकर आ जाना। फिर जयानंद ने योगिनी दत्त अलंकारादि अपने पिता के धैर्य के लिए एक खेचर के साथ लक्ष्मीपुर भेजे । जयानंद पवनवेग आदि विद्याधरों के साथ शाश्वत चैत्यों को वंदन के लिए गया । फिर वहाँ सभी चैत्यों को वंदनाकर पवनवेग के साथ नगर में आया । पवनवेग ने अत्याग्रह कर अपनी कन्या और चंद्रगति की पुत्री की

शादी कुमार के साथ चक्रायुध के ड़र से सामान्य रूप में की । कन्यादान में हाथी घोड़े वस्त्रालंकार के साथ 'शत्रुमर्दनी' विद्या दी । अब वह दोनों प्रियाओं के साथ खेचरियों के द्वारा विरचित भवनों में, वनों में क्रीड़ा करते हुए समय व्यतीत करता था । शाश्वत तीर्थो की यात्रा भी करता था ।

एकबार जयानंद राजा के पास पवनवेग के साथ अन्य आठ विद्याधर राजाओं ने आकर प्रणामकर कहा हमारे एक-एक राजाकी चार-चार अर्थात् आठों की ३२ कन्याएँ हैं। उन बत्तीसों ने एक निर्णय किया कि हम एक ही पति से शादी करेंगी। एक बार चक्रायुध राजा के दूत ने आकर अपने पुत्रों के लिए कन्याओं की याचना की तब हमने कहा "जन्मकुंडली का मिलान करवाकर, हम आकर विज्ञप्ति करेंगे। फिर हमने एकत्र होकर विचार किया। एक को देंगे तो दूसरे कलह करेंगे। न दें, तो जीवितव्य का संकट? इस पर विचार कर रहे थे, तभी वहाँ एक निमित्तज्ञ आया। उससे पूछा, तब उसने कहा "तुम्हारी पुत्रियों का स्वामी योगिनियों को हराकर वज्रवेग को और वज्रमुख देव से चंद्रमौलि को छुड़वायेगा वह होगा। चक्रायुध का राज्य अल्प समय का है । उसका पराभव शत्रु से होगा । मुख्य शत्रु भी वही है।" इतना सुनकर, आश्वस्त होकर, हम यहाँ आये हैं । आप इन कन्याओं से पाणिग्रहण करने की अनुमति दीजिए । हम गुप्त रूप से कन्याओं का विवाह करवाना चाहते हैं। जयानंद ने कहा "जब तक चक्रायुध का भय दूर न हो तब तक विवाह में कोई रस नहीं । आप पधारे।" पवनवेग ने उन आठों के कान में कहा "चक्रायुध से युद्ध हो तब तुम सब आ जाना।" वे "हाँ" कहकर चले गये ।

जयानंद ने सिद्धकूट पर आकर विद्याएँ साध लीं । एक

दिन चक्रायुध के दूत ने आकर कहा 'वज्रसुंदरी को स्वयंवरा के रूप में भेजो।'' पवनवेग ने कहा ''मैंने कन्या मेरे पुत्र को छुडवानेवाले जयानंद राजा को दे दी है।'' दूत ने कहा ''विवाहिता को भी कन्यावेश में भेज, नहीं तो तेरा और तेरे जामाता का अहित होगा।'' पवनवेग ने कहा ''प्राण जाने पर भी ऐसा कार्य नहीं करूँगा।'' फिर पंडितो को और प्रधानों को समझाने के लिए चक्रायुध के पास भेजा। उन्हों ने जाकर, राजा को समझाया। चक्रायुध ने कहा ''मैं मध्यवयवाला हूँ। मुझे कन्या की इच्छा नहीं है। पर आज्ञा भंग को सहन नहीं कर सकता अत: वज्रसुंदरी 'चक्रायुध की दासी' ऐसे नामांकित कंकण हाथ में सदैव धारण करे। जामाता 'चक्रायुध का दास' ऐसे अंकित मुकुट धारण करे और वज्रसुंदरी मेरी पुत्री चक्रसुंदरी को नाट्य सिखाने हेतु यहाँ आये । इतना नहीं करेगा, तो राज्य और जीवितव्य की आशा मत रखना।

पंडितों ने आकर समाचार कहे, तब जयानंद ने कहा ''मैं वज्रसुंदरी का रूप लेकर पांचसो योद्धाओं को स्त्रियाँ बनाकर ले जाऊँगा । अगर आवश्यक होगा तो तुम्हें बुलाऊँगा । यह विचार (गुप्त रूप से) किया।''

थोड़ी देर में चक्रायुध का दूत पुन: आया । उसके साथ वज्रसुंदरी को भेज दी । उन्होंने शस्त्रादि पर्वतों में छुपा दिये और चक्रायुध की राज सभा में मायावी वज्रसुंदरी आयी । राजा ने उसके रूपानुकूल नाट्यकला भी देखी । खुश होकर ग्रास-दासी वस्त्रालंकार आदि दिये । उसे चक्रसुंदरी के पास भेजी । मायावी कन्या ने योगिनी निबद्ध जयानंद चरित्र गीत-गान के माध्यम में सुनाया । उससे वह जयानन्द पर प्रीति धारक हो गयी । उसके पूछने पर जयानंद के गुणों का, पराक्रम का व रूप का वर्णन

किया । साथ की स्त्रियों के पूछने पर उसने उसके पास जाने की अपनी सहमति प्रकट की । तब मायावी वज्रसुंदरी ने आकाश मार्ग से जाते हुए आवाज दी । जयानंद राजा के लिए चक्रसुंदरी को ले जा रही हूँ । फिर नगर के बाहर आकर किसी मायावी स्त्री को भेजकर वे सभी आयुध मंगवा लिये । राजा ने अपने सैनिकों को भेजे, वे सब हारकर वापिस आये । राजा ने बड़ी सेना भेजी, उसे भी थका दिया । चक्रायुध एक स्त्री के इस पराक्रम से अचंभित रह गया । तभी गुप्तचरों ने आकर चक्रायुध से कहा कि "उस स्त्री की सहायता में पवनवेग आदि दक्षिण श्रेणि के अनेक राजा उसके बिना बुलाये भी अपनी-अपनी विशाल सेना के साथ आ गये है । वे सब उस स्त्री को प्रणाम करते भी देखे गये है।" चक्रायुध ने सोचा 'मेरे नगर में आकर मुझे क्षुभित करने की धृष्टता इन्होंने मरने के लिए की है क्या?' उसने स्वयं युद्ध में जाने के लिए तैयारी की । शस्त्र सज्ज होकर हाथी पर बैठते समय मस्तक पर से मुकुट गिर गया, हाथी ने मूत्र और निहार दोनों एक साथ कर दिये, सामने छींक हो गयी, वस्त्र पैरों में आ गया, चामरधारिणी के हाथ से चामर गिर गया बिना कारण छत्र दण्ड कम्पायमान हुआ । यह देखकर मंत्रियों ने कहा "राजन्! इन अपशुकनों के कारण रणयात्रा ठीक नहीं लगती । एकबार आसन पर बैठो।" उसने वैसा ही किया । तब मुख्य सचिव ने कहा "राजन्! आपके महाबलशाली सेनानियों का पराजय एक स्त्री नहीं कर सकती । पवनवेग भोगरती आदि विद्याधर राजा क्या एक स्त्री के सेवक होकर रहेंगे? हमें तो यह आपके वचनों से क्रुद्ध वज्रसुंदरी का पति जयानंद राजा ही दीखता है । आप स्त्री से जीते गये ऐसा अपयश देने के लिए स्त्री का रूप करके आया है। कोई भी समर्थ पुरुष आप के द्वारा कथित दासीपति और दासी

शब्द को सहन नहीं करेगा । इसके अवदात तो जनमुख से सुने हैं । विशालसेन राजा इस पर प्रसन्न हुआ, गिरी मालिनीदेवी को वश में की, गिरिचूड़ देव को कोलरूप में जीता, देवने औषधि दान से इसकी पूजा की, बलवान् मलयमाल देव को हराया, विप्ररूप में पद्मरथ को जीतकर कपिकर के विंडबित किया, वामनरूप में आकर श्रीपति राजा की तीनों कन्याओं को कला में जीतकर उनका स्वामी बना, योगिनी की कैद से वज्रवेग को छुड़ाया, कामाक्षा, महाज्वाला योगिनियों से अक्षुभित, उनके द्वारा प्रदत्त अनेक दिव्य शस्त्रों का स्वामी, वज्रमुख देव से चंद्रगति की पत्नी को छुड़वानेवाला यह जगत्रयीमल्ल नारीरूप में दुर्जय है, ऐसा आप मानकर कोप छोड़ दें। सुता किसीको भी देनी है तो ऐसे नरवीर के समान दूसरा कुमार मिलना दुर्लभ है। अतः स्वामिन्! मौलि कंकणवाली बात को छोड़कर कन्या इसे देकर स्वार्थ सिद्ध कीजिए। ये पवनवेगादि सभी आपके ही सेवक रहेंगे ।" इतना सुनकर चक्रायुध बोला "ये तुम्हारे वचन अनिष्ट की आशंका और मुझ पर स्नेह से बोले गये हैं। हठ से परकन्या लेनेवाले को मैं सहनकर उसे क८न्या दे दूं तो मेरी महिमा क्या? पवनवेगादि ने जो किया वह उनकी तुच्छ बुद्धि का फल है। भले ही यह जयानंद हो पर मेरे शस्त्र अभी भी शक्ति युक्त है। मेरे बल के सामने वह खड़ा भी नहीं रह सकेगा? मेरे सामने ब्रह्मा, सूर्य, इंद्र और कृष्ण भी आ जाय तो मैं उन्हें भी जीत लूं तो स्त्री की क्या ताकत?" तब सचिवों ने कहा "ऐसा आपका विचार हो तो आपके खेचरों को भी बुला लो। फिर युद्ध प्रारंभ करो।" वैसा ही किया गया । तीसरे दिन युद्ध का निर्णय लिया गया । चक्रायुध के मित्र विद्याधर ससैन्य आ गये। चक्रायुध की एक हजार अक्षौहिणी सेना और मायावी स्त्री के पक्ष में एक सौ अक्षौहिणी सेना थी। (हाथी

२१८७०, रथ २१८७०, अश्व ६५६१० पदाति १०९३५० मिलाकर एक अक्षौहिणी में २१८७००। इतनी संख्या होती है ।)

नारी ने प्रथमदिन पवनवेग के पुत्र वज्रवेग को सेनापति बनाया । फिर स्त्रीरूपी जयानंद ने जिनेश्वर की पूजा कर पंच परमेष्ठि का स्मरणकर, शस्त्र सज्ज होकर युद्ध के लिए चला । योगिनी राक्षसी आदि अनेक देव देवियाँ भी युद्ध देखने आकाशमार्ग में आ गयीं । चक्रायुध ने चण्डवेग को सेनापति बनाया । पांच दिन तक भयंकर युद्ध हुआ। चक्रायुध के अनेक पुत्र और महारथी का मायावी स्त्री के पक्षधर विद्याधरों ने नाश किया। मायावी स्त्री प्रतिदिन अपनी औषधि के जल से दोनों सेनाओं के सैनिकों को सज्ज करवा देती थी। चक्रायुध अतीव क्रोधित होकर युद्ध कर रहा था। पर प्रतिदिन विजय मायावी स्त्री की हो रही थी। फिर चक्रायुध और मायावी स्त्री के बीच घनघोर युद्ध हुआ ।

एकबार चक्रायुध ने उसे कहा "रे रंडा । तू मारी जायगी। मेरी पुत्री को छोड़कर चली जा । व्यर्थ में जिद में मत मर ।" मायावी स्त्री ने कहा "तेरी पुत्री का अपहरण पुनः लौटाने के लिए नहीं किया है। इज्जत बचाना चाहता हो तो एकदिन के लिए 'जयानंद का दास' इतना लिखा हुआ मुकुट धारण कर ले। तेरी पुत्री और तुझ को छोड़ दूंगी।" उसके बाद घमासान युद्ध हुआ। एकबार तो चक्रायुध भी विचार करने लगा कि, यह दिखने में स्त्री है, परंतु बल में तो शुक्र को भी हरा दे-वैसी है। यह कोई विश्व विजयी है। क्या वैताढ्य का राज्य मैंने इसके लिए अर्जित किया है?" पुनः जोश में आकर युद्ध करने लगा । अंत में छट्ठे दिन शाम को, चक्रायुध को मायावी स्त्री ने मुद्‌गर का प्रहारकर, नागपाश से बांध दिया । उसकी सेना मोहित कर दी । चक्रायुध को पवनवेग को सोंप दिया ।

दूसरे दिन मायावी स्त्री ने चक्रायुध की सेना को कहा कि "भय भीत न हो, पलायन भी मत करो, जयानंद राजा आपके राजा को मुक्त कर देगा । आप स्वस्थ रहो।" इधर मायावी स्त्री ने उसे (चक्रायुध को) नागपाश छोड़कर ज्वालामालिनी प्रदत्त बेड़ियों से बांधकर औषधि जल से व्रण सज्ज कर, वज्रपिंजरे में डालकर राजसभा में ले आया । चक्रसुंदरी ने अपने पिता को छोड़ने के लिए कहा जयानंद ने पवनवेग से कहा "ओ महाभाग! उस मुकुट और कंकण को लाकर इसको दो। जिस से यह तो पिंजरे में रहकर भी यह करने में समर्थ है। मैं तुम्हारी उत्सुकता में विघ्न-कर नहीं बनूंगा । इस प्रकार उसकी वाणी सुनकर चक्रायुध रूदन करने लगा । उसे रोता देखकर पवनवेग ने चक्रायुध से कहा "रो मत! तुम हमारे चिरकाल के स्वामी हो। आप केवल नमस्कार कर दो, यह कृपालु तुम्हें छोड़ देगा ।"चक्रायुध ने कहा "अगर तुझे मुझ पर भक्ति हो तो असि दे । जिससे मैं अपना मस्तक छेदकर मुक्त हो जाउँ ।" पवनवेग ने कहा "हे नाथ! आप शास्त्रज्ञ होकर यह कैसी अज्ञता की बात कर रहे हो । आपको स्त्री ने बांधा ऐसा क्यों सोच रहे हो? क्या ऐसा पराक्रम, विद्या, गुण आदि एक स्त्री में हो सकता हैं? इतना भी आपने न समझा। यह विश्व विजयी जयानंद भूप हैं। तुमने स्वयं जो गर्वित वचन कहे, उसका ही यह परिणाम भुगतना पड़ा है कि एक स्त्री से तुम जीते गये । यह बताने के लिए जयानंद ने ही स्त्री का रूप लिया है। यह शत्रु नहीं है। शत्रु तो क्रोध, अमर्ष, गर्व आदि हैं। उनको छोड़कर इसकी आज्ञा स्वीकार करें । यह तुम्हें छोड़ देगा। चक्रायुध ने अन्य गति न होने से उसकी आज्ञा स्वीकार की । पवनवेग ने राजा से कहा "आप अपना स्वाभाविक रूप प्रकट करो और चक्रायुध को छोड़ो।" उसने अपना स्वाभाविक रूप प्रकट

किया । उस समय अनेक मंगल वाद्य बजे । हर्ष और जय-जयध्वनि चारों ओर गूंज उठी । चक्रसुंदरी भी उनके रूप को देखकर अत्यंत प्रमुदित हुई । फिर विद्या के बल से वज्रपिंजर को भेदकर, बेड़ियाँ तोड़कर चक्रायुध को अपने पास सिंहासन पर बिठाया । चक्रायुध उसके इस रूप और औदार्य को देखकर, अपने दुःख को भूल गया । पवनवेगादि सभी राजाओं ने दोनों को प्रणाम किया । फिर अन्य राजाओं के भी नागास्त्र आदि बंधन तोड़कर मुक्त किये । परस्पर सभी मिलकर जयानंद के रूप को और औदार्य को देखकर प्रणाम करके यथायोग्य स्थान पर बैठे ।

जयानंद ने चक्रसुंदरी को बुलाकर खेट राजा से कहा "इस पुत्री को आप की इच्छानुसार वर को दो। मैंने तो कौतुक से इसका अपहरण किया था।" उसने पिताको रोती हुई प्रणामकर कहा "पिताजी, आपको मैंने महान् संकट में डालकर जो अपराध किया, उसे क्षमा करें ।" खेट राजा ने कहा "बेटी! इसमें तेरा लेश भी अपराध नहीं है। क्षत्रिय कन्या तो स्वयंवरा हो सकती है। तूने तो अति उत्तम वर को चुना है। मैंने ही इस चिंतामणि को नहीं पहचाना । मैं मेरे ही गर्व दोष से विपत्ति का भागी हुआ हूँ। तेरी ही प्रार्थना से इसने मेरा वध नहीं किया । हे वत्से! पिता की रक्षा से प्रमुदित हो । रो मत!" पिता ने दासियों के साथ उसे महल में भेजी ।

जयानंद ने खेचर चक्री को कहा "हे नरोत्तम! मुझे इसने जीता ऐसा खेद मत करो । इस जय को मैं काकतालीय न्याय मानता हूँ । तुम्हारे समान देव, असुर और मानवों में कोई सुभट नहीं है। मुझे युद्ध में अनुभव हुआ है। विद्याबल और शस्त्र बल से जय नहीं, यह पूर्वकृत पुण्य का फल है। जय-पराजय शूरों

की होती है कायरों की नहीं । आप आपकी राज्य लक्ष्मी का उपभोग करो । यह रणारंभ किसी पूर्व कर्म से हुआ है । तुमको देखकर मन में मित्र के मिलने जैसा आनंद होता है। यह मैं प्रथम दिन आपकी राज सभा में आया तब अनुभव हुआ था । पूर्वभव का स्नेह अवश्य है। मैंने रण में आपको क्षुभित किया है उस अपराध को क्षमा करो । ज्ञानी गुरु मिलेंगे, तब संशय का निवारण होगा । खेचरेन्द्र ने कहा "हे नृपते! मैं ऐसा मान रहा हूँ कि सृष्टि की रचना करनेवालों की कलानुसार विधाता ने तुझे एक ही बनाया है। तेरे जैसा शौर्य, सौजन्य, न्याय, धर्म, विवेक, दया और परोपकार अन्य कहीं नहीं मिलेंगे । तेरी स्तुति करने में शक्र भी शक्तिमान नहीं है । मैंने मेरे मंत्रियों का कहना न मानकर तेरी जो अवगणना की है, उस अपराध की क्षमा कर। तू इतना उदार है कि क्षण भर में मुझे मुक्त कर दिया और मुझे राज्य भी लौटा रहा है। मैं कैसा अपराधी जो तुझ जैसे चिंतामणि समान नर रत्न को मेरा दास और तेरी पत्नि को मेरी दासी का बिरूद देने की जो चेष्टा की । यह सजा जो मुझे मिली है, वह मेरे अपराध का दंड है। मैं तो इससे भी भयंकर सजा का पात्र हूँ। जैसा तुझे मुझ पर स्नेह जग रहा है वैसा प्रेम तुझे देखते ही मुझे भी आ रहा है। भाव तो ये आये कि तुझे गले लगाकर मिलूँ। मुझे विश्वास है कि हम दोनों पूर्वभव में मित्र थे। अब मुझ मित्र पर करूणाकर, मेरे नगर में पधारकर, मेरे नगर को और मेरे महल को पवित्रकर" जयानंद राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की। फिर खेचर राजा ने अपने नगर में जाकर पूरे नगर का शृंगार किया । हाथी पर बैठ़कर कुमार को लेने आया । दोनों श्वेत हस्ति पर बैठकर विद्याधरों से पूजित हुए। नगर में प्रवेश करते समय अनेक खेचरियों के द्वारा मोतियों से वधाते हुए, बन्दीजनों के द्वारा स्तुति

कराते हुए अर्थीजनों को इच्छित दान देते हुए, जा रहे थे । सब खेचर राजा के महल के पास आये । खेचर राजा प्रथम उतरा और जयानंद राजा को हाथ पकड़कर नीचे उतारा । इस प्रकार उसका सम्मान किया । फिर महल में आकर जयानंद राजा को मणिमय सिंहासन पर बिठाकर, स्वयं पास के स्वर्णमय सिंहासन पर बैठा । फिर पवनवेगादि सभी खेचरों ने दोनों को प्रणाम किया। फिर सभी स्नान भोजनादि से निवृत्त हुए। खेचरचक्री जयानंद राजा की प्रतिदिन सेवा करता था। एकदिन उसने चक्रसुंदरी से पाणीग्रहण का आग्रह किया। भोगरति आदि आठों ने अपनी बत्तीस कन्याओं के विवाह की याद दिलायी। अन्य भी खेचर राजा अपनी कन्याएँ देने के लिए विनति करने लगे । उनके अत्याग्रह को स्वीकारा । उस समय एक हजार आठ कन्याओं से शादी की । वह उन पत्नियों के साथ सुर सम सुखोपभोग करता हुआ चक्रायुध प्रदत्त महल में रहता था ।

एक बार दोनों सिंहासनासीन थे। उस समय उद्यान पालक ने आकर कहा "मुनि भगवंत चक्रबल विशाल परिवार के साथ पधारे हैं ।" यह सुनकर समाचार दाता को दानादि देकर सपरिवार दर्शन, वंदन, देशना श्रवणार्थ चले । खेचर चक्री संवेगी तोहो ही गया था और गुर्वागमन से तो अति आनंदित था । सभी उद्यान में आये । गजादि वाहन से उतरकर तीन प्रदक्षिणा देकर वंदनकर यथायोग्य स्थान पर बैठे । गुरु ने धर्मलाभ की आशीष दी । फिर गुरु भगवंत ने देशना दी ।

जगत में एक शरणभूत धर्म है । वह धर्म-साधु धर्म और श्रावक धर्म । दशदृष्टांत से दुर्लभ मानव भव को पाकर सर्व आश्रव त्यागकर साधु धर्म को स्वीकार करना चाहिए। इतनी शक्ति न हो

तो श्रावक धर्म अंगीकार करना चाहिए। गृहस्थों का धर्म अर्थात् सम्यक्त्व मूल द्वादशव्रत। जिस में पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत हैं। सम्यक्त्व सुदेव में देव बुद्धि, सुगुरु में गुरु बुद्धि और सुधर्म में धर्मबुद्धि का होना। इससे विपरीत मिथ्यात्व। फिर गुरु भगवंत ने द्वादशव्रत का स्वरूप समझाया । फिर राज्य की असारता का निरूपण किया । "परलोक में नरकादि दुःख की प्राप्ति हो, ऐसे राज्य में कौन बुद्धिवान रमण करे? जिससे कषायों की उदीरणा हो, पूर्व पुण्य को खा जाय, विषय विवेक का नाश करता हो वह राज्य नरकप्रद ही है, मूढचित्तवाले राज्य प्राप्ति से मद ग्रस्त होकर परभव के नरकादि दुःख को नहीं जानते।" इस प्रकार धर्म देशना सुनकर जयानंद राजा ने भगवंत से कहा "मैं महाव्रत का स्वीकार करने में तो असमर्थ हूँ। मैंने पूर्व में अणुव्रत चतुष्क सम्यक्त्वसहित लिए हुए है। अब मैं राज्यभोग के योग्य निम्न नियम ग्रहण करता हूँ ।"

(१) प्रतिदिन अष्टप्रकारी पूजा के पश्चात् भोजन करूँगा ।

(२) योग होगा, वहाँ तक गुरु को नमस्कारकर, साधर्मिक का सत्कारकर, भोजन करूँगा ।

(३) महापर्व के दिनों में आरंभ का त्यागकर, ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा ।

(४) चैत्र महिने में अष्टाह्निका महोत्सव व अमारी पटह बजवाऊँगा।

(५) हजारों की संख्या में जिनबिंब, जिनमंदिर करवाऊँगा ।

(६) जिनागम लिखवाऊँगा ।

(७) योग होगा, तब चतुर्विध संघ की पूजा करूँगा ।

(८) श्रावकों के पास से कर वसूल नहीं करूँगा ।

(९) अनुकंपादान आदि धर्म कार्य करूँगा ।

(१०) अरिहंत शासन की प्रभावना हो, वैसे कार्य करूँगा ।

इन नियमों का मैं पालन करूँगा । तब गुरु ने नियम प्रतिज्ञा देने के बाद कहा ''इन नियमों का सम्यक् रूप से पालन करना। प्रमादी मत बनना । ये नियम निष्पाप जीवन का मूल हैं। इनका सम्यक् पालन मोक्ष का कारण है । फिर कुमार ने पूछा ''भगवंत! इस भव में मुझे दीक्षा मिलेगी या नहीं? गुरुने कहा ''भोग कर्म फल को भोगकर, चारित्र लेकर, इसी भव में शिवगामी होगा ।''

चक्रायुध ने कहा ''गुरुदेव! संसार की असारता पूर्व में कुछ समझी थी। अब तो इसे छोड़कर दीक्षा लेना चाहता हूँ । अत: राज्य की व्यवस्थाकर आऊँ तब तक आप स्थिरता करावें ।''

चक्रायुध ने राजमहल में जाकर, मंत्रीयों से मंत्रणाकर, जयानंद को प्रणामकर कहा ''मुझ पर जय प्राप्तकर वैताढ्यपर्वत के राज्य का स्वामी बना, उसके समर्थन के रूप में राज्याभिषेक की अनुमति दो। जयानंद राजा ने कहा ''मुझे वैताढ्य राज्य का कोई प्रयोजन नहीं, मैं मेरे राज्य से संतुष्ट हूँ । तू तेरे पुत्र को राज्य दे, मैं दूर रहकर भी तेरे समान उसकी सुरक्षा रखूंगा । तब चक्री ने कहा- मैंने मेरे पुत्र तेरे उत्संग में रखे हैं । तुझे उचित लगे वैसा करना । हमने ज्ञानी के मुख से तुझे वैताढ्य सहित भरतार्ध का नायक सुना हैं। अत: इसे सत्य करने के लिए तेरा राज्याभिषेककर मैं चारित्र लेना चाहता हूँ। इसमें विघ्न मतकर ।'' जयानंद मौन रहा। फिर सबने मिलकर जयानंद का राज्याभिषेक किया । जयानंद ने चक्रवेग, पवनवेग आदि को यथायोग्य राज्य देकर उनका सत्कार किया । जिन चैत्यों में आठ दिवस का महोत्सव करवाकर श्री चक्रायुध राजा का दीक्षा महोत्सव उसके पुत्र चक्रवेग और जयानंद राजा ने मिलकर किया । चक्रायुध राजा ने महोत्सव पूर्वक दीक्षा ग्रहण की । जयानंद आदि राजा एवं चक्रवेग पवनवेग आदि राजा विधिवत् वंदनकर, अपने-अपने स्थान पर गये। मुनियों ने भी विहार किया ।

इधर् जयानंद राजा वैताढ्यपर्वत की दोनों श्रणियों के जो राजा सेवा में नहीं आये थे, उनको जीतकर दोनों श्रेणियों का चक्री राजा होकर सुखोपभोग करता हुआ रहा था। एकदिन रात को गिरिचूड़ देव ने आकर उसे कहा "हेमजट तापस ने समाचार भेजे है कि आप पधारकर तापससुंदरी को अपने साथ ले जाकर हमें प्रव्रज्या लेने में सहायक बनो ।" राजा भी उसको मिलने, पितादि को मिलने के लिए उत्सुक हुआ । प्रातः मुख्य खेचर राजाओं को बुलाकर, चक्रायुध के मुख्य पुत्र चक्रवेग को राज्य पर स्थापन कर, उसे उत्तरश्रेणि का आधिपत्य और पवनवेग को दक्षिण श्रेणि का आधिपत्य देकर राज्य की व्यवस्थाकर, खेचरों के साथ, पवनवेगादि राजाओं के साथ, अपने विशाल अंतपुर परिवार के साथ, तापसाश्रम में आया । वहाँ तापससुंदरी को मिला । हेमप्रभगुरु हेमजटादि तापसों का दीक्षा अवसर ज्ञान से जानकर वहाँ पधारे । गिरिचूड़ देव ने तापसों का दीक्षोत्सव किया । राजा सपरिवार सभी मुनियों को नमस्कारकर लक्ष्मीपुर की ओर चला । श्री विजयराजा पर-चक्र आया जानकर, युद्ध की तैयारी करने लगा। तभी जयानंद के आदमी ने आकर समाचार दिये कि "आपका पुत्र जयानंद सपरिवार आपकी सेवा में आ रहा है। मैं बधाई के लिए आया हूँ।" राजा ने उसे खुश होकर, पारितोषिक दिया । फिर राजा मंत्री और प्रजा सब सामने गये । पिता को देखते ही विमान से उतरकर कुमार सामने गया । चरणों में प्रणाम किया । पिता पुत्र दोनों हाथी पर बैठकर नगरजनों का स्वागत सत्कार ग्रहण करते हुए राजमहल में आये। पिता पुत्र दोनों सिंहासन पर बैठे इंद्रसमान शोभा दे रहे थे। राजसभा में स्वागत का कार्य पूर्णकर, अंतपुर में आकर माता के चरणों में प्रणाम किया। सभी बहुओं ने सासू के चरणों में प्रणाम किया। माता ने पुत्र एवं पुत्र वधुओं

को 'दीर्घायुभवः' का आशीर्वाद दिया । फिर सभी भोजन से निवृत्त हुए। एकबार पवनवेग ने श्रीविजयराजा एवं सभा को जयानंद का पूर्ण चरित्र सुनाया। सभी आनंद विभोर हुए। फिर मध्य खंड के तीनों खंडों को जीतने से अर्ध चक्रीपने का अभिषेक सभी राजाओं ने मिलकर किया । हजारों कन्याओं के साथ विवाह हुआ । फिर पवनवेग, चक्रवेग, चंद्रगति आदि विद्याधर राजा और कलिंग, बंग, अंग, हूण, कंबोज आदि सभी देशों के राजा अपने-अपने स्थान पर गये । जयानंद राजा हजारों पत्नीयों के साथ संसारिक सुखों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत कर रहा था ।

उसे रतिसुंदरी की याद बार-बार आती थी। परंतु वेश्या की कुक्षी से उत्पन्न होने से उसके शील की परीक्षाकर के लाने का विचार था। अपने सुरदत्त नामके एक मित्र को रत्नादि और पल्यंक देकर उसकी परीक्षाकर उसे लाने के लिए भेजा। वह रत्नपुर में आया। रतिमाला के घर के पास में किराये से घर लेकर रहा। फिर उसने गणिका के घर की एक दासी को दान से वशकर पूछा "यह घर पुरुष के आवागमन से रहित क्यों है?" तब उसने कहा "श्री विलास नामक एक कुमार ने रतिसुंदरी से शादी की। वह तीर्थयात्रा के लिए चला गया। अभी तक आया नहीं । तब से इस घर में पुरुष प्रवेश पर प्रतिबंध हैं। उसे आश्चर्य हुआ, कि वेश्या के कुल में शील पालन! अब वह रात को कामोद्दीपन गीत गाता है। दो तीन दिन बाद प्रतिदिन फल-पत्र आदि रतिसुंदरी के पास उस दासी के द्वारा भेजने लगा । रतिसुंदरी उसकी कला से आकर्षित होकर उसे रख लेती थी। एकबार उसने दासी से पूछा "मेरे गीतों से तेरी स्वामिनी खुश होती है या नहीं?" तब उसने कह "वह देव-गुरु के गीत बिना किसी गीत की प्रशंसा नहीं करती । वह शृंगाररस के गीतों की प्रशंसा नहीं करती ।"

उसने कहा "तो मुझे वहाँ लेजा । दासी ने कहा "पुरुष का प्रवेश असंभव है।" वह स्वस्थान गयी। फिर उसने कुछ सोचकर दूसरे दिन दासी से कहा "मैं जिनेश्वरों के दर्शन के लिए जा रहा हूँ। थोड़े दिन के लिए मेरी पत्नी यहाँ आयगी। उसके साथ तू सखीपना रखना। फिर वह राजा प्रदत्त औषधि द्वारा स्त्री रूप बनाकर रही । दासी ने भी उससे प्रीति की। उसने रात को जैन गीत गाने प्रारंभ किये । उन गीतों से आकर्षित होकर दासी के द्वारा उसे अपने पास बुलवायी । वह आकर प्रणामकर बैठी । फिर उसने उसके विषय में पूछा।" उसने कहा मैं राजपुत्री विद्याधर के साथ विवाहित हूँ। पति रत्नों का ढेर मुझे देकर अभी तीर्थयात्रा के लिए गया है। मैं प्रभु भक्ति में अपना समय व्यतीत कर रही हूँ।" रतिसुंदरी ने उसकी बातों को सत्य समझकर उसे अपने पास आने का निमंत्रण दिया । अब वह धर्म कथा-गीत आदि से रानी का मनोरंजन करती थी । बीच-बीच में काम कथा करती थी । पर रानी को वे बातें अप्रिय लगती थी । एकबार उसने कहा "तू यह यौवनावस्था व्यर्थ क्यों व्यतीत कर रही है? वह गया। उसे वापिस आना होता, तो कभी का आ गया होता। अब उसकी आशा छोड़। तू तो गणिका पुत्री है।" तुझे कोई कथन भी नहीं होगा।" "ये वचन सुनते ही उसने उसे धिक्कारा और कहा ये उच्च खानदान कुल के वचन नहीं है। माया नारी ने कहा "देवी! क्षमा करना । मैंने परीक्षा के लिए कहा था। मायानारी को उस पर अंतर में वासना जाग्रत हो गयी । अब वह दो-चार रोज बाद एकाध बार कामोद्दीपन की बात कर लेती थी। रतिसुंदरी ने सोचा 'यह वास्तविक नारी नहीं लगती। जो पुरुष गीत गाता था वही स्वर इसका है। चेष्टा भी पुरुष जैसी है। इसे अपराधी बनाकर सजा देनी है। इसे यह खयाल नहीं हैं कि सती नारी प्राण देकर

भी शीलभंग नहीं करती । वह स्वप्न में भी शीलभंग की बात नहीं सोचती । मुझे इसे सजा देनी है।' ऐसा सोचकर उस पर प्रीतिभाव बढ़ाया और एकबार उसने उस से कहा द्रव्य के बिना काम कैसे हो? तब उस मायावी नारी ने कहा "वह आपको बहुतसारे रत्न देगा ।" उसने पहले रत्नादि मंगवाये । रत्न देखकर उसने सोचा 'ये रत्न तो मेरे पति के द्वारा दिये होने चाहिए। शायद मेरे पति ने इसे मुझे लेने भेजा होगा और यह मेरे रूप से मुग्ध होकर मुझे पाना चाहता है? मैं इस स्वामी द्रोही को सजा दूंगी।' उसने उसे आने को कहलवाया। वह आया। दासी के द्वारा उसके पादप्रक्षालनादि करवाकर मणि मय पल्यंक पर बिठाया । फिर उसने स्वामिनी को बुलाने को कहा, तब दासी ने कहा "हाँ अब उनको भेजती हूँ ।" रतिसुंदरी ने दासी के द्वारा तैयार करवायी हुई अनेक द्रव्यों से युक्त मदिरा पान करवाने को कहा । दासी ने ले जाकर वह मदिरा बड़े प्रेम से पिलायी । उसने आकंठ पी । थोड़ी देर में वह उस पलंग पर लेट गया । फिर उसके शरीर की खोज़ दासी ने ली, तब उसे दिव्य औषधि मिली । हर्षित होकर दासी ने उसे ले जाकर रतिसुंदरी को दी। रतिसुंदरी ने उस औषधि को लेकर सोचा 'यही औषधि मेरे पति के पास थी। इसी औषधि से मेरी माता को शूकरी बनायी थी। इसीसे इसने महिला का रूप बनाया था । या तो इसने पति के पास से किसी उपाय से ली। या मेरे पति ने औषधि देकर यहाँ भेजा होगा? जो कुछ भी हो सभी ज्ञात हो जायगा।' फिर प्रात: उसके मस्तक पर औषधि रखकर मर्कट (बंदर) बनाकर लोहेकी शृंखला से बांधकर बार-बार ताड़ना दी । उसको नचाकर कहा-"अब तुझे भट्टी में डालूंगी। चूल्हे के पास ले जाती और कहती" अय! स्वामी द्रोह और परस्त्री इच्छा का फल भोग।" उसे उपदेश भी देती थी ।

''यदि आत्मा का हित चाहता है, तो स्वामी द्रोह और परस्त्री की वांछा छोड़ दे।'' ''अब तो वह भी पश्चात्ताप करता था। आँसू गिराता था। रतिसुंदरी ने कहा ''अब तो छूटने के लिए पश्चात्ताप करता होगा। उसका तो कोई अर्थ नहीं । वास्तविक पश्चात्ताप होगा, तो ही नरकादि दु:खों से बचेगा ।'' ''वह बार-बार क्षमायाचना करता था। तब रतिसुंदरी ने करूणा लाकर, बंधन छुड़वाकर, औषधि से दासी द्वारा नर रूप में किया । और उसके मस्तक पर 'जयानंद दास' इस नामका पट्ट बंधवा दिया । फिर पड़दे में उसे रखकर पूछा तब उसने कहा ''जयानंद राजा तो विजयपुर के विजयनृप के पुत्र है। अभी लक्ष्मीपुर में अपने पिता के साथ अर्ध भरत के स्वामी बने हैं। उन्होंने आपको लाने के लिए भेजा है। मैं उनके द्वारा प्रदत्त पल्यंक और औषधि के द्वारा यहाँ आया और रूप परावर्तकर आपका रूप देखकर मुग्ध होकर यह कार्य किया । उसका फल मैंने भोगा । अब आपने मुझे परस्त्री गमन का नियम देकर मेरा उद्धार किया है। आप पल्यंक पर बीराजमान होकर लक्ष्मीपुर पधारो।'' रतिसुंदरी ने कहा ''मैं पर पुरुष का मुँह भी नहीं देखती, तो तेरे साथ आने की कोई बात नहीं है। तू अपने स्थान पर जाकर मेरे पति से कहना कि मैं आपके साथ ही आऊँगी । मैं निरंतर आपका ही ध्यान कर रही हूँ। आपने हजारों कन्याओं से शादी की है, पर मुझे भूलना मत। मुझे लेने आप शीघ्र पधारना । इतनी बातें उनसे कह देना । फिर रतिसुंदरी ने पति के समाचार पूछे। उसने यहाँ से जाने के बाद की सारी बातेंकर रतिसुंदरी को आनंदित कर दी। फिर वहाँ से लक्ष्मीपुर आया और सारे समाचार कहे। स्वयं ने जो किया वह भी सत्य सत्य कहा। फिर जयानंद रत्नपुर जाकर रतिसुंदरी को लेकर अपने नगर में आया। स्वागत पूर्वक नगर प्रवेश किया। शेष प्रियाओं

को सभी जगह से प्रधान पुरुषों को भेजकर बुलवायी। विजय एवं जयानंद राजा का समय सुखपूर्वक व्यतीत हो रहा था।

एकबार दोनों पिता-पुत्र राजसभा में मणिमय सिंहासन पर बीराजमान थे, तब प्रतिहार ने आकर कहा ''राजन्! विजयपुर नगर से कुछ लोग विज्ञप्ति पत्र लेकर आये हैं?'' राजा ने उन्हें शीघ्र भेजने को कहा । उन्हों ने आकर राजा को प्रणामकर विज्ञप्ति पत्र दिया । तब जयानंद राजा ने उस विज्ञप्ति पत्र को स्वयं पढ़ा ''स्वस्ति श्रीलक्ष्मीपुर नगरे श्री विजयराजेन्द्र और श्रीजयानंद राजेन्द्र आदि परिवार को विनयपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़कर हम आप से यह विज्ञप्ति करते है कि-

आपके पूर्वजों से प्रति पालित विजयपुर पत्तन में सिंहसार शब्द मात्र से पृथ्वीपति है। वह सर्व व्यसन युक्त कुमार्ग गामी और कुमतिवान् है मायावी, कुकर्मी, धर्महीन, इंद्रियों से पराजित, सर्व अन्याय का घर, क्रूर प्रकृतिवाला है। उसने आपके पूर्वजों के जो राजमान्य थे, न्याय प्रवीण थे उनमें से किसीको माया से बांधकर कैद में डाल दिये, किसी का सर्वस्व ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आप के हितेच्छुयों को अत्यंत दुःखी किये हुए हैं। लोभान्ध बनकर इसने अनेक प्रकार के कर लगाकर प्रजा को दुःखी कर दी है। इसके पास सच्ची सलाह देनेवाला कोई नहीं है। श्री जयराजा आपको राज्य देना चाहता था। परंतु आप न आकर आपने दुष्ट बुद्धिवाले इस सिंहसार को भेजा। अब प्रजा को पीड़ित करने का पाप आप पर है। हमारी आप से नम्र-विनति है कि आप पधारकर आपके पूर्वजों द्वारा पोषित प्रजा का हित करे । आपके दर्शन के हम इच्छुक हैं । आपका यह मूल राज्य है। आप इस पत्र को पढ़कर नहीं पधारे, तो हमें दूसरे राज्य की शरण लेनी पड़ेगी । यह राज्य शून्य हो जायगा । लि ''पीड़ित प्रजाजन''

पत्र पढ़ते ही जयानंद राजा ने सेनापति को युद्ध के लिए प्रयाण का आदेश दे दिया। सेना सज्ज होने लगी । एक दूत के साथ सिंहसार को समाचार भेज दिये । कि "इतने दिन तेरे सैकड़ों अन्याय मैंने भाई के नाते सहन किये हैं, अब सहन नहीं करूँगा। अत: इस राज्य को छोड़कर अन्यत्र चला जा।"

जयानंद की सेना आ गयी । सिंहसार अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए आया । जयानंद राजा ने युद्ध में उसे हराकर बांध लिया । बेड़ियों से जकड़कर, पिता को सौंप दिया श्री विजयराजा ने उसे कारागृह में ड़ाल दिया। वहाँ वह अपने पाप का फल भोगने लगा ।

श्री विजय एवं जयानंद राजाओं का पुर प्रवेश अत्यन्त हर्षोल्लास पूर्वक हुआ । श्री विजय राजा का राज्याभिषेक करवाया। प्रजा का उत्साह अपार था । दोनों राजों से प्रजा अत्यंत संतुष्ट थी । जयानंद ने राजसभा में आर्हत् धर्म की चर्चाकर, अपने पिता परिवार एवं प्रजा को जैन धर्मानुरागिणी बना दी । कुछ दिनों बाद जयानंद राजा ने लक्ष्मीपुर जाने की आज्ञा मांगी। वह पिता के आग्रह से कुछ दिन और रहा। फिर आज्ञा लेकर लक्ष्मीपुर आया। सर्वप्रकार से प्रजाको प्रमुदित करता हुआ। प्रजा का पालन करता हुआ, पूर्वकृत पुण्यफल को अनेक प्रकार से भोग रहा था ।

श्री विजयराजा ने अनेक प्रकार से धर्म की प्रतिपालनाकर, अपना आत्मकल्याण हो, इस अपेक्षा से, जयानंद की आज्ञा से छोटे पुत्र शतानंद को राज्य देकर, आगमसागर सद्‌गुरु भगवंत के पास चारित्र ग्रहणकर, निरतिचार चारित्र पालन करते हुए गुरु के साथ विचरने लगे । शतानंद भी राज्य का न्यायपूर्वक पालन करता था । एकबार उसे बड़े भाई को मिलने की इच्छा हुई तो वह अपने परिवार के साथ लक्ष्मीपुर आया । भाई को प्रणामकर उनकी

सेवा में रहा । जयानंद ने भी उसका उचित सम्मान किया । दोनों भाई कुछ दिन एक साथ रहे ।

एकबार राजाधिराज जयानंद राजा और शतानंद राजा सपरिवार नगर से बाहर जा रहे थे। वहाँ दूसरे मार्ग से 'आओ-आओ, शीघ्र चलो,' इत्यादि आवाज करते लोगों को पूजा सामग्री लेकर जाते और रिक्तथाल लेकर आते देखकर, एक व्यक्ति को अपने पदाति द्वारा बुलाकर पूछा "आप लोगों का आगमन कहाँ हो रहा है?" तब उसने कहा "स्वामिन्! मनोरम नामक पूर्व दिशा के उद्यान में जयनाम का तापसों का अग्रणी आया है । वह समतावान्, इंद्रियदमी, दुष्कर तप रूप में पंचाग्नि तप को सहन कर रहा है । यह निस्पृह है, शत्रु-मित्र में समभाव धारक है, तृण और मणि को समान माननेवाला है, नित्य तीनबार स्नान करता है, जटा मुकुटधारी है, चमड़े के वस्त्र पहनता है, कंद-मूल और फल का भोजी है, सुबह-शाम ध्यान करता है, सर्वशास्त्र का ज्ञाता है, ऐसे सरल महात्मा के गुणों का वर्णन करने में वाक्पटु भी समर्थ नहीं है। ऐसे महात्मा की भक्ति के लिए ये लोग जा रहे हैं, और भक्ति करके लोग आ रहे हैं।" इस बात को सुनकर राजा ने सोचा "यह भवस्थिति विचित्र है। प्राणियों का अज्ञान दुरूच्छेद है, घने बादलों से घिरे आकाश समान है, सर्व सुखहर है, सन्मार्ग पर आवरणकारक है, दुर्दशा का मूलकारण है, तिर्यंच नरकगति प्रदायक है, सब पाप का कदलीगृह है, सभी मिथ्यात्व का कंद है, विषय कषाय की उत्पत्ति का स्थान है। मेरे पितृव्य अज्ञान-अंधकार से ग्रसित है। मुझे इनको शीघ्र सुधारना है । इसके लिए प्रज्ञप्तिविद्या को पूछकर उपाय करना है। उसका स्मरणकर उसे पूछा । उसने आकर कहा-'यह तापस पंचाग्नि तप तप रहा है' । पूर्व दिशा के काष्ट में सर्प, दक्षिण दिशा के काष्ट में सरट,

पश्चिम दिशा के काष्ट में उधइ, उत्तरदिशा के काष्ट में अनर्गल मेंढ़कियाँ जल रही हैं। उन काष्टों को शीघ्र चीरकर आग को बुझाकर उन जीवों को बचाकर, इस तापस को प्रतिबोध दे। वह शीघ्र प्रतिबोधित होगा।'' विद्यादेवी अपने स्थान पर गयी।

राजा वहाँ गया, और अपने पितृव्य को किंचित् नमनकर बोला ''सब धर्मों में दया मुख्य बतायी है। दान, मौन, विद्या, देवार्चन, दया के बिना निष्फल है, जो जीव और अजीव को सम्यग् प्रकार से नहीं जानता, वह दया का पालन कैसे करेगा? सम्यक् प्रकार से जिनागमों के अभ्यास और सद्गुरु के उपदेश के बिना दया का अंश भी ज्ञात नहीं हो सकता । इस संसार में निधी औषधि मणि की खानें क़दम-कदम पर हैं, पर सिद्ध पुरुष की नजरों में ही वे आती हैं । हे तात! दयाका पालन समीचीन प्रकार से करें । इस पंचाग्नि में दया का अंश भी नहीं है।''

इस पंचाग्नि में सर्प, सरट, उदेही, और मेंढ़की जल रही हैं। जयानंदराजा ने उनको निकालकर, जय तापस को बताकर, सम्यक् प्रकार से उन्हें धर्म समझाया। देव, गुरु और धर्म का स्वरूप समझाया उन्होंने उसे स्वीकार किया। उसी दिन पूर्वदिशा के चम्पक उद्यान में पांचसौं शिष्यों के साथ आगमसागरसूरि पधारे। विजयराजर्षि भी पधारे थे । समाचार मिलने पर जयानंद राजा जयतापस सभी दर्शन वंदन के लिए गये । पंचाभिगमपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर सभी यथा-योग्य स्थान पर बैठे । श्री आगमसागरसूरि ने संसारदावानल उपशांतक देशना दी । दया मूलधर्म का विस्तारपूर्वक विवेचन किया । जयतापस प्रतिबोधित होकर दीक्षा के लिए उद्यत हुए, तब जयानंद ने महामहोत्सवपूर्वक दीक्षा विधि संपन्न करवायी। श्रीजयराजर्षि के साथ अनेक लोगों ने दीक्षा ली। किसीने श्रावक

व्रत स्वीकार किये । फिर साधुओं ने वहाँ से विहार किया । जयानंदराजा अपने राजमहल में गया।

जयानंद राजा को धर्म का मुख्य फल सुख की प्राप्ति था। दूसरा फलोदय लाख पुत्र, वे भी न्यायी, दक्ष, पवित्र, सर्वकलाविज्ञ, धर्मज्ञ, मतिमान्, पितृभक्त थे । पौत्रादि परिवार भी लाखों की संख्या में था। सब जैनधर्म में प्रवीण थे। धर्म-कर्म में सतत प्रवर्तमान थे। उनके मंत्री, सेनापति, नगरशेठ, पुरोहित, सभी धर्म-कर्म में प्रवीण एवं समर्पित थे। जयानंद राजा एक सौधनुष्य की कायावाला, दो लाख पूर्वका आयुष्यवाला, कंचनवर्णवाला, निरामय, न्यायी श्री सुविधनाथ के शासन को उद्योतित करता हुआ, तीन खंड का अधिपत्य भोग रहा था । उसके राज्य में दानशालाओं में सब प्रकार की व्यवस्थायें थी । परदेश से आनेवाले अति संतुष्ट होते थे । उसने प्रतिग्राम नगर में जिन प्रासाद बनवाकर जिन बिम्बों की प्रतिष्ठाएँ करवायी थी। उसने राज्य में सातों व्यसनों को दूर कर दिये थे ।

जयानंद राजा की राज सभा में एकबार उद्यान पालक ने आकर समाचार दिये कि प्रधान श्रमणों से उपासित, सच्चारित्रवंत, चतुर्ज्ञानी लोकावधि ज्ञानवान् आचार्यवर्य श्री चक्रायुधराजर्षि पधारे हैं। सुनते ही रोमांचित होकर उसे आभूषणादि से सत्कारितकर स्वयं पटह उद्घोषणा करवाकर, विशाल परिवार के साथ दर्शन वंदन के लिये चला । पंचाभिगमपूर्वक त्रि प्रदक्षिणा देकर, विधिपूर्वक अत्यंत आनंदपूर्वक सपरिवार वंदनकर, यथायोग्य स्थान पर बैठा। अवधिज्ञानी मुनि भगवंत ने संसारभवोदधितारण देशना दी। देशनान्ते जयानंद राजा के पूछने पर स्वयं का और जयानंद का पूर्वभव का वर्णन सुनाया ।

आरामिक के भव में सप्रेयसीद्वय युक्त जिनपूजा की । फिर नरवीर राजा का मतिसुंदर मंत्री हुआ । वे ही पत्नियाँ हुई। अतिबल राजर्षि से उत्तम अर्हद्धर्म पाकर शुद्ध आराधना की । वहाँ से देवलोक में गया । वहाँ से तू जयानंद हुआ । वे ही तेरी दोनों पत्नियाँ रतिसुंदरी-विजयसुंदरी हुई। नरवीर राजा धर्माराधन कर देव हुआ । वहाँ से चक्रायुध विद्याधर श्रेणि का राजा हुआ । वह वैराग्यवान् चतुर्ज्ञानी मैं हूँ । पूर्वभव में मैंने स्त्री के लिए तुझे कारागृह में डाला था, उसी कर्मोदय से तूने मुझे वज्रपिंजरे में डाला । वहाँ मैंने तुझे शीघ्र छोड़ा था । गाढ़ प्रीति थी । यहाँ तुने मुझे शीघ्र छोड़ा । उस भव में मुझे धर्मदान दिया था । अब मैं तुझे धर्मदान देने आया हूँ । तुमने और मैंने मंत्री और राजा के भव में अर्हद् धर्म की उत्कृष्ट आराधना की थी । उसके फलरूप में इस भव में भोग-सुख के साथ अखंड राज्य संपत्ति प्राप्त हुई । तुझ में धर्म की श्रद्धा अधिक हुई । तूने अमात्य के भव में मुनि को 'क्या तेरे नैत्र गये' ऐसा कहा था । उसका तीव्र पश्चात्ताप किया था जिससे अधिक कर्मक्षय हो गया था । कुछ अवशेष था इसलिये थोड़े समय के लिए तेरे नैत्र गये। तेरी प्रथम पत्नि ने मुनि को कहा था 'जैन मुनि निर्दाक्षिण्य होते है, दाक्षिण्यता तो उच्चकुल में होती है इसका कुल उच्च नहीं होगा।' ऐसा कहने से पश्चात्ताप के बाद कुछ अंश अवशेष रहने से गणिका की कुक्षी से रतिसुंदरी का जन्म हुआ । दूसरी पत्निने इस अंध को भिल्ल को देना चाहिए। ऐसा कहा था, जिसका पश्चात्ताप किया था। परंतु अवशेष कर्मोदय के कारण भिल्ल को विजयासुंदरी दी गयी और थोड़ी देर के लिये आँखे भी गयी । पूर्वभव के स्नेह से इसभव में स्नेह अधिक गाढ़ हुआ ।

नरवीर राजा का वसुसार पुरोहित का जीव नरकादि भवों

में भ्रमण कर विप्र होकर तापस हुआ। तप कर ज्योतिष्क देव हुआ। वहाँ से यह सिंहसार तेरा बड़ा भाई हुआ। उसको वसुसार के भवमें तूने 'चंडाल' कहा था। इस भव में इसने तुझ पर चंडाल का दोषारोपण किया। वह क्रूर प्रकृति, सर्वदोषयुक्त, निर्गुणी, धर्मद्वेषी, तेरे द्वारा अनेक उपकार करने पर भी पूर्वभव के वैर से तेरी चक्षु निकालना, कलंक देना आदि कार्य उसने किये । इस प्रकार पुण्य-पाप के फल को श्रवणकर प्रत्येक आत्मा को धर्म में उद्यम करना चाहिए ।''

जयानंद राजा को और उसकी दोनों पत्नीयों को जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । फिर उसने भगवंत से पूछा ''मेरे पिता और पितृव्य की दीक्षा के पश्चात् उनके मोक्ष तक का वर्णन सुनाने की कृपा करावें । तब मुनि चक्रायुध ने कहा ''दीक्षा के बाद उन्होंने निरतिचार चारित्र का पालन किया । जिनशासन में कुशल हुये । अनेक आत्माओं को सहायक होते हुए आयु पूर्णकर, श्री जयराजर्षि सनत्कुमार देवलोक में, और श्रीविजयराजर्षि माहेन्द्रदेव लोक में महाऋद्धिवाले देव हुए हैं । वहाँ देवों के सुख भोगकर विदेह में पृथक् पृथक् देश में जन्म लेकर राज्य संपदा भोगकर चारित्र लेकर, कर्म खपाकर, मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे ।''

फिर पूछा ''स्वामिन् ! मेरे, मेरी पत्नियों के, और सिंहसार के आगे का स्वरूप बताने की कृपा करावें ।''

मुनि चक्रायुध ने कहा ''तू, मैं और तेरी दोनों पत्नियाँ इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे । तू चारित्र लेकर, केवलज्ञान पाकर, अनेक भव्य आत्माओं पर विशेष उपकार करनेवाला होगा । किंचित् न्यून एकलाख वर्ष केवली पने में विचरकर सर्वायु चौराशी लाख वर्ष का पूर्णकर मोक्ष में जायगा ।''

सिंहसार नगर से निकाला गया । वह जहाँ-जहाँ गया वहाँ आपत्ति, दुर्भिक्ष, आदि भय उत्पन्न हो जाते थे । निमित्तज्ञों के द्वारा दुर्भिक्षादि विपत्तियों में निमित्त सिंहसार को जानकर वहाँ-वहाँ से निकाला जाता था। पापोदय से सर्व व्यसन में आसक्त कहीं चोरी करते हुए पकड़ा गया और उसके फलरूप में मारा गया। सातवीं नरक में गया । वहाँ से पुनः नरक ऐसे अनेक बार नरक में जायगा। फिर अनेकभव तिर्यंच के, अनेकभव नीच जाति में मानव के कर, पुनः पुनः पाप करता हुआ परिभ्रमण करेगा । ऐसा पाप का फल जानकर भव्यात्माओं को पाप कार्य से निवृत्त होना चाहिए ।

हे राजन्! तेरे साथ जिनकी दिक्षा होगी, वे सभी स्वर्गादि में जाकर विदेह में उत्पन्न होकर मोक्ष में जायेंगे । यह सब मैं मेरी बुद्धि से नहीं कहता हूँ। किंतु महाविदेह में विचरने वाले जिनेश्वर को मैं वंदन करने गया था। तब मैंने उनके मुख से यह सब वर्णन सुनकर तुझे प्रतिबोध देने के लिए शीघ्र यहाँ आया। तूने मुझे पूर्वभव में शुद्ध धर्म का ज्ञान करवाया था । इसी कारण मैं भी उस ऋण से मुक्त होने के लिए तुझे प्रतिबोधित कर रहा हूँ। हे राजन्! अब बोध प्राप्तकर इस संसार रूपी दावानल से मुक्त होकर चारित्र ग्रहण करने के लिए उद्यम करना चाहिए ।"

इस प्रकार चक्रायुध राजर्षि के द्वारा कथित देशना श्रवणकर परम वैराग्य को पाये हुए जयानंद राजा ने कहा "आप यहाँ अल्पावधितक रूकिये । मैं राज्य की व्यवस्थाकर आपके पास चारित्र ग्रहण करना चाहता हूँ । फिर नगर में जाकर पुत्र कुलानंद को राज्यारूढकर, हितशिक्षा देकर, उसके द्वारा कारित अष्टाहिन्का महोत्सव द्वारा जयानंद राजा और उसके साथ उसके हजारों पुत्र-पौत्र, हजारों राजा, अंतःपुर से रतिसुंदरी आदि हजारों

रानियाँ और प्रजाजन मिलाकर लाखों लोगों ने चारित्र ग्रहण किया। चक्रायुध मुनि भगवंत ने सभी साधुओं के साथ विहार किया । साध्वियों ने भी वहाँ से विहार किया । जयानंद राजर्षि ग्रहण-आसेवन शिक्षा ग्रहणकर द्वादशांग धारी हुए । श्रीचक्रायुध आचार्य ने उन्हें आचार्यपद दिया । पृथक् विहार की आज्ञा प्रदान की । उन्होंने पृथक् विहारकर अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोधितकर प्रव्रजित किये । विहार करते हुए पुनः गुरुवंदन के लिए आये । तब दोनों आचार्य विहार करते लक्ष्मीपुर के पास शाखापुर में आये। अपना आयु समाप्त जानकर गच्छभार जयानंद राजर्षि कों दे दिया । श्रीचक्रायुधसूरि ने पादपोपगमन अनशन लिया । तीस दिन में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और अंतर्मुहूर्त में मुक्ति प्राप्त की । देवों ने महोत्सव किया । उस समाचार को सुनकर विरागवान होकर क्षपक श्रेणि पर आरोहण कर जयानंद राजर्षि केवलज्ञानी हुए । उस समय देवताओं ने स्वर्णकमल की रचना की। उस पर बैठकर श्री जयानंद केवलि ने धर्मोपदेश दिया। कुलानंद राजा भी वंदन के लिए आया। उसने द्वादश व्रत ग्रहण किये । विहार करते हुए अनेक लोगों को दीक्षा दान, अणुव्रत दान और सम्यक्त्वादि का दान देते हुए, धर्म प्रभावना विस्तारित करते हुए विचरे। अपना निर्वाण समय जानकर श्री शत्रुंजय तीर्थपर आये। छ-उपवास से पादपोपगमन अनशनकर शाश्वत सुख के भोक्ता हुए ।

श्री जयानंद राजर्षि का चरित्र श्री मुनि सुंदरसूरिरचित पद्यबन्ध के आधार से पंडित पद्मविजयजी गणि द्वारा रचित गद्यबन्ध चरित्र के आधार से हिन्दी में जयानंदविजय ने लिखा है। इसमें युद्ध का वर्णन, उपदेश का वर्णन संक्षेप में लिया है। (श्री जयानंदकुमार के आयुष्य के विषय में जो वर्णन है उसका समाधान ज्ञानी गम्य है) जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो, तो मिच्छा मि दुक्कड़ं ॥

मुनिराजश्री जयानंदविजयजी
द्वारा लिखित एवं संपादित
हिन्दी एवं गुजराती साहित्य
प्राप्ति हेतु

आजीवन सदस्य योजना

रु. ५००-०० अनामत

निवेदक एवं संपर्क सूत्र

श्री देवीचंद छगनलालजी
सदर बाझार,
भीनमाल-३४३ ०२९.

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी,
साँथूं-३४३०२६.

प्रकाशन नहीं होगा तो
रुपये लौटाये जायेंगे

Bharat Graphics, A'bad. : (079) 2134176, 2124723